मुद्रक—विश्वनाथ एम. ए., आर्य प्रेस लिमिटिड,
१७ मोहनलाल रोड, लाहौर

लेखक के दो शब्द

१६१७ ई० में गंगा के उस पार गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय के महाविद्यालय की १२वीं श्रेणी में अन्तरीय प्रेरणा से "पंजाब का इतिहास" विषय पर साहित्य परिषद् में निबंध पढ़ा था। परिषद् के सामयिक सभापति आचार्य रामदेव जी के उत्साहजनक तथा ऐतिहासिक खोज की प्रेरणा करने वाले शब्दों ने हृदय में, समयान्तर में पंजाब का इतिहास लिखने की दृढ़ धारणा पैदा की। १६१६ ई० से लेकर १६४७ तक अनेक प्रकार के मानसिक सामाजिक झंझावातों ने इस धारणा को मन्द तथा सुप्त भी कर दिया। कई बार इस कार्य के लिये संग्रह भी किया। कई भाग रूप रेखा के रूप में लिखे भी गये-स्थान परिवर्तन तथा विविध कार्य क्षेत्रों के परिवर्तन के साथ वह गुम भी हो गये। फिर दिनचर्या में संकल्प अङ्कत किये कि इसे पूरा करूंगा। फिर यत्न शुरू किया यत्न करने पर पता लगा कि यह काम एक व्यक्ति साध्य नहीं है और बहुकालापेक्षी है। फिर यह भी सोचा कि जो लिख बनता है वह तो लिख लूं इस विचार से यह 'वीर पंजाबी' पंजाब के विस्तृत इतिहास कीरूप रेखा के रूप में, ऐतिहासिक उपन्यास के ढंग पर नवयुग ग्रन्थमाला के ६ठे पुष्प के रूप में हिन्दी भाषा भाषी जनता के सामने रख रहा हूं।

इस रूप रेखा के संविधान तथा योजना से कइयों का मतभेद होगा—

यह रूप रेखा भौगोलिक और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से लिखी गई है। इस दृष्टि से पंजाब को भारतीय राष्ट्र की भौगोलिक इकाई

मानकर ऐतिहासिक दृष्टि से अभी तक पंजाब का इतिहास नहीं लिखा गया। अधिकांश मुसलमान ऐतिहासिकों ने इसका इतिहास हिन्दू द्वेषी दृष्टि से लिखा है। अकाली ऐतिहासिक सिक्खों ने–अकाली साम्प्रदायिक दृष्टि से इस पर विचार किया और पंजाबी होने की दृष्टि को गौण कर दिया।

पंजाब की यह ऐतिहासिक रूपरेखा, असाम्प्रदायिक भौगोलिक राजनैतिक दृष्टि से लिखी गई है। कई स्थानों पर ऐतिहासिक विद्वानों से मतभेद होना स्वाभाविक है। पंजाब के नदी पहाड़ों—साहित्य तथा जन-समुदाय के विकास ह्रास और राजनैतिक उतार चढ़ावों का ऊहापोह–तथा विवेचन–पंजाब को भारतीय राष्ट्र का अंग–पूर्ण विकसित अंग मान कर किया है।

भविष्य में विस्तृत पंजाब का इतिहास तैय्यार करने तथा लिखने के लिये (पंजाब इतिहास संशोधक मंडल) बनाने का संकल्प किया है। उसके लिये ऐतिहासिक विद्वानों का सहयोग मांगता हुआ इस पुस्तक को उपस्थित करता हूं। इस पुस्तक के लिखने में अनेक लेखकों के ग्रन्थों से सहायता मिली है उन सब का हार्दिक धन्यवाद करता हूं।

भीमसेन

समर्पण

समय समय पर पंचनद सिंचित वीरकर्म-भूमि को विदेशी
राजशक्तियों और विदेशी सभ्यताओं के आक्रमण से
बचाने वाले—आत्मबलिदान द्वारा स्वतंत्रता की
आग को प्रदीप्त रखने वाले-पंचनद को मातृ-
भूमि की भांति अपनाने वाले पंचनदो-
त्पन्न—दिवंगत आत्माओं के
अदृश्य चरणों में यह भेंट—
तुच्छ भेंट—सादर
समर्पित
है:—

२६ मार्च १६४७ — भीमसेन

हिन्दी संदेश मंदिर,
मोहनलाल रोड, लाहौर

विषय-सूची



चतुर्थ धारा

पंचम धारा

छठी धारा

सातवीं धारा

वीरता का आदि स्रोत

भारतवर्ष के सब प्रान्तों में पञ्चनद प्रान्त अति प्राचीन है। इसका नाम प्राकृतिक भौगोलिक रूप रेखा का सूचक है। इस प्रान्त के संस्थापकों ने किसी जाति व समुदाय-विशेष के नाम से इस प्रान्त की स्वाभाविकता को आच्छन्न नहीं होने दिया। उत्तर के उत्तुंग हिमालय के शिखरों से बहती उन्मुक्त स्वच्छन्द अप्रतिरुद्ध जलधाराओं ने, इस प्रदेश में बसने वाली जड़ चेतन सृष्टि को, आदि काल से वीर रस से सिंचित और अभिषिक्त किया; जन्म-काल से विकसित होने के साथ २ वीर बनने की दीक्षा दी।

वह देखो! विस्तृत आकाश में चारों ओर समान रूप से अनन्त दिशाओं तक फैले हुए आसमान में, ऊपर-नीचे, इधर-उधर, वीरता की मूर्तिएँ अपने पूर्ण यौवन में चमक रही हैं। खगोल में, द्युलोक में सुनहरी तेज से प्रदीप्त आभा का गोला, प्रचण्ड गति से अपनी कील में घूम रहा है, चारों ओर प्रखर रश्मियों को फेंक रहा है। इसकी ओर क्षण भर भी आंख उठाकर देखने वाला कोई दिखाई नहीं देता। मध्य अन्तरिक्ष में प्रचण्ड-वायु-पवन, अनिवार्य वेग से बह रहा है। वायु के आवर्त चक्र, सूर्य रश्मि की किरणों को और भी अधिक तीक्ष्ण बना रहे हैं। नीचे चारों ओर जल ही जल दिखाई दे रहा है। जल-प्रलय चरम सीमा पर पहुंच कर उतार पर है।

वह देखो! संसार की छत हिमालय (त्रिविष्टप) के शिखर

तिब्बत के समतल भाग पर, नौबन्ध जगह में एक नौका सी बन्धी खड़ी है। पानी धीरे धीरे उतर रहा है। हिमालय का शिखर भूभाग, सारे पृथ्वी तल में सब से ऊंचा भू भाग; सबसे प्रथम दृष्टि-गोचर हो रहा है। प्रकृति के चारों वीर सूर्य, वायु, जल, भूमि विस्तृत आकाश में पूर्ण विभूति के साथ प्रगट होकर चमक रहे हैं। देखते-देखते इनके परस्पर सहयोग-सम्मिश्रण से संसार की छत पर वृक्ष वनस्पति वन उपवन विकसित होकर फल फूलों की सुगन्ध से सुरभित हो उठे । इन वन उपवनों में, जीवजन्तु पशु पक्षी, वृक्षों की छाया में पुष्पों से लदी भरी डालियों से बरस रहे, मधु का पान कर रहे हैं। सब स्वतन्त्र एक दूसरे से निरपेक्ष बेरोक टोक इधर उधर विचर रहे हैं। प्रकृति अपने पूरे यौवन पर है। जड़-जगत्, पशु-जगत् आनन्द विभोर हो रहा है। देखते देखते युवक युवती, स्त्री पुरुष इधर उधर विचरते दिखाई देने लगे और जड़ जगत् और पशु जगत् पर विजय पाकर उन्हें अपना अनुगामी—अपने अनुकूल बनाने लगे; और जड़ जगत् और पशु जगत् के संघर्ष को रोकने लगे। सूर्य की रश्मियों द्वारा बिजली को प्रदीप्त किया। वायु के वेग को नियन्त्रण में लाकर उड़ते पक्षियोंके अनुकरण में अनेक प्रकार के वायुयान उड़नखटोले बनाए। अनन्त जल राशि पर विजय-यात्रा करने के लिये पास पड़ी; किश्ती के अनुकरणमें वन-वनस्पतियों द्वारा तैरते हुए जल प्राणियों और मछलियों की नकलमें अनेक जलयान बनाए। शिखरके समतल भूमिभाग पर सर्दी गर्मी तथा भयंकर जीव जन्तुओं के आक्रमण से आत्म रक्षा करनेके लिये आश्रय-स्थान-निवासस्थान बनाए। देखते देखते युवक युवतियों की टोलियां, वीर मस्त टोलियों की भांति इधर-उधर निर्भय विचरने लगीं, और वसन्त मधुमास की महकसे मुग्ध होकर

प्राकृतिक अवस्था, आनन्द की चरम सीमा में, मस्त होकर आनन्द के प्रेम गीत गाने लगीं। इनके गीतों में प्रकृति विजय की वीरगाथा सुनाई देने लगी। सूर्य रश्मियों को जीतो—वायु के आवर्तों को स्वाधीन करो—जलराशि पर विजय-यात्रा करो। दिखाई दे रहे भूमिभाग को अग्नि द्वारा शुद्ध कर अपने अनुकूल बनाओ।

× × ×

पुरानी दन्त कथाओं के अनुसार इन वीरों के नाम सूर्य, वायु, अंगिरा और अग्नि हैं। इन वीरों ने विश्व विजय यात्रा का प्रारम्भ किया। इस यात्रा का श्रीगणेश वसन्तोत्सव से हुआ। संकल्प किया कि इस अनन्त विश्वमें दिखाई देरहे जल-समुद्र की लहरों की तरह फैलेंगे। एक दूसरे पर आक्रमण न करेंगे। जिस दिशा में जिस देश में पहुंचेंगे उसी को जीत कर अपना अनुचर बनाएंगे। इन भावनाओं से अनुप्राणित अनेक टोलियां उस भूमि भाग पर विचरने लगीं।

अनन्त विश्व के अनेक भागों में जलराशि से ऊपर उठ रहीं, अनेक पर्वत श्रेणियों के उच्च शिखरों पर युवक युवतियों की टोलियां वहांके प्राकृतिक औरप्राणि जगत् पर विजय पाकर स्वच्छन्द घूमने लगीं। जलवायु की भिन्नता के कारण अनेक रूपों में अनेक भूमि भागों पर अनेक रंगों में अनेक डीलडौल में अनेक जातियाँ प्रकट होने लगीं*।

× × ×

---

* यह जातियां आर्यन् सैमिटिक, हब्शी, मंगोलियन इंडोयुरोपियन नामों से विभक्त की जाती हैं।

इनमें से हिमालय के सर्वोच्चशिखर पर विचरने वाली वीर टोलियां-वीर युवक युवतियां हमारी इस वीर गाथा की वीर नायक-नायिका हैं। यह टोलियां वर्ष के प्रारम्भ में वसन्तोत्सव मना कर विजय यात्रा के लिये प्रस्तुत हुईं। "वसन्तोऽस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्म शरद्धविः" वसन्त की मदमाती हवाओं में मस्त धीरे २ ग्रीष्म की प्रचण्ड घाम में तपने लगीं। ऋतु क्रम से वर्षा शिशिर हेमन्त के सुखदायी अनुभवों से प्राकृतिक गृहस्थ सुख और आनन्द मधुरस का साक्षात्कार और पान करती हुईं, दिन प्रतिदिन, दो से चार, चार से आठ 'बहुस्याम्' के संकल्प के साथ इधर उधर फैलने लगीं। इस बढ़ती सृष्टि के लिये हिमालय का समतल शिखर अपर्याप्त हो गया। वीर युगल स्थानान्तर की खोज में हिमालय के दक्षिण में प्रवाहित पञ्चनद धाराओं के किनारे किनारे नीचे उतरने लगे। विजय यात्रा में प्रतिदिन प्रकृति का पाठ पढ़ते हुए अपने साथ खेल रहे शिशुओं को भी उसमें दीक्षित करने लगे। देखते २ पञ्चनद का प्रदेश जलधाराओं के मध्यवर्ती भूमिभाग, खेतियों से हरे भरे स्थानों में बदल गए।

सिन्धु, चनाव, जेहलम, रावी, व्यास सतलज नदियों की धाराओं के साथ इनके तटों पर विचरने वाली यह टोलियां ही सप्तसिन्धु पंचनद को बसाने वाले समुदाय हैं। यही लोग हम पंचनद वासियों के पूर्वज हैं। इन्होंने किस साहस पूर्ण वीरता से, अंगों को चीरने वाली शीत हिम की बहती हिमानियों के निर्झरों में महीनों खड़े होकर उसका मुकाबला किया होगा !!! विजय पाकर भूमि को हराभरा करके आबाद करने पर उन्हें कितनी प्रसन्नता हुई होगी !!! इसकी मन्द-मन्द

झलक हमें पञ्चनद वासियोंके लोहड़ी के त्यौहार के आमोद प्रमादों से मिल सकती हैं। पता नहीं कब से यह लोहड़ी का त्यौहार पञ्चनद वासियों के घरों का त्यौहार बना हुआ है। आज भी पञ्जाबके घर घरमें नए बालककी लोहड़ी दिव्य अवर्णनीय उल्लास से मनाई जाती है !!!

यह लोहड़ी का पर्व पञ्चनद वासियों, हमारे पूर्वजों की प्रकृति-विजय का स्मारक-दिवस है। अग्निदेव को पुरोहित बनाकर इन टोलियों ने अनेक जंगल और मैदान साफ किये, उनमें कृषि की, गेहूँ-जौ-चावल पैदा किये। मैदान लहलहाने लगे। यह टोलियां यहीं बस गईं। इन्होंने प्रकृति की कठिन परिस्थितियों पर विजय पाकर अपने आप को 'आर्य' विजेता नाम से अभिमन्त्रित किया।

इन उजाड़ जंगलों को आबाद करने वाले, प्रकृति देवी को छिन्न भिन्न करने वाले वीर, हमारे पूर्व-पुरुष हैं। हमारे इन पूर्वजों ने इन भूमिभागों को आबाद करने के लिये—कंटीले जंगलों को साफ़ करने के लिये, किस प्रकार अग्नि वायु जल आदि का उपयोग किया होगा—यह सोचते ही उनकी अदम्य वीरता आंखों के सामने चित्रलिखित होजाती है। इस युगमें दक्खिन अफ्रीका आदि जंगली प्रदेशों को साफ़ करने वाली गोरी जातियों की विजय यात्राएं, उन प्रथम साहसी वीरों की वीरता के सामने नगण्य प्रतीत होती हैं। इस प्रदेश को आबाद कर-इन वीर युवकों ने निम्न लिखित मन्त्र भागों से उस प्रदेश में बहने वाली जलधाराओं का निम्नरूप में गुणानुरूप नामकरण किया।

इमंमे गंगे यमुने सरस्वति* शुतुद्रि स्तोमं सचता† परुष्ण्या।
असिक्न्या‡ मरुद्वृधे|| वितस्तयाऽऽर्जीकीये शृणुह्या¶ सुषोमया।

* सतलुज, † रावी, ‡ चनाब, || जेहलम, ¶ व्यास।

आज शिमला, धर्मशाला, कांगड़ा, डलहौज़ी और मरी की पर्वत-मालाएं पराधीन धनी मानियों के स्वास्थ निवासों से शोभायमान हो रही हैं। उत्तर स्थित कश्मीर विश्वसौन्दर्य का मानचित्र पञ्चनद के शिरोभाग को, अपूर्व रमणीयता की झलक में रंग रहा है।

यह पर्वत-स्थान—देवस्थान—आर्य भारतीय ऋषि मुनियों की विचार परम्परा विकास के निकेतन थे। भारतीय आर्य-सभ्यता के शत्रु-विध्वंसक—इन स्थानों पर नहीं पहुँच सके। इसलिये आज भी इन स्थानों में आर्य सभ्यता शुद्ध रूप में, विदेशी सभ्यताओं से अछूती झलक में दिखाई देती है। कम से कम विदेशी सभ्यता उग्र रूप में वहां अपना अधिकार नहीं जमा सकी।

× × ×

समतल मैदानों के हरे भरे खेत जहां एक ओर पंजाब की सरसता और जीवनशक्ति को प्रगट करते हैं, वहां साथ ही साथ सिन्धु, जेहलम, चनाव, रावी, व्यास, सतलुज की स्वच्छन्द जल-धाराएं जनता के जीवन में क्रियाशीलता और स्वच्छन्दता की भावनाओं को संचारित कर रही हैं। हरे भरे खेतों में विचरने वाले किसानों और कृषक बालाओं के गीत, दोलायमान सरसों की लहरों के मूक गीत में समलीन होकर आते जाते राहियों की, और दिन भर के थके किसानों की थकान को दूर कर रहे हैं। जेहलम, चनाव, रावी आदि नदियों के तटों पर रहने वाले लोगों का, पूर भरी नदियों को पार करने का साहस, गम्भीर जलधाराओं के बीच में तैरती हुई किश्तियों के चप्पू, चप्पुओं के धारा वेग से झर रही जल शीकर धारा, पञ्चनद वासियों की क्रियाशीलता को प्रकट कर रही है। समुद्र तटवर्ती जातियों की रोमांचकारी वीरता, साहसप्रियता पञ्चनद तट वासिनी पंजाबी जनता की, सिकन्दर को

कदम २ पर रोकने वाली वीरता के सामने मन्द पड़ जाता है। पंजाब के मरुस्थल, इनमें विचरने वाली देहाती जनता—गक्खड़ों के मुहम्मद गौरी आदि आक्रांताओं को परेशान करने वाले साहस पूर्ण कार्य और तपोमय जीवन, मुलतान आदि भूभागों में रहने वाले लोगों की स्वातन्त्र्य प्रियता तथा धर्म प्रेम को प्रकट करते हैं।

प्रकृति देवी ने पञ्चनद भूमि में अपनी सब विभूतियों का अलौकिक, अद्वितीय शृङ्गार प्रदर्शन किया है। पर्वतों के उत्तुङ्ग हिमाच्छन्न शिखर, घाटियों में बहने वाले निर्झर, नदियों के द्वीप और संगम, झीलों के गंभीर आवर्त, उपजाऊ भूमिभागों के हरेभरे खेत—इस भूमि को मूक बोली से 'देव निर्मित' ❀ की उपाधि दे रहे हैं। इसके साथ साथ पंजाबी हृदय की कठोरता और मृदुता का स्वर्गीय मेल, आज भी पंजाबी बोली में रह रह कर प्रकट हो रहा है। ऐसे अद्भुत आकर्षक भूमिभाग के लिये जड़ चेतन जगत् का अहमहमिका के साथ इस ओर आकृष्ट होकर आना स्वाभाविक ही है। जीवित जागृत साहसी आर्यों का इसी प्रदेश में सीमित रहना भी अस्वाभाविक था—उन्होंने भी इस पवित्र देश—भूमि-भाग में परमात्मा और प्रकृति के दिये ऐश्वर्य तथा संदेश को दूर २ तक पहुँचाने में संकोच नहीं किया। संघर्ष होना स्वाभाविक था। पंचनद को पूर्ण विकसित कर यहांके निवासी दक्षिणमें गंगा यमुना और सरस्वती की ओर फैले। दूसरी तरफ़ सिंधु के पार अफ़गानि-स्थान मध्य एशिया तक पहुँचे। वहां के लोगों को आर्यसभ्यतामें

❀ सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदन्तरम्। तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते ॥ मनु०

दीक्षित किया। मध्य एशिया ईरानवासी लोगोंकी* जिन्दावस्था इस का जीता जागता साक्षी है। पंजाब के आर्य विजयी हो चारों तरफ़ फैले। ऊपर नीचे दाएं बाएं सब तरफ फैले। अनेक संग्राम हुए। अंत में समय का रुख बदला। प्रकृति में परिवर्तन हुए। मध्य एशिया की जातियों ने—यूनान के लोगों ने उत्तर-भारत पर, पंजाब पर—आर्य भूमि पर आक्रमण किये—कभी उत्तर से, कभी पश्चिम से, कभी दक्षिण से इस प्रदेश पर आक्रमण हुए। आर्यों ने—पञ्चनद वासियों ने अपनी स्वाभाविक वीरता से इनका मुक़ाबला किया। कभी आगे बढे, कभी पीछे। इस संघर्ष का वर्णन ही पंचनद की वीरता की कहानी है। इसकी सुन्दरता और इसकी दिव्यता ही इसकी वीरता को परखने वाली है। मराल कवि ने पंजाब की इस दिव्य विभूति का क्या ही जीवित जागृत चित्र खींचा है:—

अलबेला पञ्जाब

यह सरसों क्यों नाच रही है।
मेरा धीरज जांच रही है॥
मैं कुछ दिखलावा न किया था।
धीरज का दावा न किया था॥
जहां कहेगी लोट पड़ूंगा।
या कुछ करके ओट पड़ूंगा॥

---

* लोकमान्य तिलक ने Arctic Home in the vedas (आर्कटिक होम इन दि वेदाज़) में लिखा है कि ईरानियों ने अपनी पुस्तक 'वेंदिदाद' में लिखा है कि आर्य लोगों ने सप्तसिन्धु अर्थात् पंजाब में अपनी बस्ती बसाई। परन्तु इन्हें सताने के लिये शैतान ने पंचनद सिन्धु में कड़ाके की धूप और सांप पैदा किये।

दिल सेरी पर कब आवेगा।
आखिर चलने की ठानेगा॥

मुझे होश की बीमारी है।
यहां दवा की तैय्यारी है॥

प्रकृति—लाडला रण में बांका।
पांच लड़ा गजरा दुनियां का॥

अलबेला पंजाब खिला है।
ढूंढे भी मुझ को न मिला है॥

यहां प्रकृति भी मद में माती।
हरी-भरी पग-पग इठलाती॥

जिसने देखी नृत्य कला है।
और न हाथों दिल निकला है॥

---

[२]

भारत का सूर्यद्वार और रक्षक बाहु

पंजाब पञ्चनद आर्य क्षत्रियों का मूल-स्थान है, यहां की क्षत्राणियां कोख जाए पुत्रों को 'वीरा' कह कर याद करती हैं। देहातों में बहनें भाइयों को वीर शब्द से बुलाती हुई स्वाभाविक वीरता का परिचय देती हैं। पंजाबियों के घरों में पारिवारिक उत्सवों, समारोहों के अवसर पर गाए जाने वाले घरेलू गीतों में वीर शब्द की गूंज निमन्त्रित मण्डली के हृदयों में स्नेह सिक्त वीरता को संचारित करती हैं। पंजाब की ग्रामीण देवियां आते-जाते अनजान अपरिचित राही को भी "वीरा" शब्द से सम्बोधित कर इस वीर-भूमि की विशेषता को प्रकट करती हैं।

समय-समय पर अनेक बार उत्तर दिशा से—हिमालय के उस पार से—अफगानिस्तान आदि प्रदेशों से होने वाले आक्रमणों का मुकाबला करने के कारण, इस भूमि के निवासियों को स्वभावतः वीरता का बाना धारण करना पड़ा और स्पार्टा के वीरों की भाँति यह लोग जन्मते ही वीरों की चाल-ढाल तथा गति विधि का अनुसरण करते हैं। आए दिन दिनचर्या में पृथिवी को उपजाऊ बनाने वाले—कृषि, से जीविका अर्जन करने वाले—लम्बे डील-डौल वाले पंजाबी आज से नहीं, सदियों से विजेताओं की सेनाओं के आवश्यक अंग बने हुए हैं। आज भी पराधीनता की दशा में—सदियों की राजनैतिक दासता में पिसे हुए पंजाबी के डील-डौल तथा हर समय हिलते-जुलते हाथों को देखकर क्रिया-शीलता स्फूर्ति तथा वीरता का जीता जागता चित्र एक बार आँखों के सामने मूर्तरूप में आ जाता है। जिन दिनों पञ्चनद स्वतन्त्र था उन दिनों मध्य एशिया के साइरस आदि विजेताओं ने पंजाबी वीरों की सहायता से मीडिया और असीरिया के राजाओं को पराजित किया था। सैमिरेमस डेरियस सिकन्दर और सेल्यूक्स की, ग्रीस से लेकर अफगानिस्तान के भूभागों को आँखों की झपक में—पादाक्रान्त तथा तहस नहस करने वाली कड़कती बिजली की सी चमक और प्रबल वेग वाली नदियों की अप्रतिहत गति वाली सेनाओं को; इस वीर भूमि में कदम-कदम पर, चप्पा-चप्पा भूमि विजय प्राप्त करने के लिये महीनों रुकना पड़ा था*। सिकन्दर जैसे

---

* Pt. Nehru refused to accept the contention of European historians that Europe had always ruled and dominated Asia. He asserted that Alexander's back was broken by small Indian chiefs and he was the first European invader of India. Pt. Nehru said it was wrong to say that

तूफानी विजेता तथा उसकी सेना को पञ्चनद के वीर क्षत्रियों के मुकाबले के बाद दम लेना पड़ा। इनके साथ मुकाबला करने के बाद उनका दम टूट गया, आगे न बढ़ सके। पीछे लौटना पड़ा लौटते हुए, नदियों के तटवर्ती मलाई जाति के वीरों तथा गक्खड़ के पूर्वजों ने उन्हें अच्छी तरह से अनुभव करा दिया कि भारतवर्ष के इस प्रवेशद्वार अभेद्य दुर्ग में से सुरक्षित विजयी होकर वापिस जाना कठिन ही नहीं असम्भव है। प्रसिद्ध अंग्रेज़ ऐतिहासिक जनरल चैस्ने लिखता है—

"ग्रीक लोग भारतीय वीरों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे। आठ सालों के निरन्तर युद्धों में इन्हें एशिया की दूसरी जातियों में, इनसे बड़े डीलडौल वाले और युद्ध और वीरता में—इनसे बढ़े-चढ़े मुकाबला करने वाले सिपाही कहीं नहीं दिखाई दिये। उस पुराने जमाने में भी भारतीय ग्रामीण जनता ग्रामीण पंचायत अत्यन्त समृद्ध तथा विकसित अवस्था में थी। २२ सदी से पहले पोरस राजा की छत्र छाया में इन्हीं वीर दृढ़ांग पंचनद निवासियों ने अपूर्व वीरता का प्रदर्शन किया था। आज कल के देहाती कृषक पंजाबियों के शानदार गुणों की झलक हम उस

Alexander swept over India. Alexander was not faced by any of the big rulers in India and only smaller chiefs brought his downfall.

❀ जवाहरलाल नेहरू ने इस बात को स्वीकार करने से इन्कार किया कि युरोपियन लोग सदा एशिया पर प्रभुत्व करते रहे हैं। छोटे २ हिन्दुस्तानी सर्दारों ने युरोप के प्रथम आक्रान्ता सिकन्दर की कमर तोड़ दी थी, यह कहना भूल है कि सिकन्दर ने भारत को जीता था। उसका किसी बड़े भारतीय राजा से मुकाबला ही न हुआ था।

नहीं पनप सका। यहां तो जीती जागती वीरता की उपासना है। भारत के दूसरे भागों में अनेक प्राचीन देवी-देवताओं से सम्बद्ध राजवंश परम्परा मिलती है। परन्तु पंजाब में मद्रकों का मद्रक प्रतिनिधि शल्य, संसप्तक गणों का सुशर्मा, पौरस जाति का पौरस, पिछली सदी में अपने शस्त्र बल से महाराजा का पद अपनाने वाले रणजीतसिंह दिखाई देते हैं। कुछेक वंशाभिमानी, चम्बामंडी नाहन आदि के पहाड़ी राजा दिखाई देते हैं। जिनका जन्मसिद्ध राजाधिकार जनता में प्रसिद्ध है। परन्तु इन का पंचनद के समतल पर, पंजाब की नदियों से सिंचित, विस्तृत मैदान में रहने वाली, स्वतन्त्र प्रकृति वाली साधारण जनता पर कोई प्रभाव नहीं। आज भी नये युग की नई राजनीति में सब प्रान्तों में कोई न कोई प्रभावशाली विशेष व्यक्ति जनता की गहरी श्रद्धा वा सच्ची श्रद्धा का ध्येय बना हुआ है। परन्तु पंचनद पंजाब में आज भी यही पुरानी प्रकृति अपने पंचायती रूप में प्रकट हो रही है। राजनैतिक आन्दोलनों में जनता, जनता के रूप में अद्वितीय उत्साह से आगे बढ़ेगी। परन्तु नेतृत्व के मैदान में किसी को निष्कंटक एक क्षण भी नेता मानने के लिये वह तैयार नहीं। स्वामी श्रद्धानन्द और लाला लाजपतराय के बाद कोई व्यक्ति इस क्षेत्र में आगे नहीं आ सका या किसी बड़े स्वतन्त्र प्रकृति को पंचायती पंजाबी जनता ने आगे नहीं आने दिया। यह पंचायती प्रवृत्ति ही पंजाब की विशेषता है। इस विशेषता ने इसे लाभ भी पहुंचाए और हानि भी। इस प्रवृत्ति के कारण पराधीन होते हुए भी पंजाबी भूखा नहीं मरता और इस प्रवृत्ति के कारण पंजाबी उत्साही और सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार होते हुए भी, भारत की राजनैतिक पराधीनता के मुख्य कारण बने हुए

हैं। अस्तु कुछ भी हो, आज भी अंगरेज़ों की सेनाओं में भी पंजाबी अपनी वीरता के लिये विशेष नाम पैदा कर—पंजाब क्षत्रियों की वीर भूमि है—अपने रक्त सिंचन से प्रमाणित कर रहे हैं। ब्रिटिश साम्राज्य के संचालक, अब तक क्षत्रिय भूमि को भारत का ही नहीं, अपितु ब्रिटिश साम्राज्य का (Sword arm) रक्षक बाहु समझ रहे हैं। और इस रक्षक बाहु ने अफ्रीका, इटली, फ्रांस और बर्मा के मैदानों में अपने उद्दण्ड भुजदण्ड से जर्मनी की बम वर्षा को थामने में कोई कमी नहीं की। भारत के इस खड्ग-बाहु प्रवेश द्वार, अभेद्य दुर्ग की वीर रस-मयी वीरगाथा का पारायण, उसके वीर चरित नायकों की विरुदावली के कीर्तन द्वारा किया जा सकता है। इस पारायण का क्रम कालक्रम से होगा। प्रारम्भ काल के प्रकृति विजयी वीरों का संकेत पूर्वक वर्णन किया जा चुका है। अब क्रमशः वीर गाथा के रूप में पंचनदीय वीर क्षत्रियों के गुण कीर्तन का श्रीगणेश किया जाता है। इस कथा प्रसंग के प्रारम्भ करने से पूर्व हम यह लिख देना आवश्यक समझते हैं कि हम इस कथा के प्रसंग में पञ्जाबी पञ्चनद निवासी उसी को कहेंगे जो सप्त-सिन्धु* पञ्चनद का रहने वाला या जिसने इस भूमि भाग को द्वारा

* The people of the Punjab belong to one race. "There is no somatic difference between them", as Dr. Eicksledtil, a German expert on races, pointed out several years ago. "The illusion of racial difference between them is due to the peculiar moods in which clothing and hair are worn by the people". said this great authority. Indeed, if the Sikhs Hindus and Muslims were to dress in the same style it would be difficult to say from their looks whether they were Hindus, Muslims or Sikhs. The Punjabee Muslim has more in common with the Punjabee Hindu than with the Bengalee Muslim or the Madrasi Muslim.

(10 Jan. 1946 Tribune)

भरा समृद्ध करने में अपने आप को समर्पित किया हो; और जिसने समय समय पर उत्तर दक्षिण गज़नी, मुग़लाई दिल्ली से, अथवा समुद्र भागों से यहां आकर पञ्चनद भूमि की जनता को, राक्षसी अत्याचार तथा लूटमार का साधन बनाने वालों का मान मर्दन करने में अपने आप को स्वाहा किया हो। ऐसा व्यक्ति *हिन्दू हो या मुसलमान सिक्ख हो या कोई और भी हो, हमारे लिये वही पञ्जाबी वीर है। हमें भी इसी भावना से पञ्चनद की भूमि में रहते हुए यहां की परम्परागत सभ्यता और इतिहास को गौरवशाली बनाने का संकल्प करना चाहिए, तभी हम सच्चे अर्थों में पञ्जाबी वीरों की पूजा कर सकेंगे।

× × × ×

सांस्कृतिक धर्म और साहित्यिक दृष्टि से पंजाब को भारतीय राष्ट्र का मूल स्रोत माना जाता है। वैदिक साहित्य और भारतीय आर्यजाति के सामाजिक संगठन का बीजवपन इसी पंचनद में हुआ था। उत्तर से आने वाले मुसलमान आक्रान्ताओं ने इसी स्थान पर इस्लाम के सम्बन्ध में जो रीति रिवाज़ स्थापित किये, वही भारत व्यापी इस्लाम के रीति-रिवाज बने। गुरु नानकदेव गुरु तेगबहादुर, गुरु गोविन्दसिंह ने भी भारत व्यापी धर्मप्रचार-

---

* पंजाब निवासी जनता एक ही मूल जाति से सम्बद्ध है। उनमें कोई मौलिक भेद नहीं है। जातियों उपजातियों के विषय में प्रामाणिक जर्मन ऐतिहासिक डा० ईब्स्टसैडो ने कई वर्ष पूर्व यह सचाई प्रकट की थी कि पंजाब निवासियों में जाति भेद का भ्रम उनकी वेषभूषा और केशभूषा की भिन्नता के कारण प्रतीत होता है। यदि पंजाब के हिन्दू मुसलमान सिक्खों को एक जैसा बाना पहना दें तो यह पता लगाना मुश्किल होगा कि इनमें कौन हिन्दू है, कौन मुसलमान है।

यात्राओं द्वारा इसे भारतीय राष्ट्र का भाग बनाने में काफी हिस्सा लिया। पौराणिक हिन्दू-देवी-देवता मानने वाले कभी कभी इस प्रांत को वाहीक देश कह कर इसे अपवित्र भी कहते थे; परन्तु उनमें से भी अधिकांश ने हरद्वार को पंजाबियों का तीर्थ स्थान मान कर इसे भारतीय राष्ट्र का सांस्कृतिक दृष्टि से भाग बनाए रखा।

अंग्रेजी शासन काल में भी ऋषि दयानन्द ने पंजाब को अपना मुख्य कार्यक्षेत्र इसी लिये बनाया था कि वह भारतीय राष्ट्र के साथ पंजाब को सम्बद्ध रखना चाहते थे। पंजाब के आर्यसमाज आंदोलन का मुख्य कार्य गुरुकुल विश्वविद्यालय भी स्व० श्री श्रद्धानन्द के नेतृत्व में, पंजाब की आर्य जनता को भारतीय राष्ट्र के साथ सम्बद्ध करने का मुख्य साधन बन रहा है।

भौगोलिक और व्यावसायिक तथा आर्थिक दृष्टि से राष्ट्र के विविध प्रान्त पंजाब के साथ ओत प्रोत हैं। इनके प्राकृतिक वातावरण और व्यवसायिक तथा आर्थिक उतार चढ़ावों का एक दूसरे पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इस प्रत्यक्ष सचाई को हरेक स्वीकार करता है। सामाजिक दृष्टि से पंजाब की जातियां उपजातियां समय समय पर अनेक कारणों से भारत के दूसरे प्रान्तों में जाकर बसती रही हैं। विशेषतया पंजाब के आर्य क्षत्रिय जाट भाटिया ब्राह्मणों के इतिहास इस बात के साक्षी हैं कि इनमें से अधिकांश जन समुदायों के पूर्वज, पंजाब से जाकर इन प्रान्तों में बसे थे। केवल हिन्दुओं के नहीं पंजाब के मुसलमानों की जाति उपजातियां भी यहां से फैल कर, दूसरे प्रान्तों में जाकर बसी हैं। सामाजिक दृष्टि से विवाह आदि सम्बन्धों की दृष्टि से पंजाब भारतीय राष्ट्र का सदा अंग बना रहा है। पंजाब की आर्य जातियों के कारण ही भारतवर्ष का नाम आर्यावर्त रखा गया था।

उपलभ्यमान महाभारत के पारायण से पता लगता है कि पंजाब के त्रिगर्त, संसप्तक और मद्रकराज, शल्य आदि भारत की राजनीति में, भारतीय राष्ट्र में समय २ पर होने वाले संगठनों में भाग लेते रहे। सिकन्दर के आक्रमणों के समय ऐसा प्रतीत होता है कि पंजाब भारत की राजनीति से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध न था। अथवा यह कह सकते हैं कि उस समय पंजाब में स्वतन्त्र राजशक्ति थी। जनपद, गण राजपद्धति के कारण, व्यास नदी के पार के राजा पंजाब की राजनीति में भाग न लेते थे। इन गणतन्त्र राजशक्तियों ने सिकन्दर को पंजाब में देर तक न टिकने दिया। परन्तु उस विदेशी राज शक्ति द्वारा किए गए आक्रमण ने, गंगापार की राजशक्ति को यह अनुभव कराया कि विदेशी आक्रमणों को रोकने के लिए आवश्यक है कि पंचनद प्रदेश को भारतीय राजनीति का अंग बनाया जाय। तदनुसार मौर्य साम्राज्य के सम्राट अपने प्रतिनिधियों द्वारा पंजाब की राजनीति का संचालन करते रहे। चन्द्रगुप्त अशोक के सेनापति पंचनद तथा भारत के उत्तर पश्चिम सीमाप्रान्तों पर तैनात होते रहे। गुप्त वंश के राजा इसी नीति पर चलते रहे और पंजाब में उत्तर से आने वाले विजेताओं की रोकथाम करते रहे; यही नहीं, काबुल तक अपनी सेनाओं को विजययात्रा के लिए भेजते रहे। यह नीति-मुसलमानों के आक्रमण काल तक जारी रही। इसी नीति का परिणाम था कि जब ८वीं ९वीं १०वीं सदी में विदेशी मुसलमान आक्रान्ताओं ने भारत की ओर प्रस्थान किया तो उन्हें काबुल तथा सिन्ध में भारतीय राजाओं से मुकाबला करना पड़ा। भारतीय राष्ट्र के अनेक राजा भी समय-समय पर पंजाब की राजशक्ति की सहायता करते रहे परन्तु उन विदेशी आक्रमणों के प्रबल होने तथा भारतीय राष्ट्र के अन्दरूनी

समाज के शिथिल होने के कारण काबुल के बादशाहों ने पंजाब को भारतीय राष्ट्र से पृथक् कर अपना अंग बनाने की कोशिश की। पंजाब की तात्कालिक राजशक्ति तथा जनता इस प्रवृत्ति को न रोक सकी। गजनी और काबुल से पंजाब का शासन होने लगा। इन विदेशी आक्रान्ताओं में से कई बादशाह अफ़गानिस्तान से विद्रोह कर दिल्ली में गद्दीनशीन हुए। इस समय से पंचनद का प्रदेश दिल्ली के मुगल बादशाहों—और काबुल के अफ़गानी बादशाहों की होड़ का विषय बन गया। जब तक औरङ्गजेब जैसे शक्तिशाली बादशाह दिल्ली में रहे इन्होंने पंजाब को अफ़गान राष्ट्र का अङ्ग नहीं बनने दिया। जब दिल्ली के मुगल बादशाह निर्बल हो गये तब काबुल, अफ़गानिस्तान के अब्दाली दुर्रानी तैमूर और जमान शाह ने अफ़गान राष्ट्र का अङ्ग बना कर अपने प्रतिनिधि पंजाब में तैनात किये। कई वर्षों तक मुगल प्रतिनिधियों और अफ़गान प्रतिनिधियों में संघर्ष होता रहा। इस बीच में इन्हीं दिनों बन्दा वैरागी, सिखमिसलों और महाराजा रणजीतसिंह ने इनके पारस्परिक संघर्ष से फायदा उठा कर पंजाब को, मुगलों की निस्तेज दिल्ली और अफ़गानों के काबुल से, स्वतन्त्र करने का सफल यत्न किया। महाराजा रणजीतसिंह ने अपने जीवन काल में पंजाब को स्वतन्त्र रखा। इस समय तक भारत का अधिकांश भाग अंग्रेज़ों के आधीन हो चुका था। दिल्ली में भी अंग्रेज़ों की चलती थी। दिल्ली को हथियाने के लिये मराठों और अंग्रेज़ों में परस्पर तीव्र संघर्ष हो रहा था। अंग्रेज़ों का प्रतिनिधि लार्ड लेक और मराठों का प्रतिनिधि यशवन्तराव होलकर महाराजा रणजीतसिंह से सहायता लेने आए। रणजीतसिंह ने पंजाब की तात्कालिक राजनैतिक स्थिति की दृष्टि से, दोनों को विदेशी समझा और दोनों की सहा-

यता नहीं की। पंजाब को भारतीय और अफगानिस्तान की राजनीति से स्वतन्त्र तथा असम्बद्ध रखना चाहा। महाराजा रणजीतसिंह के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण उनके जीवनकाल में राजनैतिक दृष्टि से पंजाब ब्रिटिश भारत का अङ्ग न बन सका। परन्तु उनकी मृत्यु के बाद-खालसा के परस्पर कलह और महाराजा रणजीतसिंह के अदूरदर्शी उत्तराधिकारियों के कारण पंजाब अंग्रेजी शासन-शक्ति का अङ्ग बन गया। अंग्रेज शासकों ने मुगलों की भांति दिल्ली को और भारतवर्ष को अपनाया नहीं था; वह तो लन्दन से सारे भारतवर्ष पर, आधीन राष्ट्र की भांति शासन करना चाहते थे और भारत के विविध प्रांतों तथा विविध जातियों को परस्पर संगठित न होने देना चाहते थे। इसलिए इन्होंने पंजाब में राजनीति का संचालन इस ढङ्ग से किया कि पंजाब भारत के दूसरे प्रान्तों से पृथक ही रहे।

अंग्रेज़ों ने इसे भारतीय राष्ट्र के दूसरे प्रान्तों में जारी हुए राजनैतिक आन्दोलनों से भी पृथक रखने के लिए अनेक प्रकार के यत्न किये। सन् ५७ के भारतीय स्वातन्त्र्य युद्ध में अधिकांश पंजाबी सिख सिपाहियों को भारतीय स्वतन्त्र्य युद्ध के सिपाहियों के मुकाबले में महाराजा रणजीतसिंह के 'दिल्ली चलो' के नारे का सहारा लेकर ला खड़ा किया। विजय प्राप्त होने पर इनाम रूप में हिसार हांसी तथा गुड़गावां के प्रदेश पंजाब प्रान्त को दिये। अंग्रेज इस बात को अच्छी तरह समझते थे कि यदि कोई विदेशी पंजाब में और भारत में अपना शासन कायम करना चाहता है तो उसे पंजाब को भारत से पृथक रखकर पंजाब के जनबल और शस्त्र-बल द्वारा अपना सैन्य बल बढ़ाने का प्रबन्ध करना चाहिए। जब तक भारत में स्वतन्त्रता का युद्ध शस्त्रास्त्रों से होता रहा, तब तक पंजाबी सिपा-

हियों का अंग्रेज उपयोग लेते रहे। जब भारत में वैधानिक अथवा निःशस्त्र राजनैतिक स्वाधीनता के आन्दोलन चलने शुरू हुए, तब अंग्रेज राजनीतिज्ञों ने इस प्रकार के कानून बनाए, कौन्सिल एसम्बली की निर्वाचन पद्धति में इस प्रकार के हेर-फेर किए कि पंजाब भारतीय राष्ट्र से अलग रहे। इसी नीति का परिणाम है कि आज पंजाब में कांग्रेस का आ दोलन प्रबल नहीं हो सका। लैण्ड एलीनेशन एक्ट ने पञ्जाब के मुसलमानों तथा जाटों को गैर मुसलमानों का प्रतिस्पर्धी बना दिया। परिणाम यह है कि जहां भारत के दूसरे प्रान्तों में जनता का बहुमत कांग्रेस के साथ है वहां पञ्जाब का बहुमत कांग्रेस से पृथक है। सिख, मुसलमान, हिन्दू देहाती शहरी दृष्टियों से निर्वाचन मंडल बनाकर पञ्जाब को भारतीय राष्ट्र से पृथक रखने का फिर प्रबन्ध कर दिया। सांस्कृतिक और सभ्यता की दृष्टि से भी पञ्जाब को भारतीय राष्ट्र से पृथक रखने के लिए सरकारी शिक्षा पद्धति में कई प्रकार के दाव-पेच रखे गए। उर्दू को पञ्जाब की प्रान्तीय भाषा घोषित कर और हिन्दी-गुरुमुखी में संघर्ष पैदा कर ऐसी स्थिति पैदा कर दी है कि साहित्यिक दृष्टि से पञ्जाब भारतीय राष्ट्र के साथ अच्छी तरह एक सूत्र में ग्रथित न हो सके। पञ्जाब के इस सांस्कृतिक और साहित्यिक अन्तः संघर्ष का परिणाम है कि आज पञ्जाब में स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द और लाला लाजपतराय के बाद कोई ऐसा व्यक्ति नहीं दिखाई देता जो सारे पञ्जाब का प्रतिनिधित्व और नेतृत्व कर सके।

अब अंग्रेज भारत का शासन सूत्र छोड़ रहे हैं—इस समय दिल्ली में राष्ट्रीय सरकार कायम हो गई है। पञ्जाब की राजनीति पुराने ढर्रे पर चल रही है। पाकस्तानी मुस्लिम लीगी और युनियनिष्ट मुसलमान और अकाली सिख पञ्जाब को भारतीयराष्ट्र की राज-

नीति से पृथक रखना चाहते हैं। ब्रिटिश मिशन ने भी ए० बी० सी० ग्रुप बना कर इस प्रवृत्ति को प्रबल किया है।

इस बुराई को दूर करने के लिए कांग्रेस को तथा भारतीय राष्ट्र के प्रेमियों को सामाजिक साहित्यक तथा व्यावसायिक क्षेत्रों में ऐसे आन्दोलन चलाने चाहियें जिनसे पञ्जाब दिन प्रति दिन अन्य प्रान्तों के साथ अधिक से अधिक सम्बन्धित होता जाय।

---

[३]

पंचनद के पर्वत जंगल और नदियां

हल्दीघाटी, सिंहगढ़ और थर्मोपली की पहाड़ी घाटियों में वीरतापूर्वक लड़ने वाले वीर, मानव समाज के इतिहास में विशेष सन्मान से स्मरण किए जाते है। हालैंड, इगलैंड, स्पेन की समुद्र तटवर्ती जातियों ने समय समय पर समुद्री युद्धों में जो चमत्कारी साहसपूर्ण कार्य किये थे; उनके कारण इन देशों के वीर संसार के साहसी वीरों के लिये आदर्श रूप हैं। पञ्जाब की पर्वतमालाओं और स्वच्छन्द नदियों के मध्यवर्ती द्वीपों और द्वाबों में दोनों प्रकार की वीरताओं का रोमांचकारी स्वर्णीय मिश्रण दिखाई देता है। इस रोमांचकारी मिश्रण का साक्षात् अनुभव कराने के लिये, पञ्चनद की उत्तुङ्ग शैलमालाओं, और वीर रस का सञ्चार करने वाली स्वच्छन्द नदियों तथा घने जंगलों का, रण संचालन की दृष्टि से ऐतिहासिक महत्व निर्देश पूर्वक भौगोलिक वर्णन किया जाता है।

यह प्रान्त (१३६३३० वर्ग मील) पञ्चनद प्रदेश (सिंध की सहायक सतलुज, व्यास, रावी, चनाब और झेलम) नदियों का प्रदेश है।

इसमें संदेह नहीं कि पञ्जाब के बड़े भाग में नदियों द्वारा बना हुआ कछारी मैदान या द्वाबा है। स्यालकोट के पास इस मैदान की ऊँचाई समुद्र तल से ८५० फीट है पर मुलतान के पास २५० फीट। दक्षिण पश्चिम में यहां मैदान केवल ४०० फीट ऊँचा रह गया है। नदी के पास वाला नीचा भाग खादर और दूरवाला ऊँचा भाग बांगर या माझा कहलाता है। इस त्रिभुजाकार मैदान के दक्षिण में सरहिन्द का रेगिस्तानी पठार है जो सतलज में आने वाले पानी को यमुना में जाने वाले पानी से अलग करता है। धुर दक्षिण में, अरावली की टूटी फूटी पहाड़ियां हैं। इसी पहाड़ी के आखिरी सिरे पर दिल्ली शहर बसा है। पश्चिम में सिंध और झेलम के बीच सिंध सागर द्वाबा तथा सिंध नदी के पश्चिमी किनारे और सुलेमान पर्वत के बीच का कुछ भाग भी पञ्जाब के अन्तर्गत है। मैदान के पश्चिम और उत्तरपूर्व में पहाड़ी प्रदेश है। इस पहाड़ी प्रदेश में प्रान्त का ⅓ भाग घिरा हुआ है। इसी भाग में पञ्जाब की नदियों का अधिकतर ऊपरी मार्ग है। मैदान के पास प्रायः ५००० फीट ऊँचाई वाली सिवालिक पर्वत श्रेणी बहुत नीची है। इधर की भी वह श्रेणी अधिक नीची पर बहुत चौड़ी हो गई है। कुछ और आगे हिमालय की १५००० फुट ऊँची और हिमाच्छादित पीर पञ्जाल श्रेणी है। यही श्रेणी पञ्जाब की उत्तरी सीमा बनाती है। इस श्रेणी और उच्च कराकोरम के बीच में काश्मीर की घाटी है। पञ्जाब के पहाड़ी भागों में कभी-कभी भूचाल भी आ जाता है। जेहलम और सिंध नदी के बीच में नमक के पहाड़ की प्राचीन पर घिसी हुई श्रेणी से, पहाड़ी नमक मिलता है।

पञ्जाब प्रान्त अधिक उत्तर में समुद्र से बहुत दूर स्थित है, इसकी अधिकांश ज़मीन रेतीली है। इसलिये पञ्जाब की जलवायु

विकराल महाद्वीपीय है। दिन और रात के तापक्रम तथा सरदी और गरमी के तापक्रम में भारी अन्तर रहता है।

पहाड़ से प्रायः १०० मील की दूरी तक काफी (२५ या १५ इञ्च) वर्षा हो जाती है। यह वर्षा गर्मी में (जुलाई, सितम्बर तक) दक्षिण-पश्चिमी मानसून और सरदी दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह जनवरी फरवरी में भूमध्य सागर के तूफ़ानों के कारण होती है। इसलिये उत्तरी पूर्वी पञ्जाब में दो फ़सलें पैदा की जाती हैं। पर पहाड़ से बहुत दूर दक्षिण-पश्चिमीय पञ्जाब में बहुत ही कम वर्षा होती है। गर्मी की ऋतु में यह प्रदेश आग की भट्ठी बन जाता है। जून मास में दिन का तापमान १२० अंश फार्नहाइट से भी अधिक होता है। जनवरी फरवरी में कड़ाके की सरदी होती है और रात का तापक्रम या फ्रीजिंग पाइण्ट से भी नीचे गिर जाता है। पर दिन का तापक्रम सरदी में भी कभी कभी ७५ अंश फार्नहाइट से अधिक हो जाता है। पञ्जाब की जल-वायु प्रायः खुश्क होने से बहुत ही स्वास्थकारी है।

पंजाब के पर्वत—

पञ्जाब की नमक पहाड़ियां, सफेद कोह की तलैटी से प्रारम्भ होकर पूर्व की ओर सिन्ध तक फैल कर कालाबाग के पास हो कर, सिंध सागर द्वाबा को पार कर जेहलम नदी के दायें किनारे पर एक दम समाप्त हो जाती हैं। यह पहाड़ियां समुद्र तट से लगभग २००० फीट नीचे खाई पर है। इसमें नमक श्रेणी के खनिज पदार्थ हैं। दक्षिण में रेतीला भाग है। उत्तर में शिला मय भाग हैं। उत्तर-पूर्वी सीमा पर हिमालय के नीचे के भाग में मण्डी शहर के पास भी लाल रंग का नमक मिलता है।

पंजाब के जंगल—

इनमें वृक्ष पर्याप्त मात्रा में हैं। चम्बा, कुल्लू, हज़ारा की हिमालय श्रेणी की पर्वत श्रेणियों में देवदार हैं। शिवालक में चीड़ तथा कांगड़ा, हुशियारपुर, गुरदासपुर में साल के वृक्ष हैं। इन जंगलों में विशेषतः बार के इलाके में कीकर, जंड, जाल कौल बेर मिलते हैं। समय२ पर सिक्ख नेता इन स्थानों में गुरिल्ला युद्ध करते रहे।

मुग़ल शासन काल में पञ्जाब के द्वाबों के निम्न नाम थे, और आज भी इनके यह नाम प्रचलित हैं।

सिकन्दर के समय इन प्रदेशों को क्या क्या कहते थे यह निश्चित रूप में नहीं कहा जा सकता। उपलभ्यमान वर्णनों से यह निर्दिष्ट किया जा सकता है कि किन स्थानों पर कौन कौन जनपद वा शासक थे। निम्नलिखित तुलनात्मक ब्यौरा अंकित किया जाता है।

ब्यास—रावी का मध्य प्रदेश—बारी द्वाबा—कैथोई एक्साद्र कोईगण व माझा।

रावी—चनाब का मध्य प्रदेश—रचना दोआबा—छोटे पोरस का राज प्रदेश, दक्षिण में सिबोई मलोईगण।

चनाब—जेहलम का मध्य प्रदेश—छजचज दोआबा—पोरस का प्रदेश।

जेहलम चनाव-सिन्धु नदी—का सिन्ध सागर द्वाबा

ब्यास-सतलज का मध्य प्रदेश—विस्त जालन्धर द्वाबा हुशियारपुर जालन्धर। इनमें बारी द्वाबा मुख्य है। माझा, लाहौर, अमृतसर भी इसी में हैं।

सिन्धु नदी—

पञ्जाब की नदियों के साथ इसका परिगणन इसलिये किया

जाता है; क्योंकि यह सिन्धु नदी इन नदियों के साथ हिमालय की चोटियो से निकलती है। इसके लम्बे चक्करदार धारा प्रवाहों, तथा इसके तट पर आबाद प्रदेशों की स्थिति के कारण चिर-काल से इस को भारतवर्ष के उत्तरी प्रदेशों की सीमा माना जाता रहा है। दूर पश्चिम तथा उत्तर के विजेता, सिन्धु नदी को पार करना भारतीय प्रदेश को विजय करने का प्रथम पद मानते रहे हैं। ऐतिहासिकों तथा यात्रियों ने इसके महत्व को, अड़ोस पड़ोस पूर्व पश्चिम के प्रदेशों की दृष्टि से, मुक्त कण्ठ से स्वीकार किया और इसके तीव्र प्रवाह तथा निर्झर ने जनता के हृदयों में आतंक पैदा किया। लोग समझते हैं कि सिन्ध नदी शेर के मुंह से निकलती है। वह इसके स्रोत को सिंह का बाब कहते हैं। हिमालय की कैलाश पर्वत माला में—कानरी, कागरी, कणेशी प्रदेश में इसका उद्भव है। समुद्र सतह से २२००० फीट की ऊँचाई है। कैलाश के उत्तरीय भाग में, गोरटोप या गौरी से नज़दीक रावण ह्रद झील के समीप इसका उद्गम स्थान है। तिब्बतीय दन्त कथाओं के अनुसार जो कि भारतीय साहित्य से ली गई हैं—भारतवर्ष की नदियां भिन्न २ पशुओं के मुखों से प्रवाहित होती हैं। सिंधु शेर के मुँह से, गङ्गा मच्छ के मुँह से, सतलज हाथी के मुँह से, तिब्बत की नदी घोड़े के मुँह से।

मूरक्राफ्ट, ट्रैवेक विग्न और गैराडं नाम के यात्रियों ने इसकी खोज की है। एलेक्जेंडर बर्नस ने (रणजीतसिंह के समय) समुद्र से पञ्चनद तक इसकी यात्रा कर इसके सम्बन्ध में जनता को पर्याप्त जानकारी दी।

तिब्बत से इसका प्रवाह उत्तर पश्चिम की ओर १६० मील पर बहता है। वहां इसका नाम 'सिंह का बाब' धार नदी मिलने

तक कहलाता है। इससे कुछ नीचे कश्मीर की घाटी से उत्तर पश्चिमी रास्ते से होती हुई लद्दाख की राजधानी लेह में पहुंचती है। इसके बाद काश्मीर के उत्तर पश्चिम में इस्कार्डो के पार एक नाले में परिणत होती है वहां से दक्षिण दिशा में दक्षिणी उत्तर पश्चिम से गिलगित नाम की नदी के प्रवाह को अपने में सम्मिलित करती है। इसके बाद हिन्दुकुश पर्वत माला लोअर हिल (नीचे की घाटियों) में प्रविष्ट होती है। वहाँ १२० मील तक चक्रों वाली घाटियों और नालों की दुर्गम घाटियों में इस की भयंकर धारा बहती है। पञ्जाब के उत्तर पश्चिमी कोने पर दारबन्द स्थान पर उद्गम स्थान से ८१२ मील तक पहुंचती है।

इसके बाद चच की घाटी में प्रविष्ट होती है। यहां इसकी धारा कुछ विस्तृत हो जाती है। यहां सिन्ध नदी में किश्तियां डोंड चलाई जा सकती हैं। परन्तु गहराई काफी नहीं है। अनेक स्थानों पर रेतीले तट वाले टापू बन जाते हैं। यहां से ४० मील नीचे पश्चिम से काबुल नदी की धारा इसमें मिलती है। काबुल नदी की धारा काबुल के प्रदेश, सफेद कोह की घाटी, हिन्दुकुश और चितराल की घाटियों को सींचती हुई, घाटियों और शिलाओं के मैदानों में इसमें मिलती है। काबुल नदी का पानी भी सिन्ध नदी के पानी की तरह तीव्र और भयानक होने से यहां भयंकर आवाज़ के साथ एक दूसरे से मिलते हैं। इसके बाद सिन्ध नदी सुलेमान पर्वतमाला की शाखाओं के तेज़ प्रवाह स्थानों में से निकलती है। शीत ऋतु में इसको कई स्थानों पर से पार किया जा सकता है। धारा की तीव्र गति अंग काटने वाली सरदी के कारण यहां पार करना खतरनाक है। अनेक स्थानों पर जलबाढ़

तथा नहरों के तट भी फूट पड़ते हैं। एक बार महाराणा रण-जीतसिंह ने इन स्थानों को पार करते हुए १२००—७००० घुड़-सवार बलि दिये थे।

१८०६ ई० में महाराणा रणजीतसिंह ने काबुल नदी के संगम से ऊपर सिन्ध नदी को पार किया था—यह विशेष महत्त्वपूर्ण असाधारण साहस का काम समझा गया था। नदियों के मेल तथा चक्करदार प्रवाहों के कारण उतार के समय में भी सिन्ध नदी की धारा में भी समुद्र की भांति आवाज़ होती है। परन्तु वर्षा और हिम के पिघलने से आने वाले पानी के कारण यह और भी भयंकर हो जाती हैं। इस समय इस सिन्ध नदी को आवाज़ को सुन कर यात्री स्तम्भित हो जाते हैं। अनेक स्थानों पर किश्तियां फँस जाती हैं, और चट्टानों से टकरा कर चूर चूर हो जाती हैं।

काबुल नदी के संगम से कुछ नीचे कमालिया और जलालिया नाम की दो काली चट्टानों के सम्बन्ध में यह दन्तकथा प्रचलित है। इन दोनों चट्टानों के, सिन्ध नदी में प्रवेश के कारण यह रास्ता खतरनाक हो जाता है। १६वीं सदी में बादशाह अक-बर की आज्ञा से रौशानिया मुहम्मदी पन्थ के संस्थापक पीर रौशान के बेटों कमालउद्दीन और जलालउद्दीन को इन्हीं चट्टानों की चोटियों से सिन्ध के प्रवाह में फेंका गया था। इस पन्थ का सिद्धान्त था कि इस दुनिया में सिवाय परमात्मा के और कोई नहीं है और उसकी पूजा करना भी आवश्यक नहीं है। वह कुरान की उपेक्षा करते थे और ईश्वरीय Reveald Religion में विश्वास नहीं रखते थे। रोशनाई पन्थ के इन दो प्रचारकों ने अनेक मुसलमान रूहों को नष्ट किया था। इसलिये इन चट्टानों से

इन दोनोंको नष्ट करने की समता के कारण इन चट्टानोंका नाम भी कमालिया जलालिया रखा गया। इन पर्वतीय घाटियों के प्रवाहों, बर्फानी प्रपातों तथा जल बाढ़ों के कारण पहाड़ों से उतरती हुई सिन्ध धारा, भयंकर महानद के रूप में परिवर्तित हो जाती है। समय समय पर भूमि खंडों और बर्फीले हिमपर्वतों के कारण बेदों के टूटने से महा अनर्थ हो जाते हैं। १८४१ ई० में ऐसे ही भूमि-खण्ड से भयंकर घटना जलस्फोट हुआ। इसका असर अटक तक हुआ। १८५८ ई० १० अगस्त को सिन्ध नदी ६० फीट तक चढ़ गई।

महाराजा शेरसिंह के समय एक प्रत्यक्षदर्शी ने इस घटना का वर्णन इस प्रकार किया है। कई सप्ताहों से अटक से कुछ ऊपर स्थान पर बन्द की रोक थाम होने से सिन्ध नदी का प्रवाह कम हो गया था। एक दिन उत्तर दिशा में आस पास के देहातियों ने एक काले रंग का बड़ा बादल आकाश में उभरता हुआ देखा। उन्होंने इसे हवा की एक आंधी समझा। दृश्यमान बादल धीरे धीरे नज़दीक आने लगा। और भूमि बड़े भारी धक्के से हिलने लगी। लोगों ने समझा कि असाधारण वेग वाली आंधी के साथ भारी भूचाल आ रहा है। परन्तु तत्काल वहां एक विस्तृत जलधारा एक मील के विस्तार में फैली हुई भारी वेग के साथ नीचे की ओर बहती हुई दिखाई दी। सामने आने वाली हरेक वस्तु को बहाव में लेती गई। लोग दौड़ने लगे। परन्तु अब भाग कर बचने का भी मौका नहीं रहा। कई लोग जीवन रक्षा के लिये वृक्षों पर चढ़ गये। लगभग ६००० आदमी जीवन खो बैठे। हज़ारों देहात नष्ट हो गये। हज़ारों आदमी बे घर-बार हो गए। अटक के किले में पानी २ हो गया।

तीन दिन बाद उतरा। जायदाद और जीवन को भारी नुकसान पहुंचा।

काबुल नदी सिन्धु से मिलने से ऊपर ४० मील तक किश्तियों द्वारा आर पार की जा सकती है परन्तु सिन्ध नदी की तेज़ प्रबल धारा में यह संभव नहीं। अटक के समीप कई स्थानों पर सोना भी पाया जाता है। यह स्थान सिन्ध नदी के ऊपर की तरफ और इसमें शामिल होने वाली छोटी मोटी धाराओं के पास हैं।

अटक के समीप इसका नाम अटक पड़ जाता है। यहां से फिर संकीर्ण धारा में बदल जाती है। २६० गज़ और १०० गज़ तक की चौड़ाई रहती है; परन्तु गहराई और तीव्रता पूर्ववत् रहती है। किश्तियों के पुल द्वारा अथवा छोटी किश्तियों द्वारा पतझड़ की मौसम में सिन्ध नदी को पार किया जाता है। पेशावर से अफ़गानिस्तान का मुख्य रास्ता इस स्थान पर अटक को छूता है। यहां पर पुल बना कर रेल भी चलाई गई है। नीचे उतर कर यह और भी तेज़ हो जाती है। अटक से १५ मील नीचे नीलाब स्थान पर इसकी चौड़ाई इतनी कम हो जाती है कि उसके आर पार पत्थर फैंका जा सकता है। इसके आगे सिन्ध नदी दक्षिण से दक्षिण पश्चिम की ओर सुलेमान पर्वतमाला के समानान्तर, पञ्जाब के पश्चिमी भाग की ओर बहती है। अटक से १० मील नीचे जो धारा शांत गहरी और तेज़ थी, वह इसके आगे पहाड़ियों, स्लेट की शिलाओं के बीच में से गुज़रती हुई आवर्तों में चक्कर खाती हुई इतनी भयंकर हो जाती है कि इसमें किश्ती चलाना भयावह हो जाता है। यहां उसका पानी नीलेस्याह रंग का हो जाता है। नीले पत्थर की घाटियों में से गुज़रने से

अटक के १५ मील नीचे तक उसका नाम 'नीलाब' रखा गया है। और इसी कारण यहां एक शहर का नाम भी 'नीलाब' पड़ गया है। इसके बाद पहाड़ों में से होती हुई अटक से ११० मील नीचे कालाबाग पहुंचती है, वहां से पुनः चिशाल नमक पर्वतमाला में से गुज़रती हुई, गहरी निर्मल शांत धारा का रूप धारण करती है। कालाबाग से मिट्ठनकोट तक ३५० मील के मैदान में, दक्षिण की ओर, इसके दोनों ओर के तट नीचे हैं परिणाम यह है कि बाढ़ के दिनों में इस स्थान के चारों ओर जहां दृष्टि दौड़ाएं पानी ही पानी दिखाई देता है। हिमालय की हिन्दू कुश की बर्फीली चोटियों के पिघलने पर बसन्त में बाढ़ आनी शुरू होती है और पतझड़ के आने तक उतर जाती है। मिठनकोट से २, ३ मील नीचे सिन्ध नदी पञ्चनद चनाव में मिलती है। इस पञ्चनद में पञ्जाब की नदियां मिलती हैं। यहां तक सिन्ध नदी १६५०मील मार्ग तय कर चुकी है और समुद्र तट से ४६०मील की दूरी पर आ जाती है। पञ्चनद में सिन्धनदी के मिलने के बाद, सूखी रेतीली भूमि के कारण पानी भूमि में समा जाता है, परन्तु समाता हुआ दीखता नहीं। क्योंकि धारा धीरे धीरे कम होती है। अंत में नदी कई मुहानों में बटती हुई भारतीय अरेबियन समुद्र में शामिल हो जाती है। इस नदी के पश्चिमी तट के समानान्तर कई मीलों तक सिंध से बन्नू तक उत्तरी मार्ग जाता है। और इसके पूर्वी तट के समानान्तर मुलतान से रावलपिंडी तक रास्ता जाता है। डेरा इस्माईलखां और डेरा गाज़ीखां के ज़िलों में से यह नदी होकर गुज़रती है। डेरा इस्माइलखां इस नदी के पूर्व तट पर है और डेरागाज़ीखां पश्चिम की ओर है इन ज़िलों में सिन्ध नदी का पाट ४८० गज़ से लेकर १६०० गज़

तक फैल जाता है और जल बाढ़ के दिनों में तो कई स्थानों पर मील से भी ज़्यादा चौड़ा हो जाता है। गहराई ४ फुट से २४ फुट तक होती है। सिन्ध नदी शानदार महानद हैं। बोयलिओरा नाम के यात्री के शब्दों में यह नदियों की महारानी है। चौड़ाई लम्बाई गहराई आदि इसकी अन्य विशेषताओं को दृष्टि में रखते हुए इसे संसार की विशेष महानदी कहा जाना उचित है। औरंगज़ेब के समय में इसके द्वारा बड़ा व्यापार होता था। १७वीं सदी के अन्त में हैमिल्टन ने इस नदी द्वारा भारी यातायात होता देखा था। परन्तु पीछे से इस प्रदेश के ईर्ष्यालु अमीरों के पारस्परिक संघर्ष तथा अत्याचारों ने इसके व्यापार को कम कर दिया था। १८३५ ई० में इस नदी पर पहली बार स्टीमर चलाया गया था। परन्तु १८७८ ई० में इण्डस बैली स्टेट रेलवे जारी होने पर स्टीमरों और किश्तियों का व्यापार बहुत कम हो गया। रेलवे डिपार्टमैंट के लिए बेड़ों द्वारा आर-पार सामान ले जाने का काम किया जाता है।

अटक—हिन्दी शब्द, रोक थाम—भारत की पश्चिमी सीमा को बतःता था। मध्यकालीन पौराणिक साहित्य के अनुसार इस दिशा में हिन्दुओं के लिये आगे जाना निषिद्ध था। सिन्ध नदी के पूर्वी तट पर बायीं ओर अटक का किला ऊँचाई पर नदी पर झुका हुआ है। अटक के सामने नदी के दाएं तट पर खैराबाद किला है। कइयों की राय में यह किला अकबर द्वारा और कइयों की राय में नादिरशाह ने बनवाया था।

अटक का किला १५८३ ई० में सम्राट अकबर ने नदी के यातायात को रोकने के लिये बनाया था। ख्वाजा शमसुद्दीन खाफी के निरीक्षण में बना था। यह समानान्तर चतुर्भुज की

शक्ल में है। एक पार्श्व ४००गज़ लम्बा तथा दूसरी तरफ़ के पार्श्व लगभग दुगने ८००गज़ हैं तथा हैं। दीवारें पत्थर की हैं। व्यापारी और सैनिक दृष्टि से यह किला महत्वपूर्ण है। उत्तर से आक्रमण करने वाले प्रायः सभी आक्रान्ताओं की सेनाओं (अलैक्ज़ैंडर, तैमूर, नादिरशाह) ने इस स्थान पर ही सिन्ध नदी को पार किया था। इस स्थान के पता लगाने का श्रेय सिकन्दर को दिया जाता है। सिकन्दर ने पहाड़ों को लांघकर वर्तमान कन्धार स्थान पर शिविर लगाया था। सिन्ध नदी के पश्चिमी तट की लड़ाकू जातियों को जीत कर सिन्ध नदी को टैक्सिला स्थान पर पार किया, क्योंकि यहीं धारा का पानी ऐसा था जहां पुल बन सकता था। खैराबाद के समीप उन दिनों के खटाक फिर्के के सरदार द्वारा बनाई गई कृत्रिम नहर है, जिससे आस पास की भूमि सींची जाती थी।

जेहलम—

सिन्ध से पूर्व की ओर बहने वाली पांच नदियों में जेहलम नदी लम्बाई की दृष्टि से दूसरे नम्बर पर है। प्राचीन ग्रीस एरियन इसे Hydaspes कहते थे। संस्कृत में इसका नाम वितस्ता है। स्थानीय बोली में वयात और बेवात कहते हैं। कहा जाता है कि यहीं जलालपुर के नज़दीक सिकन्दर और पोरस का युद्ध हुआ था। आइन-ए अकबरी में Betusta वैटस्टा कहा है। टाल्मी इसे Bidaspus कहता है। तैमूर का इतिहास लेखक शरफ़-उद्दीन इसे डैरिन (Derodan) और गमोड (Gamod) नाम से लिखता है।

जहांगीर ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि जेहलम नदी

का निकास (इसे वह वैबट नाम से लिखता है) वीरनाग के स्रोत से है। वह लिखता है नाम से प्रतीत होता है कि किसी समय इस स्रोत पर सांप रहता था। मैंने अपने पिता के जीवन काल में इस स्रोत को दो बार देखा था। कश्मीर से २० कोस की दूरी पर है। २० गज़ लंबे २० गज़ चौड़े अष्टभुजाकार के स्थान से झरना बहता है। आस पास अन्य पुजारियों की गुफाएं हैं। इसकी गहराई ५½ आदमी से ज्यादा नहीं है। रस्सी में पत्थर बांध कर गहराई देखी थी। मैंने राजसिंहासन पर आसीन होने के बाद इसके दोनों किनारों पर पत्थर जड़वाए। इससे बहने वाली जलधारा के तट भी, पत्थर की चट्टानों से मढ़ कर सजाए गए। इस समय इस जैसी सुन्दर नदी संसार में नहीं है। श्रीनगर से १० कोस की दूरी पर 'पामपुर' के पास यह नदी काफी विस्तार से बहती है।

कश्मीर घाटी के उत्तर पूर्वी सीमा की पहाड़ियों में लिद्दर नाम के सोते से यह नदी निकलती है इसके बाद पीर पंजाल की पर्वत मालाओं में से निकलने वाली छोटी २ नदियां इसमें आकर मिलती हैं। विशन नदी पीर पंजाल कोसावनाग नाम की छोटी परन्तु गहरी झील से जो कि समुद्र की सतह से १२००० फीट की ऊँचाई पर है, निकलती है। यहां से प्रबल धार की गति में जेहलम सुन्दर झीलों के बीच में होती हुई श्रीनगर के समीप पहुँचती है। वालार झील में शामिल होने से पहले, सिंध नदी उत्तर के ऊँचे पहाड़ों से होकर आती है।

इसके बाद दोनों नदियां मिली हुई, बर्फीले पहाड़ों से होती हुई

बारामूला के तंग दर्रे से होकर मुज़फ़राबाद को सींचती हुई पगली की सीमा पर पहुंचती है। बारामूला पर सात आर्चेस वाला पुल इस नदी पर बना है, यहां इसकी चौड़ाई ४२० फीट हो जाती है। स्रोत स्थान से बारामूला तक इसका मार्ग १३० मील है। इनमें ७० मील तक के पानी में किश्तियां चल सकती हैं। मुज़फ़राबाद से दो कोस नीचे स्रोत स्थान से २०७ मील की दूरी पर इसमें उत्तर से किशनगंगा और हसरा नाम की जलधारा मिलती है, यह नदियां छोटे तिब्बत से निकलती हैं।

इसके बाद जेहलम चांदमुख और डांगली के पास से बहती तंग पथरीली पहाड़ियों में से होती हुई स्रोत स्थान से २५५ मील की दूरी पर ओहिएडस नाम की नदी के पास पंचनद के मैदानों में उतरती है। इसके बाद समुद्र में सम्मिलित होने तक यह नदी किश्तियों के चलाने लायक हो जाती है। कुछ ऊपर की ओर जेहलम नदी, कशमीर और पंजाब के हज़ारा और रावलपिंडी ज़िलों के बीच में, सीमा भेदक के रूप में प्रकट होती है, वहां इसमें किशतियों आदि का चलाना कठिन क्या असम्भव है। परन्तु कशमीर से शहतीरें बड़ी मात्रा में बाढ़ के बहाव के साथ इसमें आती हैं। पहाड़ों में इसकी गति तेज है और इस की चौड़ाई १००—२०० गज के बीच में रहती है।

जेहलम शहर के पास इसकी चौड़ाई ४५० फीट है। अटक शहर से ऊपर सिंध नदी के पाट की चौड़ाई से इसका विस्तार ज्यादा है। जेहलम से नदी पश्चिम की ओर मुड़ती है। जलालपुर और मोंगा के जिलों को सींचती हुई—भेरा और खुशाब के प्रदेशों में पहुंचती है। इसके बाद गिरौट और साहीवाल से दक्षिणी रुख में बहती हुई यह झंग (शाहपुर जिले) के सम-

तल मैदानों में उतरती है। वहां बार के जंगलों से घिर जाती है। वर्षा के कारण इस नदी में बाढ़ आने से नीचेतल वाले प्रदेशों में अनेक प्रकार की मट्टी रह जाती है। इसके कारण इस भूमि की उपजाऊ शक्ति बहुत अच्छी हो जाती है।

अन्त में यह नदी निकास स्थान से ४६० मीलों का मार्ग तय कर मुलतान के उत्तर में १०० मील पर चनाव में मिलती है।

दोनों नदियों के संगम को (Trimmu) 'त्रिमु' कहते हैं। यह मघियाना से दक्षिण में १० मील पर है।

इस नदी के तट पर मुख्य मुख्य शहर निम्नलिखित हैं— काशमीर श्रीनगर, जेहलम, पिण्डदादनखां, भेरा, मियानी, शाहपुर।

दोनों सम्मिलित धाराएं चनाब, नाम से बहती हैं फाज़िलशाह और पूर्व से अहमदशाह के समीप २६ मील नीचे दोनों सम्मिलित धाराओं में रावी नदी मिलती है। और चनाव नाम से मुलतान के पूर्व की ओर ४३ मील तक बहती है, और दक्षिण की ओर के समीप शीनो बकरी स्थान पर सतलुज नदी इसमें मिलती है। सतलुज नदी मुलतान से ५८ कोस नीचे और बहावलपुर से ३२ मील नीचे इस स्थान पर व्यास नदी की धारा में सम्मिलित होती है। इस स्थान से ४४ कोस नीचे मिठनकोट, स्थान पर, जहां वह सब नदियां सिन्ध में मिलती हैं, वहां इन पांचों नदियों का, नाम पञ्चनद हो जाता है। कुछ दूरी तक पञ्चनद और सिन्ध नदी समानान्तर बहती हैं। इसके बाद दक्षिण पश्चिम की दिशा में यह सब नदियां सिन्ध नदी में मिल जाती हैं। जेहलम नदी के तट पर अलेक्ज़ेंडर और

पोरस की लड़ाई हुई थी। इसके समीप मुकाबले के सामने के मैदान में, जेहलम के गुजरात वाले तट पर चिलियाँनवाला का प्रसिद्ध रणक्षेत्र हैं; जहां सिक्खों और अंगरेज़ों का युद्ध हुआ था। जेहलम नदी में मछलियां बहुत हैं। इस नदी में पञ्जाब की अन्य नदियों की अपेक्षा मगरमच्छ भी ज्यादा हैं।

चनाब—चन्द्रभागा—

ग्रीक लोग एरियन आदि इसे अकिसनी कहते थे। संस्कृत में चन्द्रभागा कहते हैं। आइन-ए अकबरी में चन्दभागा कहते हैं। टालमी सैण्डबिलीस कहता था। पहाड़ों के बीच में कुछेक स्थानों पर इसे ज़ंडावाला, शान्तु भी कहते हैं।

पंजाब की पांचों नदियों में यह सब से ज़्यादा लंबी है। ३२'४८ लैटीट्यूड और ७७'२७ लॉङ्गीट्यूड पर कशमीर पर्वत-मालाओं की हिमालय की बर्फीली पहाड़ियों में इसका उद्भव स्थान है। विगनी के कथनानुसार चन्द्रभागा झील से इसका निकास है। इसके प्रवाह के ऊपर के भाग में इस नदी को चन्द्रा कहते हैं। तिब्बतसे 'एकसनीस'का प्रवाह लेकर यह नदी स्थिर धारा के रूपमें रीतानका दर्रे में से गुज़रती है। यह दर्रा समुद्रतट से १२००० फीट की ऊँचाई पर है। टांडी स्थान पर सूर्यभागा नाम की छोटी सी नदी इसमें उत्तर से आती हुई मिलती है। यहां इसका नाम चनाव पड़ जाता है। इसके बाद १३० मील तक उत्तर पश्चिमी दिशा में बहती हुई किश्तवाड़ के पास भरी हुई धारा के रूप में बहती है। यहां समुद्र तल से ५००० फीट की ऊँचाई पर उत्तर से सिनूड नाम की नदी इसमें मिलती है। यहां से दक्षिण पश्चिम रुख में बहती हुई, जम्मू से ऊपर अखनूर के पास होती हुई बहती है, यहां इसमें

किशतियां चल सकती हैं। स्यालकोट के ज़िले में पञ्जाब के मैदानों में उतरती है। खेरी रिहाल (Kheeri Rihal) के पास इसका नाम चनाब हो जाता है। इसका शब्दार्थ चीन का पानी, और इस नाम का कारण यह भी बताया जाता है कि इसका स्रोत स्थान चीन है। इस चीन शब्द को ही संभवतः ग्रीक ने अक्सिसनीज़ (Accssnis) नाम से कहा हो। यहां से पश्चिमी रुख लेती हुई वज़ीराबाद और रामनगर पहुँचती है, और फिर झँग के मरुस्थल में प्रविष्ट हो जाती है, और जेहलम के दक्षिणी तट पर उसमें शामिल हो जाती है। यह स्थान त्रिमु है। यहीं झंग स्याल के पास प्रसिद्ध प्रेमी हीर रांझा की कबर है।

एरियन ने इन दोनों नदियों के संगम का भयंकर रूप में वर्णन किया है। परन्तु आज कल बाढ़ क दिनों में भी, गर्मियों में भी इनका प्रवाह किसी प्रकार का भी आतङ्क पैदा नहीं करता।

रावी नदी इस नदी में ५० मील नीचे फ़ाज़िलपुर से १५० मील पर, मुलतान से ५३ मील ऊपर की ओर मिलती है। दक्षिणी रुख जाती हुई और साथ साथ पश्चिम की ओर मुड़ती हुई ११० मील तक जाती है। यह नदी सतलज व्यास की जल-धाराओं में मिलती है।

नदियों के संगम स्थान पर धाराएं शान्त हैं। दक्षिण-पश्चिमी भाग में कुछ दूर तक चनाब का लाल रंग का पानी और बाईं ओर पूर्व वाले भाग में बह रहे व्यास सतलुज के पीले रंग वाले पानी की धारायें स्पष्ट अलग अलग दिखाई देती हैं।

इसके बाद सम्मिलित जल धाराएं ७६५ मील का रास्ता तय कर सिन्ध नदी में समुद्र से ४५० मील ऊपर की ओर मिल जाती हैं।

रावी—

पुराने भौगोलिक इसे हाईड्रोटस यरोती (Hydrootes Yaroti) नाम से लिखते थे। आईन-ए अकबरी में इसका नाम इरावदी। संस्कृत में ईरावती कहते हैं। पंजाब की नदियों में यह सब से छोटी नदी है। टालमी एडिस (Adis), एरियन हिड्रोटस स्ट्रैबो हिरोटस। अरेबियन भौगोलिक मसूरी रैड कहता है। मिंट-गुमरी ज़िले में एक फिर्के का भी यह नाम है।

कांगड़ा ज़िले के कुल्लू स्थान में बुंगलस (Bungalles) के पहाड़ों में कोटाँग के दर्रे से पश्चिम की ओर इसका निकास है। यहां से पश्चिमी रुख में यह सिबकिरोटा नदी में मिलती है। यह नदी दालकुण्ड और गौरीकुण्ड के मध्य में एक स्रोत से निकलती है। यह दोनों कुण्ड मणिमोहिस के समीप हैं। इस स्थान को हिन्दू लोग पवित्र मानते हैं। पहाड़ी नालों के पानी से भरपूर होकर यह नदी चक्करदार धारा के साथ दक्षिण पश्चिम की ओर बहती। इन पहाड़ी इलाकों में यहां के लोग इस नदी को (Raina) रैना नदी भी कहते हैं। इसके बाद यह नदी दक्षिणी तट पर बहती हुई, चम्बा शहर के पास से होती हुई और चम्बा की राजधानी से ३० कोस पर (Liang) लियांग जलधारा को अपने में मिलाती है। यहाँ इसका नाम 'रावी' हो जाता है। 'त्रिमु' घाट पर सियोज़ के पहाड़ों से निकलने वाली, जम्मू से १०कोस की दूरी पर भद्रवाह के मैदान में पैदा होने वाली तवी इसमें मिलती है। लाहौर से १५—२० मील पर त्रिमु घाट से ३० कोस नीचे रावी शाहदौला के पुल के नीचे से गुज़रती है।

राजपुर के समीप यह मैदानों में उतरती है। यहीं से पुराने समय में शाही नहर निकाल कर लाहौर तक पहुंचाई थी। लाहौर यहां से ८० मील दूर है। चनाब के तटवर्ती वज़ीराबाद और रावी के तटवर्ती मियानी का फासला ५५ मील है। मियानी के समीप रावी का किनारा रेतीला है। इसके किनारे नीचे तलवाले और जंगलों से भरे हुए हैं।

बारी दुआबा कैनाल के मुख्य स्थान पर माधोपुर में (गुरदास पुर ज़िले में) छोटी छोटी नहरें बना कर रावी का पानी बहुत कम कर दिया गया है। इसी ज़िले में डेरा बाबा नानक के मैदानों में यह नदी फैलती है। १८७० ई० में सिक्खों के पवित्र मंदिर 'टाली साहब' को यह नदी बहा ले गई थी। अभी तक इस नदी से सिक्खों के पवित्र शहर को खतरा है। पहाड़ों से निकल कर इस नदी का रुख दक्षिण पश्चिमी है। इसी रुख में गुरदासपुर, अमृतसर के ज़िलों में से होती हुई लाहौर किले के पास बहती है।

लाहौर के समीप नदी तीन शाखाओं में विभक्त हो जाती है। एक शाखा लाहौर शहर के समीप बहती है। इसके बाद दक्षिण पश्चिमी रुख स्वीकार करती हुई—परन्तु पीछे से पश्चिम की ओर जाती हुई दक्षिणी तट पर इसमें (Degh) देग नदी मिंटगुमरी ज़िले में मिलती है। इसके बाद मुलतान ज़िले में होती हुई अहमदपुर में चनाब जेहलम की सम्मिलित धाराओं में मिल जाती है। यह स्थान रावी के निकास स्थान से ४५० मील पर है, और मुलतान शहर से ४० मील ऊपर है। इसके बाद इस नदी की तीव्रता तथा विस्तार का तैमूर और सिकन्दर के ऐतिहासिकों ने विशेष रूप से वर्णन किया है।

चनाब के पानी की अपेक्षा रावी का पानी ज्यादा गंदला लाल रंग वाला है। वर्ष में आठ महीनों तक इस नदी को कई स्थानों पर पार किया जा सकता है। रावी का जल और नदियों की अपेक्षा प्राय: कीचड़ वाला होता है, परन्तु तट ऊँचे और पक्के हैं।

लाहौर रावी के निकास स्थान से १७५ मील है। परन्तु चक्करदार प्रवाह के कारण यह दूरी नदी मार्ग से ३८० मील है। लाहौर से किशतियों द्वारा काफी गेहूं बाहर भेजा जाता था। वर्षा की जल बाढ़ में चम्बा के जंगलों से देवदार की शहतीरें काफी बहाई जाती हैं।

इस नदी में ⅔ भाग कीचड़ है शेष रेता है। इसके किनारे प्राय: रेतीले हैं और खतरनाक हैं। लाहौर के समीप इसके किनारे ४० फीट तक ऊँचे पाए जाते हैं। कई स्थानों पर २४ फुट ऊँचे रहते हैं। यहाँ इस नदी का रंग ढंग नहर का सा हो जाता है।

१६६१ ई० में औरंगज़ेब के समय में नदी का रुख लाहौर शहर की ओर हो गया। इससे भारी आतंक फैला। इसको दूर करने के लिये औरंगज़ेब ने शहर से तीन मील ऊपर की ओर बन्द बनवाया। इसके शेष भाग शहर के उत्तर पश्चिम में दिखाई देते हैं।

व्यास—

इस नदी का निकास स्थान रितानक दर्रे में लाहौल की बर्फीली चोटियों, पञ्जाब के उत्तरपूर्व में समुद्र तल से १३३२५ फीट की ऊँचाई पर है।

आईन-ए अकबरी में अब्दुलफज़ल ने लिखा है कि व्यास नदी

का निकास स्थान उस समय के सुलतानपुर परगने के कुल्लू पहाड़ों में अबिया कुंड (Abye Kund) को लिखा है । रित-नाक दर्रे से दक्षिणी रुख में ४० मील बह कर यह तेज़ धारा में पश्चिम की ओर मंडी नादौन में से होती हुई संथौल स्थान पर कांगड़ा ज़िले में प्रविष्ट होती है। यह संथौल समुद्रतट से १६२० फीट की ऊँचाई पर है। कांगड़ा में मुख्यतया इसी के द्वारा पानी का सिंचाव होता है। इसके बाद उत्तर पश्चिमी रुख में जाती हुई पञ्जाब के मैदानों में उतरती है।

हुशियारपुर ज़िले में शिवालिक पहाड़ियों की परिक्रमा लगाती हुई यह दक्षिणी रुख तथा दक्षिण पश्चिमी दिशा में ८० मील तक प्रवाहित होकर, हुशियारपुर, गुरदासपुर के ज़िलों में बहती हुई कुछ मीलों तक अमृतसर और कपूरथला रियासत की सीमा बनती है। इसके बाद इसका नीला पानी, अमृतसर दक्षिण पश्चिम में ३५ मील पर सतलुज के गदले पानी में मिल जाता है। यह स्थान हरि का पत्तन से ३ मील ऊपर है। यह स्थान इसके निकास स्रोत से २६० मील पर है।

वज़ीर मालेर घाट पर इसके पाट पर रेलवे का पुल भी है मौसम के अनुसार नदी में उतार चढ़ाव होते हैं। शीत ऋतु में यह नदी अनेक स्थानों पर पैदल पार की जा सकती है। इसके पाट में रेतीले मैदान हैं, उतार के समय इसके पाट में अनेक रेतीले टीले बन जाते हैं। व्यास सतलुज के संगम पर दोनों नदियों का आकार बराबर है, सतलुज दोनों में से कुछ बड़ी है।

रावी और व्यास के स्रोत स्थान चनाव के स्रोत स्थान से पश्चिम में है। परन्तु मैदानों में यह दोनों नदियाँ चनाव के पूर्व की ओर बहती है। रावी के साथ मिल कर यह अर्ध चक्राकार

वृत्त बन जाता है। व्यास सतलुज के संगम के पास व्यास की सहायक नदी कनर, एक झील की शकल में बदल जाती है। यहाँ अकबर ने गर्मियों में एक शिकार शिविर बनवाया था। स्थान ठंडा है, इस स्थान पर शिकार के जंगली पशु शेर चीते, हरिण, सूअर बहुत मिलते हैं। यह नदी इतिहास में प्रसिद्ध है। सिकन्दर यहां तक आकर रुक गया था। यहां से उसे लौटना पड़ा था, यहां उसने १२ भारी स्मारक स्तम्भ, स्मृति चिह्न में खड़े कराए थे। वर्तमान युग में जसवन्तराव होलकर का पीछा करते हुए लार्ड लेक ने १८०५ में व्यास नदी तक उसका पीछा किया था यहां उसे संधि करनी पड़ी थी।

सतलुज—

सिन्धु नदी की भांति इस नदी का निकास कैलाश पहाड़ की उतार वाली घाटियों में है। इसके दूर दूर के स्रोत मानसरोवर और रावणह्रद में सम्मिलित होते हैं। सतलुज का निकास स्थान सिन्धु और ब्रह्मपुत्र के समीप है। यह स्थान सैम्पू आफ़ तिब्बत (Tsampu of Tibet) कहाता है। समुद्रतल से इसकी ऊँचाई २२००० फीट है। अब्दुलफज़ल ने १५८२ ई० में लिखा है कि सतलुज का पुराना नाम Shetuder शतुद्र था। चीनी साम्राज्य के घेवलोर (Ghablore) पहाड़ में इसका निकास स्थान है। हिन्दू कैलाश को स्वर्ग तथा शिव का निवास स्थान मानते हैं। सतलुज के पहाड़ों में से प्रवाहित होती हुई गोगा (Goge) विस्तृत समतल मैदान में उतरती है। निकास स्थान से १८८ मील की दूरी पर खाब स्थान के समीप, जो कि समुद्रतट से ८५९२ फीट ऊँची है, उत्तर पश्चिम में लेह रिपटि (Leh

Spiti) नाम की नदी जो इससे बड़ी है, इसमें मिलती है। दोनों नदियों के संगम का प्राचीन यात्रियों ने चित्ताकर्षक वर्णन किया है। स्पिटि नदी गहरी, तेज़, शिलाओं वाली, चुपचाप बहती हुई शांत जल धारा के साथ सतलुज के गदले कीचड़ वाले पानी में भारी आवाज़ के साथ मिलती है। संगम से ठीक नीचे नदी इतनी गहरी है कि १० पौंड भारी सिक्के द्वारा भी इसकी गहराई का पता नहीं लगा। ८० मील ऊपर लियाँग (Liang) स्थान पर नदी को लोहे की जंजीरों से पार किया जाता है। चौड़ाई इतनी ज़्यादा है कि इस पर रस्सी का पुल नहीं बन सकता। लियाग से ३० मील नीचे नदी का लेवल समुद्रतट से १०७९२ फीट है। यहां के पहाड़ी लोग इसे लँग धिग कैम्प (Lang yhing Khamp) कहते हैं। कुछ नीचे दूरी पर इसे मुक सुंग (Muk Sung) कहते हैं। फिर सँप (Sampe) फिर जैंगटी Zenngti इसके नीचे सैंमी ड्रेंग (Sami Drang) कहते हैं। इसके नीचे शतद्रु कहते हैं।

इसके बाद इसे सतलज कहते हैं। सिन्ध नदी में मिलने तक इसी नाम से कही जाती है। चीन के प्रदेश में शिपकी स्थान पर इस नदी की ऊँचाई समुद्र तट से १०७०० फीट है। शिपकी के नीचे शिलाओं तथा चट्टानों द्वारा इसका प्रवाह रोका हुआ है। यहां एक शिला वाले घेरे में घिर जाने से इसका पानी तेज़ तथा चक्करदार हो जाता है, इसके बाद १५० मील तक यह उत्तर पश्चिम रुख में जाती है। इसके बाद पहाड़ों में अनेक घाटियों, अनेक धाराओं में विभक्त होती हुई शिवालिक पर्वतमाला के समीप पहुंचने पर एक धारा में परिणत होती है।

नदी के उत्तर में दक्षिणी तट पर १३० फार्नहाइट की गर्मी

के सोते—इस नदी से दो तीन फीट की दूरी पर हैं। इन सोतों के पानी में गन्धक की ज़बर्दस्त गन्ध आती है। शिपकी से रामपुर तक सतलुज का प्रपात एकसा समरूप में ६० फीट तक है। बिलासपुर के कुछ नीचे सतलुज—उत्तर पश्चिम की रुख में बहती है, फिर दक्षिण पश्चिम में होती हुई दक्षिण पश्चिम में जाती है। रोपड़ से कुछ मील ऊपर समीप हिमालय की पहाड़ी दीवारों को छिन्न-भिन्न करती हुई रेतीली पर्वतमाला में आती हैं। तदनन्तर पंजाब के विस्तृत मैदान में उतरती है। यहां नीले रंग तथा पहाड़ी रंग को छोड़कर गदले पानी के साथ बहती है। यहां इस में किशतियों का आना जाना हो सकता है। रोपड़ से पश्चिम की रुख में जाती है दो शाखाओं में बट जाती है—यह दोनों शाखाएं लुधियाना पहुंचने से पहले एक हो जाती है। फिल्लौर से जहां कि इसकी चौड़ाई २१०० फीट है। सतलुज में १२ महीने किश्तियों द्वारा आना जाना हो सकता है। इसके बाद 'हरि के' पत्तन की ओर बहती हुई ५७० मील की यात्रा कर व्यास में मिल जाती है।

सम्मिलित जल धाराओं का नाम संगम के नीचे घारा हो जाता है। उस स्थान पर दोनों धारा चनाव में मिल जाती हैं। और पंचनद स्थान बन जाता है। और सिंध में मिल जाती है।

इसमें मछलियां बहुत हैं, इसका पानी बहुत ठंडा होता है। क्योंकि इसका स्रोत स्थान हिममय पहाड़ियों में है—अंगरेज़ों और महाराणा रणजीतसिंह में हुई १८०६ ई० की संधि में, इसी नदी को दोनों राष्ट्रों की भेदक सीमा माना था।*

---

* छहों नदियों के वर्णन मि० लतीफ की 'हिस्टरी ऑफ पंजाब' से उद्धृत किये गये हैं। —लेखक

सरस्वती—

कई विद्वानों का मत यह है कि इस नाम की नदी सिन्धु के पूर्व में थी। अवेस्ता में और प्राचीन ईरानी शिला लेखों में सिन्धु के पूर्व तट वाले एक प्रान्त के लिये हरद्वती (ग्रीक इतिहासों में अरचोशिया) नाम आया है। ईरानी हरद्वती और सरस्वती एक ही शब्द हैं। परन्तु ताण्डय महाब्राह्मण प्रभृति ब्राह्मणों तथा बाद के संस्कृत साहित्य में नदी वाचक सरस्वती शब्द कुरुक्षेत्र की वर्तमान सरस्वती के लिये आया है। पहले सरस्वती सिन्धु के समीप थी—या एक ही थी, कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। परन्तु सिन्धु—दृषद्वती—से लेकर सरस्वती तक के, मुख्य २ सात नदियों से सिंचित प्रदेश को सप्तसिंधु कहने लगे—पीछे से सरस्वती के लुप्त होने पर भी यही नाम चलता रहा। समयान्तर में सिन्धु नदी के सिन्धु के पश्चिमी प्रदेशों के साथ ज्यादा सम्बद्ध होने और सिंध प्रान्त के अलग बन जाने पर; इस शेष प्रदेश को पांच नदियों के आधार पर पञ्चनद कहने लगे।

इस प्रदेश के नाम की दृष्टि से वैदिक संहिता काल में इसे सप्तसिंधु कहते थे। मानव धर्मशास्त्र में इसे देवनिर्मित आर्यावर्त कहा गया है। महाभारत में इस प्रदेश को पंचनद मद्रक आरट्ट और वाहीक नामों से निर्दिष्ट किया गया है। महाभारतमें शल्यकर्ण सम्वाद में इसका पंचनद धर्म निर्दिष्ट किया है। यह पंचनद ही समयान्तर में टक्क उत्तरापथ (राजशेखर)नामों से निर्दिष्ट होता हुआ ११वीं सदी में पंजाब (पाँच जलों) नाम से निर्दिष्ट होने लगा। गुरु गोविन्दसिंह ने भी इस प्रदेश को विचित्र नाटक में मद्र शब्द से निर्दिष्ट किया है।

---

[४]

केकय देश के वीर

आज कल की जेहलम और चनाब नदियों के बीच में विद्यमान भूभाग को प्रारंभ समय में केकय देश कहते थे। (श्री सातवलेकर जी के अनुसार) वाल्मीकि रामायण के वर्णन से पता लगता है कि केकय प्रदेश के राजा अश्वपति का राज्य रावी और वियासा के बीच में था। इस प्रदेश का राजा युधाजित, महाराजा दशरथ के पुत्र भरत का मामा था। (श्री चिन्तामणि वैद्य के अनुसार) इसकी राजधानी हज़ारा थी। रामायण के समय गन्धर्व देश के तथा उत्तर देश के कुछ विदेशी राजाओं ने इस प्रदेश पर आक्रमण कर दिया। महाराजा युधाजित ने अयोध्या पुरोहित राजदूत भेज कर भरत को इन विदेशियों को पराजय करने के लिये बुला भेजा। इस युद्ध का वर्णन वाल्मीकि रामायण में इस प्रकार किया गया है।

युधाजित् केकय नरेश ने अपने पुरोहित अङ्गिरा के पुत्र गार्ग्य को अयोध्या में रामचन्द्र के पास हज़ारों उत्तम घोड़ों की भेंट के साथ भेजा। भरत को जब पता लगा तो अयोध्या से एक कोस आगे जाकर उसने गार्ग्य का स्वागत किया और उन्हें सन्मान पूर्वक महाराजा रामचन्द्र के पास लाया। कुशलक्षेम पूछने के बाद गार्ग्य ने युधाजित् का निम्नलिखित सन्देश सुनाया।

सिन्धु* नदी के दोनों तटों पर गन्धर्व नाम का प्रदेश है। वहां

* सिन्धोरुभयतः पार्श्वे देशः परमशोभनः। तं च रक्षन्ति गन्धर्वा सायुधा युद्धकोविदाः।

शैलूष नाम राजा के अनेकों वीर पुत्र रहते हैं। तुम उस प्रदेश को जीत कर अपने वश में कर लो, वहां और कोई राजा प्रवेश नहीं कर सकता। राम ने महर्षि गार्ग्य और मामा युधाजित् के कथन को पूर्ण करने के लिये भरत की ओर दृष्टिपात किया। और भरत को आदेश दिया कि अपने दोनों पुत्र तक्ष और

तक्षं तक्षशिलायां तु पुष्कलं पुष्कलावते।
गन्धर्व देशे रुचिरे गांधार विषये च सः॥

वाल्मीकि उतर कांड

अन्तः पुरेऽति संवृद्धान् व्याघ्रवीर्यं बलोपमान्।
दंष्ट्रायुक्तांश्च महाकायान् शुनश्चोपायने ददौ॥
खराञ्छीघ्रान् सुखं युक्तान् मातुलोऽस्मै धनं ददौ।
तस्मै हस्त्युत्त माश्चित्रान् कम्बला न जिनानि च।
सत्कृत्य केकयो राजा भरताय ददौ धनम्॥
रथान् मण्डल चक्राश्च योजयित्वा परं शतम्।
उष्ट्र गोऽश्वखरै भृंत्या भरतं यान्तमन्वयुः॥

भरत को बड़े बड़े शिक्षित कुत्ते, शीघ्रगामी गधे, ऊंट, गौ, अश्व, सेवक कम्बलाजिन दिये। आज भी गन्धार की यह चीजें प्रसिद्ध हैं। इन श्लोकों के पाठ से पता चलता है कि उस समय यह प्रदेश बसा हुआ था। इनका और अयोध्या वालों का पारस्परिक सम्बन्ध था, सूर्य वंश के राजाओं का इधर प्रभाव था। भरत ने गन्धर्व देश को जीत कर तक्षशिला और पुष्कलावती बनाई।

गांधार विषये सिधेतयोः पुर्यो महात्मनोः।
तक्षस्य दिक्षु विख्याता रम्या नाम्ना तक्षशिलापुरी।
पुष्करस्यापि वीरस्य विख्याता पुष्करावती॥

ब्रह्मा० ३।६३।१२

पुष्कल के साथ जाकर उस प्रदेश को जीत कर इन दोनों राजकुमारों में बांट दो। भरत ने दोनों राजकुमारों और अपनी सेना के साथ अयोध्या नगरी से गन्धर्व देश को जीतने के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में अध्यर्ध मास का समय लगा और भरत सेना सहित केकय देश में पहुंचे। भरत के मामा युधाजित् को भरत सेनापति के आने का समाचार मिला वह अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह भारी जन समुदाय के साथ गन्धर्वों को जीतने के लिये प्रस्थित हुआ। भरत और युधाजित् दोनोंसेनाओं के साथ गन्धर्व देश में पहुँचे।

भरत को आया हुआ सुनकर महा बलवान् गन्धर्व लोग लड़ने के लिये उतावले हो कर शंखनाद करते हुए मैदान में आए। सात रातों तक दोनों पक्षों में तुमुल, लोमहर्षण, भयंकर युद्ध हुआ। किसी पक्ष की विजय नहीं हुई। चारों दिशाओं में मरे हुए मनुष्यों से भरपूर, तलवार, शक्ति, धनुषों के ग्राहों से भरपूर लहू की नदियां बहने लगीं। तब भरत ने अत्यन्त कुपित होकर 'संवर्त' नाम का भयंकर कालास्त्र गन्धर्वों पर चलाया। उस अस्त्र की चोट से गन्धर्व लोग छिन्न भिन्न होकर मारे गये और धराशायी हुए। गन्धर्व लोगों के मारे जाने पर उसने अपने पुत्र तक्ष को तक्षशिला में और पुष्कल को पुष्कलावती में शासन कार्य के लिये नियत किया। पांच वर्ष तक भरत वहां रहा। उसने तक्षशिला और पुष्कला नाम की नगरियों को सब प्रकार से सुंदर और सुरक्षित बना कर अपने पुत्रों को वहां का राजा नियत किया और स्वयं अयोध्या में राम की सेवा में उपस्थित हुआ; और युद्ध का सारा वृत्तान्त सुनाया और बताया कि किस प्रकार आप की सेना तथा केकय देश के वीर सैनिकों

की सहायता से गन्धर्व वंश के शैलूष नाम के राजा तथा उसके पुत्रों का पराभव कर वहां आर्य जाति का राज्य दृढ़ किया गया है। आज कल भी मध्य काल में भी भारत तथा पंजाब के शासक समय समय पर इस प्रदेश के वीर सैनिकों की सहायता से सीमा प्रान्त को विदेशियों के आक्रमण से सुरक्षित करते रहे हैं। यह केकय देश केवल मात्र रण विजयी ही नहीं थे—अपितु इनका शासन प्रबन्ध अत्युत्तम था। इसी केकय देश के राजा अश्वपति ने कभी किसी समय अपने राज्य के विषय में अभिमान के साथ यह वाक्य कहे थे—

नमे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपः।
नाना हिताग्नि र्नाविद्वान् न स्वैरी स्वैरिणी कुतः।

"मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है, न कोई शराबी हैं न कोई कंजूस है। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो यज्ञ न करता हो। सब पढ़े लिखे हैं, कोई व्यभिचारी नहीं है व्यभिचारिणी स्त्री तो कहां हो सकती है।" केकय देश के राजा रणवीर थे, क्षत्रिय थे, परन्तु साथ ही साथ ब्रह्मविद्या के भी पंडित थे। समय समय पर ब्राह्मण जिज्ञासु इनके पास ब्रह्मविद्य सीखने के लिये आते थे। इनकी वीरता को देख कर महाभारत के युद्ध में पांडव और कौरव दोनों ने इनसे सहायता ली थी। कुछ केकय वीर पांडवों की ओर से लड़े थे कुछ कौरवों की ओर से। युधिष्ठिर ने केकय देश की राजकन्या श्रुतिकीर्ति के साथ विवाह किया था। आजकल का बन्नू पुराने समय में वर्णु नाम से प्रसिद्ध था। वर्तमान बन्नू के पास कक्की या केकई नाम के दो गांव हैं। केकय देश के वीरों की सहायता तथा सहयोग से सूर्यवंशीय भारतीय राजाओं ने गन्धर्व देश का विजय कर तक्षशिला और

पुष्कलवती (पेशावर) को भारतवर्ष का अंश बनाया, उस समय से आज तक यह प्रदेश भारत के अंग बने हुए हैं। केकय वीरों की यह विजय भारत के पंचनद प्रान्त के इतिहास में सदा याद रहेगी।

---

[५]

महाभारत युद्ध के पंजाबी वीर

इस युद्ध में अधिकांश पंजाबी राजा दुर्योधन की ओर से लड़े थे। इनमें से कुछेक नाम निम्नलिखित हैं—

(१) केकय राजकुमार कुछेक पांडवों के पक्ष में थे कुछेक कौरवों के पक्ष में थे।

(२) गांधार का राजा शकुनि।

(३) संसप्तक गण और त्रिगर्त राजा सुशर्मा के सैनिक भूरिश्रवा, सिन्धु राजा जयद्रथ।

महाभारत के उद्योग पर्व अध्याय ५ और २० के निम्नलिखित श्लोकों में इसका उल्लेख इस प्रकार से है।

जयत्सेनश्च काश्यश्च तथा पंचनदा नृपाः।
ततः पंचनदं चैव कृत्स्नं च कुरु जांगलम्॥
केकयाः भ्रातरः पंच सर्वे लोहितकध्वजाः।
अक्षौहिणी परिवृताः पांडवानभि संश्रिताः॥

उद्योग पर्व ५७ अ० ६२

अविरुद्धाः रथिनः केकयेभ्यो महेष्वासाः भ्रातरः पंचसन्ति।
केकयेभ्यो राज्य मकांक्ष माणाः युद्धार्थिनश्चानुवसंति पार्थान्

उद्योगपर्व २० श्लोक

त्रिगर्त के क्षत्रिय

आज कल जिस देश को हम लोग—जालन्धर कहते हैं—उस समय इस प्रदेश का नाम त्रिगर्त था। 'त्रिगर्त राजा सुशर्मा अपने वीर सैनिक गणों के साथ दुर्योधन की ओर से लड़े थे'। उस समय जब कभी दुर्योधन को अर्जुन को—मैदान से बाहर भेजने की आवश्यकता होती थी तो इन संसप्तक गणों के द्वारा ही वह उसे रणांगण से दूर ले जाते थे। यह संसप्तक गण शस्त्र अस्त्र विद्या में अत्यन्त निपुण थे—अर्जुन के सिवाय कोई वीर इनकी गति को रोक नहीं सकता था। महाभारत में संसप्तक गणों को अर्जुन ही नियन्त्रण में रख सका। आज भी उस प्रदेश के सिपाही अपनी वीरता और दृढ़ प्रतिज्ञा के लिये प्रसिद्ध हैं। कांगड़ा और मंडी के राजा अपने आपको त्रिगर्त राज सुशर्मा तथा संसप्तकों के उत्तराधिकारी मानते हैं।

× × × ×

इसके इलावा शकुनि के गांधार सिपाही—तक्षशिला और पुष्कलावती इलाका के योद्धा अपनी रोमांचकारी वीरता से लड़े। वाह्लीक लोग उत्तर पश्चिम पंजाब में रहते थे। राजा प्रह्लाद तथा वाह्लीक नरेश के नेतृत्व में वाह्लीक पाण्डवों से लड़े और उनकी गति को रोकते रहे। मालव-क्षुद्रक मद्रराजा के साथ—पड़ोस के भी समय २ पर वीरतापूर्वक पांडवों को हैरान करते रहे। पौरव राजा भूरिश्रवा जयद्रथ सैन्धव राजा भी पंजाब के—गिने हुए वीर थे। जयद्रथ सिन्धु राज ने अभिमन्यु के व्यूह प्रवेश करने पर पांडवों के किसी सेनापति को व्यूह में नहीं घुसने दिया अकेला सबको रोकता रहा। अर्जुन दूर गया हुआ था। इसके कारण अभिमन्यु का वध

हुआ। अगले दिन अर्जुन ने जयद्रथ पराक्रम पूर्वक दमन तथा वध किया। इसी प्रकार से आजकल के जेहलम-चनाव के बीच के प्रदेश के पौरव (पोरस का प्रदेश) भूरिश्रवा भी १८ दिन तक पांडवों के साथ वीरतापूर्वक लड़ते रहे—दुर्योधन इन पंजाबी क्षत्रियों की सहायता के भरोसे अन्तिम दम तक विजयी होने की आशा से लड़ता रहा। महाभारत युद्ध में भी पंचनदीय क्षत्रियों ने अपनी वीरता की छाप उस समय के क्षत्रियों के हृदयों पर अङ्कित की।

मद्रराज शल्य

आजकल के स्यालकोट से लेकर लाहौर अमृतसर तक के प्रदेश को महाभारत के समय मद्रदेश कहते थे। प्राचीन राजवंशावलियों के अनुसार अनु की सन्तान उशीनर—उशीनर की सन्तान औशीनर शिवि के चार पुत्रों में से मद्रक नाम के राज कुमार ने यह देश बसाया था। नील पुराण के अनुसार मद्रदेश की सीमा इस प्रकार से थी।

शतद्रु—व्यास को पार करके—देविका नदी तक मद्रदेश है। उन दिनों वह उजाड़ पड़ा था। देविका नदी स्यालकोट में से होती हुई गुजरांवाला जिला का स्पर्श करके कालाशाह काकू के परे पिपराला ग्राम के पास से होती हुई बहती है। इसे अब भी 'ओका'

शतद्रुं च ततः तीर्त्वा मुनिर्गणाश्च निम्नगाम्। अर्जुनाश्रयमासाद्य देव सुदं तथैव उत्तीर्य च महा भागां विपाशां पाप नाशिनीम्। दृष्टवान् सकलं देशं तदा शून्यं स कश्यप दृष्ट्वा स मद्रविषयं शून्यं प्रोवाच पन्नगम् यैव देवी उमासैव देविका प्रथिता भुवि। मद्राणा मनुकम्पार्थं भवति रवतारिता।

कहते हैं। व्यास, रावी, चनाव के बीच के प्रदेश को मद्र देश कहते थे इसकी राजधानी शाकल थी। इसे कई लोग सांगला से मिलाते हैं कई स्यालकोट से। इस देश के साथ लगते हुए वाहीक यौधेय मालव नाम के जनपद थे। मद्रदेश का राजा शल्य इन सब गणों में मुख्य था। वह वाहीकों से कर भी लेता था। मद्रदेश के साथ लगते जनपद शस्त्रजीवी और लड़ाके थे। शल्य राजा अपने गुणों तथा बल के कारण इस प्रदेश का प्रसिद्ध राजा माना जाता था।

जिस समय पांडवों और कौरवों में युद्ध होना निश्चित हो गया। दोनों पक्षों ने अपने २ राजदूत भारतवर्ष के विविध भागों में सहायतार्थ अपनी ओर करने के लिये भेजे—उसी समय राजा शल्य भी अपनी मद्रसेना के साथ स्वयं ही पांडवों की सेना में सम्मिलित होने के लिये प्रस्थित हुआ। इधर स्वयं दुर्योधन तथा उसके राजदूत पंचनद के बलवान क्षत्रियों को अपने पक्ष में करने के लिये विचर रहे थे। दुर्योधन ने वाह्लीक (पंचनद के उत्तर-पश्चिम के राजा प्रह्लाद) केकय देश के राजा तथा त्रिगर्तराज सुशर्मा और सिंधु सौवीर के राजा जयद्रथ के पास अपने दूत भेजे और स्वयं वह गुप्त रूप में—पंचनद में विचर रहा था और विविध गणों को अपनी ओर कर रहा था। इतने में उसे पता चला कि मद्र राजा शल्य पांडवों के पक्ष में सम्मिलित होने जा रहा।

उसने राजा शल्य को भी अपने पक्ष में करने के लिये अपने राजदूतों तथा गुप्तचरों को आदेश दिया कि तुम गुप्त अप्रकटरूप में मद्रराजा शल्य—तथा उसकी सेना का आतिथ्य-स्वागत इस ढंग से करो कि उसे लाचार होकर—आतिथ्य करने वालों को वर

देने की इच्छा हो। राजा शल्य सहदेव नकुल के मामा थे। पाण्डु की पत्नी माद्री का भाई था। उनके लिये स्वाभाविक था कि वह अपने भानजों को राजसंकट से मुक्त करने के लिये यत्न करते। परन्तु—मेरे मन कछु और है विधना के कछु और।

शल्य राजा की सेना शाकल नगरी से पड़ाव करती हुई लंबा मार्ग तय करती हुई आ रही थी। रास्ते में दुर्योधन के राजदूतों ने हर पड़ाव पर राजा शल्य तथा उसकी सेना के लिये भोजनागार, शयनागार, स्नानागार तथा राजस स्वादिष्ट भोजनों का प्रबन्ध किया। उस प्रबन्ध को देख कर वह भूल गये कि हम यात्रा में हैं या अपने राजमहल में। राजा दुर्योधन ने उनके सत्कार के लिये मार्ग में अनेक रत्नों से चित्रित विचित्र सभा शिविर बनाए। रमणीय देशों में अनेक शिल्पकारों को भेजकर अनेक उत्तम स्थान बनवाए, उनमें खाने के योग्य उत्तम भोजन और पीने की उत्तम वस्तुएँ रखवादीं। मार्ग में अनेक सुन्दर कूएँ, अनेक प्रकार की बावड़ियां और जलाशय भी बनवाए। उन सब सभाओं में ठहरते हुए और दुर्योधन के राजदूतों से देवतों के समान पूजित होते हुए राजा शल्य यात्रा करने लगे। एक दिन राजा शल्य देवों के समान साधारण मनुष्यों के लिये अलभ्य, सुख देने वाले, तरह तरह के पदार्थों से भरपूर सभा सैन्य शिविर में पहुँचे। उसकी अपूर्व शोभा को देखकर, उन्होंने अनुभव किया कि यह स्थान मनुष्यों का बनाया हुआ नहीं है। उस स्थान पर वह अपने आप को इन्द्र समान समझने लगे और उन्होंने प्रसन्न होकर सेवकों से पूछा युधिष्टिर के कौन से सेवकों ने इस सैन्य शिविर को बनाया है। उनको शीघ्र हमारे पास बुला लाओ, हम प्रसन्न होकर उन्हें पारितोषक देना

चाहते हैं, राजा दुर्योधन के दूतों ने उसी समय जाकर यह बात विस्मय के साथ दुर्योधन को कह दी। दुर्योधन ने समझ लिया कि अब राजा शल्य प्रसन्न हैं और इस समय वह अपना प्राण तक देने को उपस्थित हैं। तब दुर्योधन गुप्त रूप में राजा शल्य के पास गये।

शल्य ने देखते ही पहचान लिया और जान लिया कि यह सब यत्न तथा सेवा उपचार दुर्योधन ने कराया है। तब प्रसन्न हो कर कहा कि अभीष्ट इच्छानुसार जो मांगना चाहो मांगो।

दुर्योधन ने कहा कि हे महाराज शल्य! अपने वचन को सत्य कीजिये और हमारे सेनापति बनिये। शल्य ने कहा—दुर्योधन जो तुमने मांगा, सो हमने दिया। सो वैसे ही होगा और जो कहना है सो कहो। दुर्योधन ने कहा—आपने मुझे अनुगृहीत किया, मुझे मुँहमांगा वरदान दिया, अब मेरे साथ चलिए।

शल्य बोले हे दुर्योधन! तुम हस्तिनापुर जाओ मैं युधिष्ठिर तथा पांडवों को देखने जाता हूं, देर से मैं उन्हें नहीं मिला। उन्हें मिलने को मेरी उत्कट इच्छा है। उन्हें मिल कर मैं हस्तिना पुर पहुँचूंगा। दुर्योधन ने कहा आप वहां से शीघ्र लौटें, क्योंकि हम आप के ही आश्रित और आधीन हैं। और अपने वरदान का भी ध्यान रखें। शल्य ने कहा—तुम हस्तिनापुर जाओ हम शीघ्र लौटेंगे। दुर्योधन हस्तिनापुर चला गया। शल्य उस उपसव्य नामक नगर में पांडवों के शिविर में गये। वहां सब पांडवों को आलिंगन पूर्वक छाती से लगाया। कुशल क्षेम पूछने के बाद बीते हुए कष्टों से मुक्त होने की शुभाकांक्षा प्रकट की। तदनन्तर राजा शल्य ने दुर्योधन के मिलने का और उसको वर देने का समाचार युधिष्ठिर से कह दिया।

महाराज युधिष्ठिर ने कहा हे राजन् आपने दुर्योधन को जो वरदान किया वह अच्छा किया। हे वीर हम भी आपसे एक वरदान मांगना चाहते हैं सो वह आप हमारे लिये अवश्य प्रदान करें। हे राजसिंह जिस समय कर्ण और अर्जुन का युद्ध होगा, उस समय आप कर्ण के सारथि होंगे, तब आपने अर्जुन की रक्षा करनी। आप हमारे पूजनीय प्यारे मामा हैं। यह वरदान तो आपको देना ही होगा। आप उस समय कर्ण का तेजो भंग कर उसके बल को क्षीण करें। शल्य ने कहा हे पांडव तुम्हारा कल्याण हो। हम निश्चय अर्जुन और कर्ण के युद्ध के समय कर्ण के सारथि बनेंगे, क्योंकि वह हम को कृष्ण के समान कुशल सारथि मानते हैं। जब कर्ण युद्ध करने की इच्छा करेंगे तब हम उसके साथ तेजो भंग करने वाले वचनों से सम्भाषण करेंगे। जिससे उसका बल घटे। प्यारे तुमने जो कुछ कहा है हम वैसा ही करेंगे—और भी यथाशक्ति तुम्हारा कल्याण करेंगे। इसके बाद कुशलक्षेम संभाषण करके शल्य दुर्योधन के पक्ष में शामिल होने हस्तिनापुर चले गये।

× × ×

द्रोणाचार्य का वध हो गया है। कौरवों की सेना त्राहि २ कर रही है। दुर्योधन ने अश्वत्थामा की सलाह से—अपनी चिर—अभिलषित इच्छा को पूर्ण करने के लिये कर्ण को सेनापति नियत किया। कर्ण के अतुल पराक्रम को जानकर कौरव सेना हर्षित होने लगी। परन्तु यह बड़ी भारी दिक्कत थी कि कर्ण अर्जुन का तो शस्त्रों से मुकाबला करेगा, परन्तु प्रश्न यह था रथ संचालन में कृष्ण का मुकाबला कौन करेगा। कर्ण ने राजा दुर्योधन से कहा कि यदि महाराज शल्य सारथि बनना मान लें तो हमारी विजय

निश्चित है। रथ चलाने में अश्वविद्या में—कृष्ण का मुकाबला केवलमात्र शल्य ही कर सकते हैं मुकाबला ही नहीं अश्वविद्या में वह कृष्ण से उत्तम हैं। राजा दुर्योधन विजय की उमंग में कर्ण की इच्छा—अनुसार राजा शल्य के पास गये और उनसे कहा—

हे सत्यव्रत महात्मन्! आपसे सब शत्रु कांपते हैं। आपने कर्ण के वचन सुने हैं। मैं सब राजाओं के बीच में, आपसे अनुरोध करता हूं कि आप पांडवों के नाश और हमारे कल्याण के लिये कर्ण के सारथि बनिए। आप कृष्ण के समान योद्धा हैं पृथ्वी में आपके सिवाय रथके घोड़े हांकने के योग्य और कोई मनुष्य नहीं है। युद्ध में आप कर्ण की रक्षा कीजिए।

दुर्योधन के वचन सुनकर शल्य क्रोध से उत्तेजित हो, भौंहें टेढ़ी कर, हाथों को बार २ वेग से हिलाते हुए—कुल, ऐश्वर्य, श्रुत और बल के अभिमान से लाल नेत्र होकर बोलने लगे हे गांधारी पुत्र! तुझे हमारा कोई विश्वास नहीं जो हमारा निरादर कर हमें कर्ण का सारथि बनने को कहता है। तू हम से कर्ण को अधिक जानकर उसकी प्रशंसा कर रहा है परन्तु मैं कर्ण को किसी दशा में भी अपने समान नहीं समझता। तुम किसी योद्धा को हमसे अधिक बताओ हम उसे जीतकर अपने देश को लौट जायेंगे। अथवा इस युद्ध का भार हमारे सिर पर दो और फिर देखो किस प्रकार हम शत्रुओं का नाश करते हैं हम लोग अपने आदर और निरादर को देखकर काम करते हैं। तुम युद्ध में हमारा निरादर मत करो। मैं अपने तेज से समुद्र को भी सुखा सकता हूँ—ऐसे समर्थ मुझ व्यक्ति को—तुम कर्ण का सारथि बनने को कहते हो। कोई महात्मा, पापी का नौकर नहीं हो सकता। जो किसी प्रीति से आए हुए महात्मा को पापी के वश में डाल देता है—उसको नीच

की सेवा में नियुक्त कराना यह पाप कर्म है। ब्राह्मण और क्षत्रियों की सूत जाति सेवक है। क्षत्रिय कभी सूत की आज्ञा को नहीं सुन सकता। मैं अपने अपमान को सहकर युद्ध नहीं करूंगा तुम से पूछकर घर को जाता हूं—दुर्योधन ने अनुनय विनय से शल्य को जकड़ लिया और कहा आप जो कहते हैं सत्य है परन्तु मेरा अभिप्राय भी सुन लें।

न कर्ण और न मैं, आप से अधिक बलवान् हैं। आप जो कहेंगे मिथ्या नहीं होगा आपके सब पुरुष लोग सत्य बोलते थे—इसीलिये आपके गोत्र का नाम आर्तायनि (ऋत-वादी) है। आप शत्रुओं के हृदय में कांटे के समान शूल देते हैं इसीलिये आपका नाम शल्य है। आपने जो हमें वरदान दिया था कि तुम्हारा कल्याण करेंगे आज उसे सत्य कीजिये। आप कर्ण और मुझ से कम बलवान् नहीं है परन्तु आप घोड़ों की विद्या को जानते हैं इसीलिये हम आपको सारथि बनने को कहते हैं और दूसरी बात यह है कि सारा संसार कर्ण को अर्जुन के समान और आपको कृष्ण के समान मानता है। कर्ण अर्जुन से शस्त्र विद्या में और आप कृष्ण से अश्वविद्या में अधिक हैं हे मद्रराज ! आप कृष्ण की अपेक्षा अश्वविद्या में दो गुणा अधिक विद्वान् हैं।

शल्य बोले ! हे गांधारी पुत्र तुम ने जो सब लोक और सेना के बीच में हमें कृष्ण से अधिक कहा है इसलिये हम तुम से प्रसन्न हुए। हे वीर हम अब यशस्वी कर्ण के सारथि बनेंगे और अब कर्ण निर्भय होकर अर्जुन से युद्ध करे। परन्तु कर्ण के साथ एक प्रतिज्ञा कर लेता हूं। मेरी जो इच्छा होगी कर्ण को कहूंगा उसे तुम दोनों ने सहना होगा। कर्ण ने कहा हे मद्रराज ! जैसे शिव के ब्रह्मा और अर्जुन के कृष्ण सारथि हैं वैसे ही तुम नित्य

हमारे सारथि बनो। शल्य बोले आर्यों का आचार यह है कि अपनी प्रशंसा, दूसरों की निन्दा, अथवा अपनी निन्दा व दूसरों की प्रशंसा नहीं करनी चाहिए। तथापि हे विद्वन्, तुम्हारे निश्चय के लिये हम जो कुछ कहते हैं उसमें आत्म प्रशंसा है तो भी उ सुनो जिससे तुम्हें तसल्ली हो।

मैं इन्द्र के सारथि मातलि के समान घोड़ों का हांकना, फिराना, लौटाना और दुर्गम से दुर्गम स्थान तक पहुंचाना जानता हूं—और उनकी रोग चिकित्सा भी जानता हूं हे सूत पुत्र! जब तुम अर्जुन से युद्ध करोगे, तब मैं तुम्हारे घोड़ों को हांकूंगा तुम निश्चिन्त होकर युद्ध करो।

शल्य सारथि बन गये—कर्ण ने महा सेनापति की स्थिति से युद्ध किया। प्रारम्भ में ही राजा शल्य और कर्ण में परस्पर समालोचना छिड़ गई। कर्ण ने मद्र देश की निन्दा की। शल्य ने मद्र देश की प्रशंसा की और साथ ही अर्जुन की प्रशंसा की—और समय २ पर उचित सलाह भी दी परन्तु रथ संचालन में कृष्ण का पूरा मुकाबला किया—न कर्ण को शिकायत हुई, न दुर्योधन को। भाग्यचक्र से रथ चक्र के भूमि में धंसने से कर्ण हार गया—शल्य और कृष्ण रथसंचालन मुकाबले में दोनों बराबर रहे। कर्ण रथ से उतरा हुआ—भूमि पर खड़ा हुआ अर्जुन के तीरों का लक्ष्य बनकर यमलोक गया—शल्य सारथि के हाथों में जब तक बागडोर रही उसका अर्जुन बाल बांका न कर सका—शल्य की इस सचाई और वीरता को देखकर दुर्योधन तथा कौरव धन्य धन्य करने लगे।

×   ×   ×   ×

कर्ण की मृत्यु के बाद—कौरवों का सेनापति कौन हो?

शल्य तथा मद्रसेना की अदमनीय वीरता को देखकर सहसा शल्य को सेनापति नियत किया गया। शल्य ने पाण्डवों की सेना के हरेक वीर को मैदान में ललकारा—द्वन्द्व युद्ध में एक न एक बार सब को हराया—स्तम्भित किया—बेहोश किया अपने सगे भांजे-सहदेव, नकुल पर भी क्षत्र धर्म के अनुसार आक्रमण किया, युद्ध में अपने पुत्र का भी बलिदान किया। पांडवों में से कोई उसका मुकाबला न कर सका—उसके शस्त्र बल के सामने अनेक बार पांडव हारे। शल्य रण का योद्धा भी था और वाणी का धनी भी था—उसकी सत्य वाणी का सिक्का उस समय का संसार मानता था उसने दुर्योधन को जो वचन दिया—सम्बन्धियों के मोह को तिलांजलि देकर उसका पालन किया। अन्त में सत्यवादी युधिष्ठिर और सत्यवादी शल्य का द्वन्द्व युद्ध ठना।

शल्य ने सर्वतो भद्र नाम का व्यूह रचा। स्वयं सिंधु देश के प्रसिद्ध घोड़ों वाले रथ पर सवार हुआ और व्यूह के प्रवेश द्वार पर सेनापति होकर स्थित हुआ। मद्र सिपाही और कर्ण पुत्र उसके साथ थे। बाईं ओर त्रिगर्त वासी संतप्तक-सुशर्मा से घिरे हुए, कृतवर्मा खड़े हुए। गौतम दाईं ओर खड़े हुए उनके साथ शक और यवन सिपाही थे। पीछे अश्वत्थामा काम्बोज देश के वीरों से घिरा हुआ अवस्थित हुआ। दुर्योधन और शकुनि व्यूह के बीच में कुरु सैनिकों और घोड़ों से घिरे हुए खड़े हुए।

युधिष्ठिर शल्य पर आक्रमण करने के लिये शस्त्र सज्जित होकर मैदान में आए। सहदेव नकुल उनके चक्र रक्षक थे। सात्वकि युधिष्ठिर के दक्षिण दिशा में अवस्थित हुए।

धृष्ट द्युम्न उत्तर दिशा में खड़े हुए। धनञ्जय युधिष्ठिर के पीछे पृष्ट रक्षक होकर खड़े हुए। आगे २ भीमसेन गदा हाथ में लिये

चले। राजा शल्य और राजा युधिष्ठिर दोनों सत्यवादी—एक दूसरे पर वार करने लगे—कभी कोई जीतता कभी कोई—अन्त में युधिष्ठिर के ब्रह्म तेज के सामने शल्य मंद तेज हो गये। युधिष्ठिर ने चिरकाल से सुरक्षित—शक्ति का प्रयोग किया शल्य ब्रह्म तेज और क्षत्र तेज से मिश्रित उस शक्ति के तेज को न सह सके और भूमि पर गतप्राण होकर गिर पड़े। शल्य को गतप्राण हुआ देखकर—कौरव सेना में भगदड़ मची। परन्तु—मद्र राजा शल्य के मद्र सिपाही—दुर्योधन के मना करने पर भी, जी जान पर खेलकर पांडवों की सेना पर टूट पड़े। पांडवों की सेना से घिरी हुई सेना—लाचार होकर त्राहि २ करने लगे। अश्वत्थामा की प्रेरणा से दुर्योधन ने कौरव सेना भेजकर उन्हें पांडवों की सेना के चंगुल से बचाया। इस प्रकार उस समय का पंचनदीय प्रतापी राजा शल्य अपना नाम—तथा यश फैलाकर—परलोक को सिधारा—भूमि पर अचेत पड़े हुए भी उसके चेहरे पर सचाई और वीरता चमक रही थी।

कर्ण उवाच—(कर्ण पर्व ४० अध्याय)

तत्र वै ब्राह्मणो भूत्वा ततो भवति क्षत्रियः।
वैश्यः शूद्रश्च वाहीक स्ततो भवति नापितः॥
नापितश्च ततो भूत्वा पुनर्भवति ब्राह्मणः।
द्विजो भूत्वा च तत्रैव पुनर्दासोऽभिजायते॥

शल्य—सर्वत्र ब्राह्मणाः सन्ति सन्ति सर्वत्र क्षत्रियाः।
वैश्याः शूद्राः स्तथा कर्ण स्त्रियः साध्व्यश्च सुव्रताः।
रमन्ते चोपहासेन पुरुषाः पुरुषैः सह॥

पंजाबियों की वर्णव्यवस्था जटिल नहीं लचकीली थी और आज भी वही स्थिति है।

[६]

सप्तसिन्धु पंचनद के सुनहरी खँडहर

सप्तसिंधु और पंचनद इतिहास में प्रसिद्ध हैं। दोनों एक दूसरे के पड़ोसी थे। महाभारत में सिन्धु के राजा जयद्रथ का महत्वपूर्ण उल्लेख है। राजा दुर्योधन को इसका बड़ा भरोसा था। बनवास के समय इसने दुर्योधन की ओर से महाराणी द्रौपदी का अपहरण भी करना चाहा था। इस अकेले ने द्वार रक्षक की हैसियत में पाण्डवों के किसी भी योद्धा को चक्र-व्यूह में प्रविष्ट नहीं होने दिया था। महाभारत के समय में सिंधु प्रदेश महाजनपद था। सिंधु राज जयद्रथ, सिंधु सौवीर दोनों का राजा था। "सिंधुराष्ट्र मुखानीह, दश राष्ट्राणि यानि ह"। महाभारत के इस श्लोक से पता चलता है कि सिंधु प्रदेश में दश राष्ट्र (सिटी रिपब्लिक) थे। यहां के निवासी सत्तु को विशेष रूप से खाते थे—इन्हें सत्तु प्रधाना सिंधवः कहा गया था। यहां के घोड़े प्रसिद्ध थे— इसी लिये इस प्रदेश के नाम पर घोड़े के लिये संस्कृत में सैंधव शब्द का प्रयोग होता था। इसकी राजधानी के विषय में ऐतिहासिक सिलविनलिवि ने निम्न-लिखित श्लोक प्राचीन साहित्य में से खोज कर प्रकाशित किया है।

*दन्तपुरं कलिङ्गानां, अश्वकानां च पोदनम्।
माहिष्मती अवन्तीनां, सौवीराणां च रोरुकम्॥

---

*सौवीर सिंधु की राजधानी रोरुक लिखा है। अरबी ऐतिहासिकों का अलरूर अनेक ऐतिहासिकों की राय में आजकल का रोरी (रोरुकम्) है। संस्कृत साहित्य में सिन्धु सौवीर अत्यन्त प्रसिद्ध था। इस प्रदेश की एक नगरी दात्तामित्री भी थी। बाणभट्ट ने सौवीर राज्य का वर्णन किया है। यहां की कांजी, बदरीफल

इस सिंधु सौवीर देश की सभ्यता पर प्रकाश डालने वाले मोहएडजाडो और हड़प्पा के खँडहर मिले हैं। इन खँडहरों में जिस सभ्यता का विकास मिलता है उसे आजकल के ऐतिहासिक सिंधु वैली की सभ्यता कहते हैं। हम इसे सिंधु सौवीर की सभ्यता कह सकते हैं। इसका उद्भव और विस्तार रामायणकाल के बाद और महाभारत काल के समानान्तर हुआ था। पड़ोसी राष्ट्र के नाते पंजाब की सभ्यता भी इससे मिलती जुलती थी। महाभारत में पुरों नगरों तथा मूर्तिकला वाली जिस सभ्यता का वर्णन मिलता है, उसका प्रतिबिम्ब इन खँडहरों में भी दिखाई देता है। महाभारत की मूर्तिकला का परिचय, द्रौपदी स्वयंवर में अर्जुन द्वारा किये गये मत्स्य वेध में चलती पुतली वाली मछली की मूर्ति, और एकलव्य द्वारा रची द्रोण की मूर्ति से मिलता है। मय दानव ने पांडवों को सुन्दर मय नगरी बनवा कर दी थी। वह भी तात्कालिक वास्तु निर्माणकला का द्योतक है। मोहएड जाडो और हडप्पा के इन खँडहरों की खोजों के प्रवर्तक संचालक मि० मार्शल ने इस सभ्यता के सम्बन्ध में जो ऊहापोह किये हैं; उसका सार डा० लक्ष्मण स्वरूप जी और श्री माधोस्वरूप वत्स एम० ए० के शब्दों में अङ्कित करते हैं—

मोहएड जाडो

ईरान के सम्राट् डेरियस (Darius) ने भारत के उत्तरीय भाग पर आक्रमण किया और सिन्धु प्रदेश को अपने राज्य में

और आंखों के अञ्जन प्रसिद्ध थे। शान्तिपर्व में "राजा शत्रुतपो नाम सौवीरेषु महातपा" सौवीर के राजा शत्रुतप का भी नाम है। महाभारत में, वसाति सिंधु सौवीर का भी उल्लेख है। पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी सिंधु सौवीर का विशेष उल्लेख है।

मिला लिया, इसका उल्लेख नक्श-ए-रुस्तम शिलालेख में मिलता है। इस शिलालेख का काल ईसा से ५१० वर्ष पूर्व है। प्रायः पाश्चात्य इतिहासज्ञ भारत का प्राचीन इतिहास ईसा से छठी या सातवीं शताब्दी पूर्व से आरम्भ करते हैं। इससे पहले के काल को वे ऐतिहासिक काल से प्राचीन काल मानते हैं। भारत की इतिहास परम्परा के पण्डितों की स्मृति, कलि-काल के आरम्भ से भी बहुत दूर जाती है। यदि सत्य, द्वापर और त्रेता युगों की बात छोड़ दी जाय और केवल वर्तमान कल्प के विषय में ही विचार किया जाय, तो भी, भारतीय पण्डितों के मतानुसार, भारत का इतिहास कलि-काल के समकालीन है और ईसा से ३१०३ वर्ष पूर्व आरम्भ होता है। पाश्चात्य विद्वान् इस लम्बी गणना को सार-रहित मानते आये हैं; पर पिछले ग्यारह वर्षों में हड़प्पा और मोहञ्जोदारो* में उपलब्ध पुराने पदार्थों के अध्ययन ने यूरोप और अमेरिका के विद्वानों के मन में एक क्रान्ति पैदा कर दी है। वे अब मानने लग गये हैं कि भारत का इतिहास ईसा से ३०००-४००० वर्ष पूर्व तक पहुँचता है। हड़प्पा और मोहञ्जोदारो की उपलब्धियों से भारतीय-इतिहास-परम्परा की आश्चर्यजनक पुष्टि हुई है; इस लिये भारत के इतिहास

---

* यू० पी०, पंजाब, बिहार आदि में "मोहञ्जोदारो" उच्चारण ही प्रचलित है; परन्तु यह ठीक नहीं है। यह सिन्धी शब्द है और इसका उच्चारण "मोहञ्जोदड़ो" है। इसका अर्थ है Mound of the dead" अर्थात् 'मृतक की ढेरी'। किसी भी ऐतिहासिक लेख में "मोहञ्जोदड़ो" ही लिखना उचित है; परन्तु, चूँकि, हिन्दी-संसार में "मोहंजोदारो" ही प्रचलित है; इसलिये हमने भी प्रचलित रूप ही रखा है। (स्वर्गीय डा० लक्ष्मण स्वरूप एम. ए.)

में हड़प्पा और मोहञ्जोदारो का विशेष महत्व है।

मोहञ्जोदारो सिन्धु-प्रान्त में, सिन्धु-नदी के तट पर, अवस्थित है। उत्तर-पश्चिमीय रेल के डोकरी स्टेशन (N.W.R) से ८ मील पर है। इस स्थान पर प्राप्त खंडहरों से यह बातें प्रकट होती हैं।

प्रत्येक घर में एक प्राङ्गण अवश्य था। घर कम से कम दोमंजिले अवश्य थे। नीचे-ऊपर, पृथक्-पृथक् परिवार रहते थे; इसी लिये, ऊपर जाने के लिये, बाहर से ही सीढ़ियाँ ऊपर जाती थीं। नगर में स्थान का भी खूब उपयोग किया जाता था। स्थान के अभाव के कारण घरों के साथ बाग-बगीचे का कोई भी चिह्न नहीं पाया गया है। यह भी मालूम होता है कि, स्थानाभाव के कारण घरों के साथ बरामदा इत्यादि बनाने की प्रथा नहीं थी। एक ही घर में, ऊपर-नीचे, पृथक्-पृथक् परिवारों के निवास से सिद्ध है कि, नगर का सामाजिक जीवन भली भाँति सुसंगठित था; नहीं तो इस प्रकार परस्पर मिलकर रहना कठिन हो जाता।

मोहंजदारो में पतनालों और नालियों पर विशेष ध्यान दिया जाता था। घरों के पतनाले, जो गली की नालियों में गिरते थे, खुले नहीं होने पाते थे। वे सब ढके हुए होते थे। जितने भी पतनाले खोदे गये हैं, वे सब-के-सब ढके हुए हैं। फिर गली की नालियां भी खुली नहीं होती थीं। ये नालियाँ भी सब की सब ढकी हुई होती थीं। ये नालियाँ इस नगर की प्रतिष्ठा हैं। इस प्रकार की नालियाँ, पंजाब प्रान्त की राजधानी लाहौरमें, ५००० वर्ष पीछे भी विद्यमान नहीं हैं। प्रत्येक गली में एक ढकी हुई नाली थी। दोनों तरफ के घरों से इस नाली को छोटी-छोटी नालियों से मिला दिया गया है। ये भी ढकी हुई हैं। प्रत्येक गली की नाली बड़ी नाली में

जा गिरती है। ये बड़ी नालियाँ भी ढकी हुई हैं। ये बड़ी नालियाँ एक बड़े नाले में जा मिलती हैं। यह नाला भी ढका हुआ है। उन नालियों को साफ करने के लिये, स्थान-स्थान पर, गड्ढे रखे गये हैं। उनमें नीचे उतरने के लिये सीढ़ियाँ बनायी गयी हैं, जिनसे उतर कर भङ्गी लोग नालियों की सफाई किया करते थे। इस प्रकार नगर में खुली गन्दी दुर्गन्ध से पूर्ण सड़ी नालियों का दृश्य दृष्टि-गोचर नहीं होता था; और, नगर के स्वास्थ्य की भली भाँति रक्षा होती थी।

मोहञ्जोदारो के लोगों को स्नान बहुत प्रिय था। प्रत्येक घर में, नीचे ऊपर, दोनों मञ्जिलों में, स्नान गृह बने हुए हैं। इन स्नान-गृहों का फ़र्श पक्का है और एक तरफ ढालू है, जिससे जल न टिका रहे, तुरन्त बह जाय। जल, ढके हुए पतनाले के द्वारा, नाली में गिरा दिया जाता था। स्नान के इतने प्रेमी होने के कारण जल की बहुत आवश्यकता होती थी। अधिक जल की आवश्यकता को पूरी करने के लिये प्राय: प्रत्येक घर में एक छोटासा गोल कूप बनवाया गया है। यह कूप भी पक्का है। कूप की मण्डेरका पत्थर, रस्सी की रगड़ से जगह-जगह घिस गया है। इससे स्पष्ट है कि, जल-रस्सी द्वारा हाथों से खींचा जाता था। कूप पर, बर्तन रखने के स्थान में, छोटे-छोटे गड्ढे पड़ गये हैं। इन छोटे-छोटे कूपों के अतिरिक्त गलियों के कोनों पर तथा बाजार में बड़े-बड़े कूप थे, जो सर्व-साधारण के लिये थे। स्नान के कमरे प्रत्येक घर में पाये जाते हैं। इससे सिद्ध है कि, मोहञ्जोदारो के लोग निजी सफाई भी बहुत पसन्द करते थे। बड़े कूप पनघट का काम देते थे। एक पनघट पर एक पत्थर की बेंच पड़ी है। इस पर बैठ कर महल्ले की स्त्रियाँ, अपने-अपने घड़े भरने से पहले गप्प-शप मारा करती होंगी!

समय गेहूँ और जौ खूब पैदा होते थे। खजूर उनको बहुत प्रिय था, साँढ़, भैंसा, बैल, भेड़, सूअर, कुत्ता, ऊँट, हाथी उनके पशु थे। *घोड़े से वे परिचित न थे। उनकी गाड़ी चार पहियों वाली थी। वह प्रायः बैलगाड़ी ही थी। धातु का काम करने में वे लोग चतुर थे। सोना, चाँदी पीतल की कुछ कमी न थी। शीशा भी काम में लाया जाता था। कातना, कपड़े बुनना श्रेष्ठ समझा जाता था। युद्ध और शिकार में तीर कमान का प्रयोग होता था। गदा, नेजा, खड्ग इत्यादि भी युद्ध के शस्त्र थे। आरा, छैणी, उस्तरा इत्यादि अनेक औजार पीतल और ताँबे के बनते थे। अमीर लोग सोने चाँदी के आभूषण पहनते थे और गरीब लोग सीप और पत्थर के। लोग लिखना जानते थे। इनकी मुहरों पर लेख लिखे हुए हैं। मेसोपोटामिया की सुमेरियन सभ्यता और मिस्र देश की सभ्यता ऊँचे दर्जे की थी। उदाहरण के तौर पर रूई का कपड़ा बुनने की विधि सिन्ध के लोगों को ही मालूम थी, अन्य देशवालों को नहीं। इनके से विशाल भवन मेसोपोटामिया, मिस्र और अन्य प्राचीन देशों में नहीं पाये गये हैं।

मोहञ्जोदारो में उपलब्ध प्राचीन वस्तुओं के अध्ययन से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि, ये वस्तुएँ एक उच्च कोटि की सभ्यता की सूचक है। पर यह सभ्यता कोई नूतन सभ्यता नहीं थी। मोहञ्जोदारो नगर के स्थापित होने से हज़ारों वर्ष पहले इस सभ्यता का सूत्रपात्र हो चुका था; और मोहञ्जोदारो नगर की स्थापना से पहले कई हज़ार वर्षों में इस सभ्यता की वृद्धि और पुष्टि हुई होगी। जब महञ्जोदारो नगर की स्थापना हुई, तब यह

---

* पशु विकासवाद तथा सैंधव शब्द से घोड़े की सत्ता स्पष्ट है।
(लेखक)

सभ्यता उन्नति के शिखर पर विराजमान थी। इससे स्पष्ट है कि, मोहञ्जोदारो नगर की स्थापना से कम से कम दो तीन हजार वर्षों से भी पुरानी यह सभ्यता है। इस सभ्यता का आरम्भिक काल ७००० या ८००० वर्ष तक पहुंचता है।

संसार के और किसी भी देश की सभ्यता का इतिहास इतने प्राचीन काल तक नहीं पहुँचता। फलतः भारत की सभ्यता ही प्राचीनतम सभ्यता है। हम निस्संकोच कह सकते हैं कि, संसार की सभ्यता का उद्गम-स्थान भारत ही हो सकता है।

(डा० लक्ष्मण स्वरूप)

हड़प्पा

किसी समय वर्तमान समय का मिंटगुमरी जिला आजकल की अपेक्षा अधिक उपजाऊ था। उन दिनों रावी की दो धाराएं हड़प्पा के स्थान पर मिलती थी। रावी के वर्तमान पाट से यह धाराएं दक्षिण की ओर ८ मील पर थीं। उन दिनों व्यास नदी भी इस प्रदेश को सींचती थी। सतलुज भी दक्षिण पूर्व की ओर बहती थी। व्यास के पुराने पाट तथा वर्तमान सतलज का बीच का प्रदेश, सोहाग और पारा नाम की छोटी नदियों से सींचा जाता था। उन दिनों यह प्रदेश खूब आबाद था। इन स्थानों पर प्राप्त खंडहरों से मालूम होता है कि हड़प्पा में नदियों तथा स्थल मार्ग से पर्याप्त व्यापार होता था। लरकाना के पश्चिम और पंजाब के डेरा ज़ात ज़िलों और बारी द्वाबा और सिंध सागर के बीच में कई भरे हुए रमणीक शहर थे। इन शहरों के, हड़प्पा में रहने वाले नागरिकों के साथ अनेक प्रकार के, व्यापार होते थे। 'द्वाबा-रिज' के जलसिंचित उत्तरी तट पर, हड़प्पा ३०°३८ लैटिट्यूड और ७२°५२ लांगीट्यूड पर—हड़प्पा रोड से और, पूर्व उत्तर

४ मील पर नार्थ वैस्टर्न रेलवे का एक स्टेशन है। इसके साथ वर्तमान दक्षिण पश्चिम की ओर १५ मील पर मिंटगुमरी शहर है। इन खंडहरों से यह भी मालूम होता है कि यहां रहने वालों को इन नदियों की जल बाढ़ का भी भय रहता था। उसके लिये इन्होंने बंद भी बनाए थे। यह हड़प्पा, जल बाढ़ के कारण भी नष्ट हो गया था। इसके इलावा हड़प्पा से दक्षिण पूर्व १३ मील पर और मिंटगुमरी से दक्षिण पश्चिम में, ११ मील पर **चक पुरबियाना** सयाल में इसी ढंग के खंडहर मिले हैं। इसी प्रकार से रोपड़ के नज़दीक सतलुज के समीप अम्बाला ज़िले में **कोटला निहंग** में भी इसी प्रकार के पुराने शेष मिले हैं। यह हड़प्पा से २२० मील पूर्व में शिमला की पहाड़ियों के समीप है। इनके अवशेष भी हड़प्पा और मोहएडजारो के समान । वर्तमान मिंटगुमरी जिला और मुलतान कभी आबाद और हरे भरे थे। नदियों के पाट बदलने से सूख गये हैं।

मोहएडजाडो, हड़प्पा, चकपुरबियाना और कोटला निहंग के खंडहर एक समान हैं इनमें एक जैसी वस्तुएँ मिलीं हैं। इनकी सभ्यता भी एक थी। मोहएड जारो के सम्बन्ध में प्रकट किये गये वर्णन इन पर भी लागू होते हैं।

(श्री० मधुस्वरूप एम. ए. डिप्टी डाइरैक्टर भारतीय आर्कलियोजिकल विभाग)

पंचनदीय धर्म और साहित्य

साहित्य और धर्म एक दूसरे के प्रतिविम्ब होते हैं। इसलिये हम कह सकते हैं कि पंचनद निवासी आर्य वैदिक साहित्य में निर्दिष्ट सिद्धान्तों के अनुसार जीवन यात्रा व्यतीत करते थे। वेद संहिताओं और मानव धर्म सूत्रों में पांचनद धर्म का स्वरूप चित्रित है। स्त्री पुरुष स्वयंवर विवाह करते थे। कर्मानुसार वर्णव्यवस्था मानते थे समय २ पर इन वर्णों में परिवर्तन भी होते थे। एक ही कुल में गुण कर्म तथा पेशे की भिन्नता के कारण—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र रहते थे।

ब्राह्मणादि शब्द विशेषण थे, किसी निश्चित समुदाय विशेष को द्योतित नहीं करते थे। ज्यों २ समुदाय विशेष स्थान विशेषों में सीमित होने लगे वर्ण व्यवस्था जटिल होने लगी। उनमें कुलाभिमान जन्माभिमान तथा परस्पर ईर्ष्या के भाव पैदा होने लगे। इसकी झलक महाभारत में, शल्य कर्ण संवाद में दिखाई देती है।

उन दिनों आजकल की भांति सिद्धान्तप्रधान मज़हबों की उत्पत्ति न हुई, न उनकी आवश्यकता थी।

उस समय के धर्म—"धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयम्, शौचमिंद्रिय निग्रहः। धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्—नाम से निर्दिष्ट किये जाते थे। वैदिक धर्म आर्य धर्म में मनुष्य को इकाई मानकर सब कार्य किये जाते थे। आर्य उसे कहते थे जो दूसरे मनुष्य को अपना सा समझे (आर्यः यः स्वमिव परमपिपश्यति।

जो व्यक्ति जिस स्थान विशेष में रहकर, वहां के अन्न जल से जीवन निर्वाह करता था वही उसकी मातृभूमि जन्म भूमि

मानी जाती थी। उस समय के मर्यादित मानव समाजमें, जन्ममूलक भेदभाव के सूचक कारण तथा चिह्न बहुत कम विद्यमान थे। पंजाब उस समय के मानव समाज का मुख्य स्थान था, उनकी भाषा तथा साहित्य और धर्मग्रन्थ वेद संहिता ही थी।

उस समय की जनता चार वैदिक संहिताओं, ऋग् यजु अथर्व साम और मानवधर्म शास्त्र में निम्न प्रकार के पारलौकिक, सामाजिक और ऐहिक धर्म को मानती थी।

'अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देव मृत्विजम्, होतारं रत्न धारामम।'

ऋग्वेद

अग्नि के प्रयोग द्वारा हम रत्नों को प्राप्त करें।

इसे त्वोर्जे त्वा वायवस्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे। अ प्यायध्वमध्न्या इन्द्राय भागं प्रजावती रनमीवा अयक्ष्मा मावस्तेन ईशत माघंशसो ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्याम वह्वयो यजमानस्य पशून् पाहि॥ यजुर्वेद

"आब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्। आराष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योति व्याधी महारथो जायताम्। दोग्ध्री धेनु वोंढा नऽड्वानाशुः सप्तिः पुरंधिर्योषा रथेष्ठा। सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम्। निकामे निकामे नः पर्जन्यो ऽभि वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम्। यजुर्वेद

ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये उत्तम कर्म करें। हमारे घर धन धान्य और पशुओं से समृद्ध हों। हमारे राष्ट्र में तेजस्वी ज्ञानी ब्राह्मण हों। शूर गुणी क्षत्रिय हों। व्यापारी वैश्य हों। दूध देने वाली गउएं हों। 'शीघ्रगामी घोड़े हों। तरुण युवक सभाओं द्वारा कार्य करें। समयानुसार फल और वर्षा हो।

शन्नो देवी रभिष्टये आपो भवन्तु पीतये। शंयो रभि स्रवन्तु नः।
अथर्व०।

जल के सदुपयोग से शान्ति प्राप्त करें।

ओ३म् भूर्भुवः स्व तत्सवितुवरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। गायत्री

हम सब अपनी बुद्धियों को कर्म प्रधान और परमात्मा के ऐश्वर्य का उपयोग करने वाली बनाएं।

× × ×

यह आर्य वैदिक धर्म का निचोड़ है। हमारे पूर्वज इसी धर्म को अपना कर संसार के विजेता मार्ग दर्शक बने थे। मानव समाज आर्य और दस्यु दो गुण कर्म सूचक विभागों में बटा हुआ था।

मानव धर्म सूत्र में 'आर्य' शब्द से निर्दिष्ट मानव समाज के लिये गुण कर्मानुसारी वैदिक वर्णाश्रम मर्यादा का वर्णन किया गया है और यह भी लिखा है कि 'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद्द्विज उच्यते।' सब मनुष्य जन्म के समय बराबर होते हैं। संस्कार तथा शिक्षा से भिन्न २ वर्णों श्रेणियों में प्रविष्ट होते थे। आचार्य शिक्षा समाप्ति पर विवाह के साथ२ वर्ण नियत करते थे। विद्यार्थि दशा में कोई वर्ण नहीं होता था। रामायण काल में भी यही अवस्था थी। व्यवहार में पिता अपने पुत्र को अपने जैसा बनाना चाहता था इस लिये अपने वर्ण के अनुसार उसे शिक्षा देने की कोशिश करता था। उस प्रसंग में वह पिता के वर्ण से निर्दिष्ट किया जाता था। परन्तु उसका अपना वर्ण 'आचार्यस्त्वस्य यांजातिं विधिवत् वेद पारगः। उत्पादयति सावित्र्या सा सत्याऽसाजरामरा' के अनुसार

निश्चित करता था। विवाह संस्था भी इस समय बंधनों से स्वतंत्र थी। वेद संहिताओं में गुण स्वभावानुसार देश जाति भेद छोड़कर स्त्री पुरुष को स्वयंवर विवाह करने का आदेश था। स्त्री पुरुष के समान अधिकार थे। एक पत्नीव्रत को उत्तम मानते थे।

मानव धर्म श्लोकों के उस समय के प्रचलित विवाह संबन्धों को आठ प्रकार के विवाहों में परिगणित कर दिया है। महाभारत काल में भी विवाह प्रथा सरल तथा लचकीली थी। रामायण के समय में भी स्वयंवर विवाह होते थे। विशेष बन्धन न होते थे। उस समय के विविध मनुष्य समुदायों (यक्ष, किन्नर, राक्षस गंदर्भ देव असुरों में) के परस्पर विवाह सम्बन्ध होते थे। दशरथ का केकय देश की कन्या से, महाभारत में अर्जुन दुर्योधन आदि के विवाह दूर २ देशों में हुए थे। धीरे २ मानव समाज स्थान विशेषों में सीमित होने पर, व्यक्तियों में स्थान देश के धर्म का अभिमान पैदा हो गया। विशेष प्रथाएं प्रचलित हो गईं।

सभा समितियों अथवा ग्राम पंचायतों द्वारा पुरों और नगरों का शासन प्रबन्ध होता था। राजा की संस्था निर्वाचन प्रधान होती जनपद गण अपने में से किन्हीं व्यक्तियों को राज कार्य के लिये चुनते थे; वही राजा कहलाते थे।

उपलभ्यमान साहित्य के आधार पर महाभारत काल तक यहाँ की भाषा क्रमशः वैदिक संस्कृत लौकिक संस्कृत और प्राकृत रही। यह संस्कृत ही आगे अपभ्रंश होकर विविध रूपों में बदलती गई। इसका विकासक्रम अष्टाध्यायी में मिलता है। पंजाबमें उपलभ्यमान सब बोलियों में इस संस्कृत के तद्भव तत्सम शब्द ६० फीसदी मिलते हैं।

समयान्तरमें इसी वैदिक साहित्य को भाषासे लौकिक साहित्य और संस्कृत का विकास हुआ । देवनागरी वर्णमाला और संस्कृत साहित्य ही पंचनद की भाषा थी । इसी से उत्तरोत्तर ब्राह्मी शारदा टाँकरी,पंजाबी भाषाओं का विकास, देवनागरी वर्णमालाओं के साथ होता गया । ११००ई० के लगभग मुहम्मद गोरी के आक्रमण से पंजाब में विदेशी मुसलमान आक्रान्ताओं के साथ उर्दू, फारसी का उर्दू अक्षरों के साथ प्रवेश हुआ । अंग्रेजों के शासन से रोमन फारसी अक्षरों का भी प्रवेश हुआ । पंजाब की मूल भाषा संस्कृत और देव नागरी वर्ण माला ही है । पंजाब में निर्मित साहित्य का अनुशीलन करने के लिये संस्कृत वर्ण माला का अध्ययन तथा अभ्यास करना पांचनद धर्म का प्रथम आवश्यक पाठ है । इसके बिना पांचनदधर्म के रहस्य को नहीं समझा जा सकता ।

इस काल के वीर साहित्य के उद्धरण अङ्कित किये जाते हैं—

प्रेता जयता नर इन्द्रो वः शर्म यच्छतु ।
उग्राः वः सन्तु बाहवोऽनाधृष्या यथासथ ॥ ऋ० १०-१०३-१३
स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे, वीळू उत प्रतिष्कभे ।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः । १-३९-२
उत्तिष्ठत संनह्यध्वमुदाराः केतुभिः सह ।
सर्पा इतरजना रक्षांस्यमित्राननु धावत ॥ अथर्व० ११-१०-१
यदि नो गां हंसि, यद्यश्वं यदि पूरुषम् ।
तं त्वा सीसेन विध्यामो, यथ नोऽसो अवीरहा ॥ अ० १-१६-४
अवीरामिव मामयं शरारुरभिमन्यते ।
उताहमस्मि वीरिणीन्द्रपत्नी मरुत्सखा विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः। १०-८६-८
मम पुत्राः शत्रुहणो, ऽथो मे दुहिता विराट् ।
उताहमस्मि सञ्जया, पत्यो मे श्लोक उत्तमः ॥ ऋ० १०-१५९-३

तक्षशिला का प्रकाश स्तम्भ

वीरता विद्वत्ता का संगम

महाभारत युद्ध में पंजाब के क्षत्रियों का भारी संख्या में नाश हुआ था। उस जन नाश से पंचनद उजाड़ तथा बीयाबान हो गया। पांडव लोग तथा उनके उत्तराधिकारी हस्तिनापुर में रहकर शासन करने लगे। महाभारत युद्ध की भयंकरता और जनशक्ति के बाद भारतीय राष्ट्र में निराशा और उत्साह हीनता के भाव प्रबल हो गये। युधिष्ठिर ने अश्वमेध यज्ञ करके—पुनः भारत में जीवन शक्ति का संचार करना चाहा—परन्तु सफलता न हुई। धीरे २ काश्मीर का राजवंश, पंचनद तथा भारत पर अपना प्रभाव फैलाने लगा। इस प्रदेश का क्षत्र वंश महाभारत युद्ध में सम्मिलित न होने के कारण अभी तेजस्वी था।

इसके सम्पर्क से पंचनद में, विद्याव्यसनिता और कर्मकाण्ड की ओर जनता प्रवृत्त होने लगी। युधिष्ठिर के उत्तराधिकारी परीक्षित के पुत्र जनमे जय ने बड़े २ यज्ञ करके, अपने राज्य में क्रिया शीलता पैदा करने की कोशिश की। इस काल में पंजाब की अवस्था का परिचय हमें तक्षशिला* के खंडहरों, तात्कालिक साहित्य, और अड़ोसपड़ोस के प्रदेशों कश्मीर अफगानिस्तान मध्य एशिया के राष्ट्रों के इतिहास से मिलता है। इन्हीं के आधार पर पंचनद का इस काल का ऐतिहासिक वर्णन अङ्कित किया जाता है।

---

* अग्रतश्चतुरोवेदान् पृष्ठतः स शरं धनुः।
यत्राशिक्षन्त गुरवः नमस्तस्मै प्रकुर्महे।

तक्षशिला

पंचनद के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगरों में तक्षशिला का विशेष स्थान है। इसके अवशेष 'शाहढेरी' नाम से हसन अब्दाल से दक्षिण पूर्व की ओर आठ मील पर, रावलपिंडी के समीप उपलब्ध हुए हैं। भारतीय पुरातत्वविभाग के निरीक्षण में इसकी खुदाई हो रही है।

इस नगर का वर्णन रामायण काल में भरत द्वारा तक्षशिला बसाने के रूप में किया जा चुका है। भरत के पुत्र तक्ष को यह नगर प्रबन्ध के लिये दिया गया था। महाभारत काल के बाद जनमेजय के समय में, इसका वर्णन मिलता है। महाराजा जनमेजय हस्तिनापुर का कार्य भाइयों को सौंपकर तक्षशिला पर विजय प्राप्त करने गए थे, और उसे अपने आधीन कर लौट आए थे। कश्मीर के विद्याव्यसनी पंडितों के सम्पर्क से यह नगर शिक्षणालय के रूप में विशेष रूप से प्रसिद्ध हो गया। प्राचीन काल में यह गांधार की राजधानी था।

ग्रीक और,रोमन ऐतिहासिक इसे 'टैक्सिला' नाम से निर्दिष्ट करते हैं। यह नाम प्राकृतपाली के टक्कशिला का रूपान्तर प्रतीत होता है। संस्कृत में इसे तक्ष शिला कहते हैं। रामायण महाभारत, पाणिनि अष्टाध्यायी में इसी नाम से निर्दिष्ट किया गया है। दन्त कथा प्रचलित है कि जनमेजय ने, यहीं तक्षक सर्पयज्ञ किया था; और यज्ञ द्वारा तक्षक जाति को—जीता था। यह तक्षक जाति ही समयान्तर में टक्क जाति नाम से इतिहास में प्रसिद्धहुई प्रतीत होती है। तक्षशिला उत्तर भारत में, शिक्षा के केन्द्र के रूप में ख्यात था। यहां दूर २ स्थानों से, राजगृह बनारस मगध मिथिला से

विद्यार्थी अनेक विद्याएं पढ़ने आते थे। अभाग्यवश इसके शिक्षा सम्बन्धी कार्योंके सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन कम मिलते हैं। सिकन्दर के समय तक, यह स्थान विद्वान् दार्शनिकों के लिये प्रसिद्ध था। उपलभ्यमान ऐतिहासिक प्रमाणों से प्रतीत होता है कि ईसा से पूर्व छटी सदीमें परशियन ने भी इस पर आक्रमण किया था। सिकन्दर के बाद ईसा से दो सदी पहले इंडोबैक्टीयंन ने इसे अपने आधीन किया था। कुशान लोगों ने ईसा की पहली सदी में इस पर अपना अधिकार स्थापित किया था। इन आक्रमणों के कारण विद्यास्थान की दृष्टि से इस नगर पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। धीरे२ यह स्थान निरन्तर विदेशी आक्रमणों के कारण उजाड़ होने लगा। इनको रोकने के लिये भारत की मुख्य राज शक्ति ने, उत्तर भारत में इसे अपनी राजनैतिक और सैनिक शक्ति का केन्द्र बनाया।

मौर्यवंश के सम्राट् अशोक ने यहां युवराज दशा में शासक की हैसियत से कार्य किया था। इसके बाद गुप्त वंश के राजा भी अपने प्रतिनिधियों को यहां नियत करते रहे। अफगानिस्तान की ओर से आने वाले आक्रान्ता भी यथावसर इस पर अधिकार प्राप्त करने की कोशिश करते रहे। इस राजनैतिक संघर्ष से यह स्थान विद्यास्थान न रहकर, राजशक्तियों के संघर्ष का स्थान बन कर शाहढेरी के नामसे प्रसिद्ध हो गया। धीरे२ यहां की विद्याधारा कश्मीर की ओर प्रवृत्त होकर श्रीनगर में केन्द्रित होने लगी और कश्मीर उत्तर भारत में संस्कृत विद्या का केन्द्र बन गया।

इन खंडहरों में तीन पृथक्२ नगरों के अवशेष दिखाई देते हैं।

(१) वीर, मौर्यकाल तथा उससे पूर्व के शेष।

(२) सर काप—इंडोग्रीक, पारथियन और कैडफाइसस प्रथम।

(३) सर सुख—कनिष्क समकालीन। अधिकांश अवशेष

बुद्धकालीन प्रतीत होते हैं। बुद्ध काल से पहले के अवशेष, संभवतः खंडहरों की निचली तह में हों। बुद्ध से पहले पंजाब तथा भारत की परिस्थिति पर प्रकाश डालने वाले शब्द संकेत पर्याप्त मात्रा में, तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त, प्रसिद्ध वीर विद्वान् अद्वितीय वैयाकरण पाणिनि की अष्टाध्यायी और उणादि पाठ तथा धातु पाठ में मिलते हैं।

तक्षशिला में उपलभ्यमान खंडहरों से यह बात स्पष्ट मालूम होती है कि इस स्थान पर ब्राह्मी लिपि के स्थान पर खरोष्ट्री लिपि का प्रचार हो रहा था। यह खरोष्ट्री लिपि/'परशियन राजशक्ति की अलमेनियन लिपि का रूपान्तर थी। विदेशियों के सम्पर्क से तक्षशिला के पाठ्यक्रम में भी विदेशी सभ्यता तथा विदेशी शिल्प और विदेशी लिपि का थोड़ा बहुत असर होना स्वाभाविक था।

परन्तु इस दिशा में कोई स्थिर विशेष प्रभाव तक्षशिला के शिक्षा क्रम पर पड़ा प्रतीत नहीं होता। तक्षशिला में संस्कृत और देवनागरी ब्राह्मी की ही मुख्यता रही। वर्तमान समय के ढंग पर संगठित विश्वविद्यालय नहीं था। दूर २ देशों के विद्वान् यहां आकर परस्पर ज्ञानचर्चा करते थे और एक दूसरे से विद्या प्राप्त करते थे। बौद्ध जातकों के उल्लेख के अनुसार यहां के शिक्षकों के आधीन २००० विद्यार्थी शिक्षा पाते । जातक के अनुसार भिन्न२ देशों के राजकुमार योग्य विद्वानों से यहां धनुर्विद्या भी सीखते थे। विद्यार्थियों के शिक्षण तथा रहन सहन का क्या प्रबन्ध था, इस विषय में विस्तृत वर्णन नहीं मिलता। जातकों के विवरण के अनुसार बुद्ध के समकालीन कौशल राजा प्रसेनजित ने तक्षशिला में ही शिक्षा पाई थी। बनारस, उज्जयिनी के राजवंश शस्त्र विद्या सीखने के लिये अपने राजपुत्रों को यहीं भेजते थे। तक्ष-

शिला राजनैतिक परिस्थितियों तथा यहां के सैनिक शिक्षण के अनुकूल वातावरण के कारण धनुर्विद्या और शस्त्रविद्या के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध था। इधर के रहने वाले स्वभावत: वीर और शस्त्रविद्या के शौकीन होते थे। आज भी यहां की जनता स्वभावत: शस्त्र विद्या में रुचि रखती है। बिम्बिसार के पुत्र राजकुमार जीवक ने तक्षशिला में सात साल तक रहकर आयुर्वेद और शल्य विद्या में प्रावीण्य प्राप्त किया था। यहां पढ़ने के लिये आने वाले विद्यार्थी प्राय: १६,१७ साल की आयु के होते थे। और ६-७ साल तक शिक्षा प्राप्त करते थे। इस समय तक वर्ण-व्यवस्था जटिल नहीं हुई। बिना वर्ण भेद के विद्यार्थी एक साथ शिक्षा प्राप्त करते थे। बनारस के ब्राह्मण पुरोहित ने अपने पुत्र को धनुर्विद्या में कौशल्य प्राप्त करने के लिये भेजा था। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र सबको पढ़ने के लिये, विषय निर्वाचन में पूरी छुट्टी थी। तक्षशिला विश्व विद्यालय के वातावरण में वीरता और विद्वत्ता का सुनहरी सम्मिश्रण था। जब तक तक्षशिला की छत्र छाया में, पंचनद निवासी जनता और नेता विद्वत्ता और वीरता को एक साथ अपनाते रहे, तब तक कोई विदेशी शक्ति यहां पैर नहीं जमा सकी। निरन्तर आक्रमणों से विद्वत्ता क्षीण होने लगी। राजशक्ति भी निर्बल होने लगी। केवल वीरता ने पंजाबियों को वीरता—सिपाहियों की वीरता का—उपासक बना दिया। इन वीर सिपाहियों का प्रयोग समय २ पर राजशक्तियां करती रहीं। विद्वत्ता हीन पंजाबी, वीर सिपाही के रूप में आज भी प्रसिद्ध हैं।

जातकों के अनुसार तक्षशिला में, तीन वेद, १८ विद्याएं और शिल्प की शिक्षा भी दी जाती थी। शिल्प में—आयुर्वेद शल्य चिकित्सा, धनुर्विद्या, सैन्य शिक्षण, ज्योतिष, सर्पविद्या आदि

सम्मिलित थे। वेदों के साथ २ वेदान्त उपनिषदों की भी शिक्षा दी जाती थी। सिकन्दर यहां से एक दार्शनिक योगी को भी अपने साथ ले गया था। कुशान साम्राज्य के पतन काल तक यह स्थान शिक्षा केन्द्र के रूप में विकसित होता रहा। कुशान वंश के बाद जंगली यूचियों ने इसे तहस नहस कर दिया।

५वीं सदी में फाह्यान के समय में यह स्थान शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं रहा था।

५वीं सदी में हूणों ने इस स्थान को सर्वथा नष्ट कर दिया था। जब तक तक्षशिला से वीर विद्वान् पैदा होते रहे पंजाबी स्वतंत्रता का जीवन व्यतीत करते रहे।

पाणिनि

"येनधौता गिर:पुंसाम्। विमलै:शब्द वारिभि:। तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नम:।"

"शब्द जलों द्वारा मनुष्यों की वाणियों को पवित्र करने वाले और अज्ञानांधकार को दूर करने वाले पाणिनि को नमस्कार है।

तक्षशिला विश्वविद्यालय के पाणिनि जैसे योग्य प्रतिभाशाली शिष्य ने भी इसका नाम अमर कर दिया। जब तक पाणिनि की अष्टाध्यायी तथा व्याकरण विद्यमान है, तक्षशिला का नाम नहीं मिट सकता।

सिंधु और कुम्भा नदी के संगम पर, शालातुर स्थान में यास्क के पीछे और बुद्ध से पूर्व, लगभग ७सदी ई०पूर्व पणि के घर दाक्षी नामकी महिला की कोख से पाणिनि का जन्म हुआ। प्रचलित दन्त-कथाओं के अनुसार पाणिनि तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त करने गये। वहाँ उपवर्ष आचार्य से, इन्होंने व्याकरण शास्त्र का विशेष अध्ययन किया। परिणाम रूप अष्टाध्यायी का निर्माण किया; और

शिला राजनैतिक परिस्थितियों तथा यहां के सैनिक शिक्षण के अनुकूल वातावरण के कारण धनुर्विद्या और शस्त्रविद्या के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध था। इधर के रहने वाले स्वभावतः वीर और शस्त्रविद्या के शौकीन होते थे। आज भी यहां की जनता स्वभावतः शस्त्र विद्या में रुचि रखती है। बिम्बिसार के पुत्र राजकुमार जीवक ने तक्षशिला में सात साल तक रहकर आयुर्वेद और शल्य विद्या में प्रावीण्य प्राप्त किया था। यहां पढ़ने के लिये आने वाले विद्यार्थी प्रायः १६,१७ साल की आयु के होते थे। और ६-७ साल तक शिक्षा प्राप्त करते थे। इस समय तक वर्ण-व्यवस्था जटिल नहीं हुई। बिना वर्ण भेद के विद्यार्थी एक साथ शिक्षा प्राप्त करते थे। बनारस के ब्राह्मण पुरोहित ने अपने पुत्र को धनुर्विद्या में कौशल्य प्राप्त करने के लिये भेजा था। ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र सबको पढ़ने के लिये, विषय निर्वाचन में पूरी छुट्टी थी। तक्षशिला विश्व विद्यालय के वातावरण में वीरता और विद्वत्ता का सुनहरी सम्मिश्रण था। जब तक तक्षशिला की छत्र छाया में, पंचनद निवासी जनता और नेता विद्वत्ता और वीरता को एक साथ अपनाते रहे, तब तक कोई विदेशी शक्ति यहां पैर नहीं जमा सकी। निरन्तर आक्रमणों से विद्वत्ता क्षीण होने लगी। राजशक्ति भी निर्बल होने लगी। केवल वीरता ने पंजाबियों को वीरता—सिपाहियों की वीरता का—उपासक बना दिया। इन वीर सिपाहियों का प्रयोग समय २ पर राजशक्तियां करती रहीं। विद्वत्ता हीन पंजाबी, वीर सिपाही के रूप में आज भी प्रसिद्ध हैं।

जातकों के अनुसार तक्षशिला में, तीन वेद, १८ विद्याएं और शिल्प की शिक्षा भी दी जाती थी। शिल्प में—आयुर्वेद शल्य चिकित्सा, धनुर्विद्या, सैन्य शिक्षण, ज्योतिष, सर्पविद्या आदि

सम्मिलित थे। वेदों के साथ २ वेदान्त उपनिषदों की भी शिक्षा दी जाती थी। सिकन्दर यहां से एक दार्शनिक योगी को भी अपने साथ ले गया था। कुशान साम्राज्य के पतन काल तक यह स्थान शिक्षा केन्द्र के रूप में विकसित होता रहा। कुशान वंश के बाद जंगली यूचियों ने इसे तहस नहस कर दिया।

५वीं सदी में फाह्यान के समय में यह स्थान शिक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं रहा था।

५वीं सदी में हूणों ने इस स्थान को सर्वथा नष्ट कर दिया था। जब तक तक्षशिला से वीर विद्वान् पैदा होते रहे पंजाबी स्वतंत्रता का जीवन व्यतीत करते रहे।

पाणिनि

"येनधौता गिर:पुंसाम्। विमलै:शब्द वारिभिः। तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः।"

"शब्द जलों द्वारा मनुष्यों की वाणियों को पवित्र करने वाले और अज्ञानांधकार को दूर करने वाले पाणिनि को नमस्कार है।

तक्षशिला विश्वविद्यालय के पाणिनि जैसे योग्य प्रतिभाशाली शिष्य ने भी इसका नाम अमर कर दिया। जब तक पाणिनि की अष्टाध्यायी तथा व्याकरण विद्यमान है, तक्षशिला का नाम नहीं मिट सकता।

सिंधु और कुम्भा नदी के संगम पर, शालातुर स्थान में यास्क के पीछे और बुद्ध से पूर्व, लगभग ७सदी ई०पूर्व पणि के घर दाक्षी नामकी महिला की कोख से पाणिनि का जन्म हुआ। प्रचलित दन्त-कथाओं के अनुसार पाणिनि तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त करने गये। वहाँ उपवर्ष आचार्य से, इन्होंने व्याकरण शास्त्र का विशेष अध्य-यन किया। परिणाम रूप अष्टाध्यायी का निर्माण किया; और

पाटलिपुत्र मगध की विद्वत्परिषद् में उस ग्रंथ को उपस्थित किया और तात्कालिक विद्वानों द्वारा उसकी अद्वितीयता को स्वीकार कराया।

"इतिहास पर दृष्टि-पात करने से हम कह सकते हैं कि बुद्ध के काल में यानी ई० सन् से लगभग ५०० वर्ष पूर्व अथवा इस समय के कुछ और पूर्व सामान्य जनसमूह की बोल-चाल की भाषा संस्कृत न थी। निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वह कितने वर्ष पूर्व लुप्त हो गई थी। पाणिनि ई० सन् से लगभग ८००–९०० वर्ष पूर्व हुआ। उस समय सभी लोग संस्कृत भाषा बोलते थे। पाणिनि के समय 'संस्कृत' तथा 'प्राकृत' शब्द ही न थे। उसने तो 'संस्कृत' के लिए 'भाषा' शब्द का उपयोग किया है। अर्थात् हम यह कह सकते हैं कि पाणिनि के समय में संस्कृत भाषा ज़िन्दा थी"। (श्री चिन्तामणि वैद्य)

यह भी दन्त कथा प्रचलित है कि पाणिनि बाल्यावस्था में जड़मति थे। निराश और हताश होकर हिमालय में तपस्या करने चले गये। महेश्वर नाम के गुरु की सेवा में रहकर तपस्या द्वारा उसे प्रसन्न करने की कोशिश की। अन्त में उन्हें सफलता मिली। सेवा तथा तपस्या से प्रसन्न होकर महेश्वर वे आनन्द विभोर होकर डमरू बजाकर विद्या दान के संकेत चिह्न "ननाद ढक्कां नवपंचवारम्" १४ वार डमरू बजाकर १४ सूत्रों का उपदेश दिया। इन १४ सूत्रों को आधार बनाकर पाणिनि ने अष्टाध्यायी का निर्माण किया। आज भारतीय साहित्य तथा भारतीय प्रचलित भाषाओं पर इस वर्णमाला की अमिट छाप दिखाई दे रही है।

उस समय पंचनद तथा भारतीय राष्ट्र में जो भी शब्द साहित्य विद्यमान था, उसका अनुशीलन और पर्यालोचन कर पाणिनि ने अष्टा-

ध्यायी का निर्माण किया। इस प्रसंग में अष्टाध्यायी उणादिपाठ और धातु पाठ में अङ्कित शब्दों को हम उस समय की विकसित सभ्यता के शेष शब्द-चिह्न कह सकते हैं। जिस प्रकार तक्षशिला मोहञ्ज जाड़ो और हड़प्पा के खंडहरों में उपलभ्यमान अवशेषों द्वारा उनकी आकृति तथा उन पर अंकित छापों को देखकर ऐतिहासिकों ने तात्कालिक सभ्यता का स्वरूप जनता के सामने रखा है; उसी प्रकार पाणिनि के सूत्र पाठ उणादि पाठ और धातु पाठ में अङ्कित शब्दावली से उस समय की सभ्यता तथा स्थिति को चित्रित किया जा सकता है। इस दृष्टि से हम विषय वार शब्दों का संक्षिप्त संग्रह पाठकों के मनोरंजनार्थ अंकित करते हैं:—

१. राजनैतिक और भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश डालने वाले शब्द

(क) सभा राजा मनुष्य पूर्वा, राजसूय, जनपदशब्दात् क्षत्रियादञ् क्षुद्रक मालव, राज राजन्य राजपुत्र वत्स मनुष्या द्वुन्, विषयो देशे, राष्ट्रपति ग्रामपति कुलपति आयुधजीविसंधाद्। ब्रह्मणो जानपदाख्यायाम् ,सम्राजः क्षत्रिये, ब्राह्मण राजन्यात्। सेना। भल्लपाल, आग्नेय, आ रट्ट, न्याय धर्म साक्षी, सचिवा, युवराज, दशग्राम, कुरुपंचाल।

इन शब्दों से स्पष्ट है कि उस समय राजनैतिक संगठन सम्बन्धी संस्थाएं विकसित हो चुकी थीं। जनतंत्र और राजतंत्र पद्धतियां प्रचलित थीं।

(ख) नगरों और नदियों के नाम:—मद्र, मगध, उदक् च विपाशः वाहीक, देविका, चन्द्रभागा, नद्याम्। जलंधर उशीनर गंगा। लङ्का, उज्जयिनी, गया, मथुरा, तक्षशिला, पुष्कर, जम्बू, चम्पा कश्मीर बलभी, दक्षिणापथ, साकेत, कच्छ सिंधु, वर्णु,

गांधार, दरद, कम्बोज, मगधकलिङ्ग, उदीच्य।

(ग) मार्गों के नाम तथा प्राकृतिक घटनाओं के वर्ण क्रमः—द्वीप, अनुसमुद्र, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्-तु-हेमन्त शिशिरः वर्षका ऋतुक्रम है। उडुप। देवपथ। हंसपथ। वारिपथ। रथ पथ। स्थल पथ। करिपथ। अजपथ। राजपथ। शतपथ। शंकुपथ। सिंधुपथ। पारस्कर। अन्तरीप, समुद्रान्नाविमनुष्ये समुद्रियः।

(घ) ऐतिहासिक नामः—वासुदेवार्जुनाभ्यांवुन्। जनमेजयः। मित्रेचर्षौ, विश्वामित्रः। गांडीव। सात्यंकामि। विभीषण। पुलस्ति। भरत, भारत, रावणि। देवासुर रक्षोसुर।

२. शिक्षा पद्धति और साहित्य स्वरूप निदर्शक शब्दः—

(क) शब्द श्लोक गाथा सूत्र मंत्र पद, भाषायां, छन्दसि अधिकृत्य-कृते ग्रन्थे। भिक्षुनट सूत्रयोः। छन्दसिच। अध्ययन तपसी, ऋक्सामे। अश्वपति, ज्ञानपति, काव्य, उक्थ, लोकायत, संहिता पदक्रम, संघट्ट, परिषद्, क्रमपद, शिक्षा मीमांसा, सामन् छन्दोभाषा न्याय निरुक्त निगम, वास्तुविद्या, क्षत्रविद्या, अङ्गविद्या, उपनिषद् शिक्षा, चतुर्वेद, चतुर्वर्ण, चतुराश्रम, सर्वविद्य, पुरोहित उपाध्याया आचार्या-स्नात वेद-समाप्तौ स्नातक-वर्णो ब्रह्मचारिणि। लिपि, लिपिकार, यवनानी, गणित।

३. सामाजिक संगठन स्वरूप का निरूपण करने वाले शब्दः—

स्त्री पुंवच्च। पुमान् स्त्रिया। स्वतंत्रः कर्ता। प्रवक्ता श्रोत्रियाध्यापक। अर्यः स्वामिवैश्ययोः। आर्यो ब्राह्मण कुमार्योः। साप्तपदीनं सख्यम्। आर्यहलम्। ब्राह्मणवत् क्षत्रियवत्। शूद्रार्यम् (आर्याणां शूद्रः और शूद्रश्च आर्यः) शूद्राणा मनिरवसितानाम्। श्रमण श्रमणा, प्रव्रजिता, दासी वंधकी। दंपती

अपत्यं पौत्र प्रभृति गोत्रम् । अर्हतो नुम्च । महाजन पंचजन । चांडाल । निशाद, कर्मार, कलाल ब्राह्मण, अमातापुत्रं, कृत्रिम-पुत्र-पुत्रक । अध्यात्म-अधिदेव, अधिभूत । खर्जूर खञ्जार चस्त । शिवखदिर । कर्मार यवनः । कारावंधने केशश्मश्रू-स्नातक राजानौ । यवनमुंड । अध्यापक उष्ट्रखरम् आराशस्त्रम् । यौवन कलह । आस्तिक नास्तिक । रक्षोहायातुहा । श्वश्रू-श्वशुर ननद् । स्त्रीकुमारम् । म्लेच्छ । दासमित्र । अश्वपाली ।

समाज में आश्रम-वर्णाव्यवस्था तथा पारिवारिक संस्था पूर्ण रूप से विकसित हो चुकी थी। समाज संगठन में आर्य जाति ने शूद्र को उचित स्थान दिया हुआ था। आर्य हल चलाते थे। कृषि का धंधा आर्यों का भी प्रिय धंधा था। उस समय का समाज विविध भागों में बंटा हुआ था। इससे प्रतीत होता है कि उस समय का भारतीय और पंचनद निवासी मनुष्य समाज सामाजिक राजनैतिक तथा शिक्षा की दृष्टि से पर्याप्त उन्नत तथा विकसित था। पाणिनि ने अपने सूत्र पाठ गण पाठ और धातु पाठ द्वारा भारतीय इतिहास की अमूल्य सेवा की है -

पाणिनि के जीवन के सम्बन्ध में कोई विस्तृत वर्णन नहीं मिलता। इतना प्रतीत होता है कि इनका देहान्त कहीं जंगल में विचरते हुए सिंह द्वारा हुआ था। वह स्वतंत्र प्रकृति वीर विद्वानों की भाँति जंगलों में विचरते हुए परलोक गये थे। उनके समय कौन राजा था। उनका उत्तराधिकारी कौन था—इस विषय में कोई प्रमाणित जानकारी उपलब्ध नहीं होती।

इनकी रचना अष्टाध्यायी अमरकृति है। भारतीय विद्वान् मंडली इसके आगे सिर झुकाती रही है। भारत के विद्यापीठों काशी काश्मीर में इसका पारायण होता रहा। पतंजलि जैसे

विद्वानों ने इसकी व्याख्या में महाभाष्य जैसे महाग्रंथ लिखे। परन्तु 'दिया तले अंधेरे' की लोकोक्ति के अनुसार पाणिनि के जन्म स्थान शालातुर और पंचनद में उस कृति की अक्षम्य अवहेलना होती रही है।

परन्तु इस २०वीं सदी में, जालंधरान्तर्गत करतारपुर में श्री स्वामी विरजानन्द जी ने, ऋषि दयानन्द द्वारा पुनः अष्टाध्यायी का प्रचार और उद्धार कराया। ऋषि दयानन्द ने आर्य समाज द्वारा पंजाबी जनता का इस ओर ध्यान खींचा है। परिणामतः वर्तमान युग में पंजाब युनिवर्सिटी के अद्वितीय विद्वान् पं० गुरुदत्त ने अष्टाध्यायी प्रचार का काम अपने हाथ में लिया और पाश्चात्य सभ्यता तथा पाश्चात्य विचार धाराओं के विपरीत वातावरण में भी पंजाबी युवक विद्यार्थियों को स्वयं अष्टाध्यायी पढ़ाने का कार्य प्रारम्भ किया था।

पंडित गुरुदत्त के जीवन काल तक यह यत्न जारी रहा। पं० गुरुदत्त ने कैमिस्ट्री के विद्यार्थी तथा प्रोफेसर होते हुए भी अष्टाध्यायी द्वारा संस्कृत का प्रचार कर सदियों से पंजाबियों की ओर से पाणिनि मुनि के प्रति प्रकट की गई उपेक्षा के प्रति शोध में, कृतज्ञता प्रकट करने का यत्न किया। सच्चे पंजाबियों का कर्तव्य है कि वह पंडित गुरुदत्त की भाँति अष्टाध्यायी और संस्कृत को अपनाकर तक्षशिला के विद्वान् विद्यार्थी पाणिनि की चलाई परम्परा को पुनः जीवित जागृत करें। इस दृष्टि से हरेक पंजाबी को अष्टाध्यायी पर-आश्रित संस्कृत का अध्ययन कर पंजाबी साहित्य का निर्माण करने में प्रवृत्त होना चाहिए।

---

[२]

मध्य एशिया में पञ्चनद् के वीर सैनिक

५५० ई० पूर्व का समय है। भारतवर्ष के उत्तर प्रदेश में वैविलोनिया मीडिया और परशिया के राजाओं में संघर्ष हो रहा था। वैविलोनिया के राजा नेरिगलिसर ने और उसके मुकावले में परशिया और मीडस लोगों के तरुण राजकुमार साइरस सि कैरस ने ५६० ई० पूर्व में भारतवर्ष सिन्धु देश में अपने राज-दूत सहायता तथा मध्यस्थी के लिये भेजे। जैनोफन अपनी साइरो मीडिया पुस्तक के पृ० २२ पर लिखता है।

सिक्सैरस परशिया के राजसिंहासन पर वैठा ही था कि उसे एक भयंकर युद्ध में उलझना पड़ा। उसे पता चला कि वैविलोन के राजा नैरिगलिसर ने उसके विरुद्ध लीडिया के राजा तथा अन्य अनेक राजाओं को इकट्ठा करना शुरू किया है और राजदूतों द्वारा भारतवर्ष के राजा के पास यह खबर भेजी है कि परशिया मीडस के लोग मिल कर अड़ोस-पड़ोस के राष्ट्रों को अपने अधीन करने की योजनाएँ बना रहे हैं, इसलिये इनका विरोध करने के लिये भारी तय्यारी करनी चाहिए। इस सम्बन्ध में सिन्धु देश के राजा ने अपने दूत मीडिया के राजा के पास असली हालात जानने के लिये भेजे। राजदूतों की रिपोर्ट से पता चला कि वैविलोनिया के राजा ने पहले आक्रमण किया है और वह दोषी है। सिकसेरस और उसके पुत्र साइरस का पक्ष न्याययुक्त और सचाई पर आश्रित है। इस पर सिन्धु देश के राजा ने अपने आपको भी परशिया का मित्र घोषित किया और वैविलोनिया के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया। इस विषय पर लिखते

हुए मि० रौलिन्स (पृ० १२६) पर लिखते हैं:—

एक दिन साइरस अपनी सेनाओं का निरीक्षण कर रहा था। सिक्सेरस ने एक संदेशवाहक द्वारा उसे बुला भेजा और कहा कि सिन्धु देश के राजा के दरबार से राजदूत आए हैं। उनसे भेंट के समय तुम्हारी उपस्थिति आवश्यक है इसलिये तुम शीघ्र राजसी ठाठबाट के साथ दरबार में उपस्थित हो। साइरस वेश परिवर्तन किये बिना, जिस स्थिति में था उसी में तत्काल सिक्सेरस के पास पहुँचा। सिक्सेरस ने कहा कि सिन्धु देश अथवा भारतवर्ष के राजदूत का सम्मान करने के लिये तुम्हें अच्छे राजसी वेश में आना चाहिए था। साइरस ने निवेदन किया कि आभूषण तथा सज-धज के साथ आने में—आपकी आज्ञा पालने में विलम्ब होता; तत्काल आपकी आज्ञा पालन के लिये पसीने से तरबतर अवस्था में मेरा उपस्थित होना आपके लिये अधिक मान और गौरव की बात है। मैं आपकी आज्ञा पालने में कितना तत्पर हूँ, इससे यह प्रकट होता है।

सिक्सेरस ने भारतीय राजदूतों को दरबार में निमंत्रित किया और उनके यहां आने का कारण पूछा। भारतीय राजदूतों ने कहा कि हमें भारतवर्ष के राजाने मीडस और बैबिलोनियन राजाओं के वैमनस्य तथा पारस्परिक युद्ध के कारणों को मालूम करने के लिये भेजा है। यह भी आदेश दिया है कि हम दोनों पक्षों की बातें सुन कर यह पता करें कि दोष किसका है और किसका पक्ष न्यायपूर्ण है। जिसका पक्ष न्याययुक्त होगा भारतीय राजा उसकी सहायता करेंगे। भारतीय राजदूतों ने दोनों पक्षों की बातें सुनकर मीडिया के राजा के पक्ष में सहायता देने का निश्चय किया। भारतीय सिपाहियों की सहायता से सिक्सेरस और साइरस विजयी हुए। बैबिलोनिया

का राजा हार गया। लीडिया का राजा क़ैदी बनाया गया। उसकी राजधानी सार्डिस पर साइरस ने अधिकार कर लिया। इसके बाद साइरस के विशेष गुणों तथा उसकी वीरता के कारण उसका यश फैलने लगे। सिक्सेरस को उससे ईर्ष्या पैदा हो गई। उसे यह भय हुआ कि कहीं यह मीडिया के राजवंश को भी नष्ट-भ्रष्ट न कर दे। उसने साइरस के विरुद्ध षड़यन्त्र रच कर उसे मरवाने की कोशिश की। साइरस को इसका पता चल गया। उसने मौका देख कर मीडिया से निकल भागना ही उचित समझा और वहां से जाकर उसने परशिया वालों को मीडिया के विरुद्ध विद्रोह करने के लिये प्रेरित किया। इन परशिया—मीडिया युद्धों में परशिया वालों को चार बार पराजित होना पड़ा। साइरस का पिता कैम्बीसेस प्रथम भी इन युद्धों में मारा गया। और परशिया की राजधानी (Parsiyanuvode) पसरगड़ी को मीडिया की सेनाओं ने घेर लिया। साइरस ने चाल्डियन के द्वारा भारतीय राजा के पास सहायता के लिये राजदूत भेजा और कहा कि यदि मुझे इस युद्ध में सफलता हुई तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि भारतीय राजा को इस सहायता के लिये अनुताप करने का अवसर प्राप्त नहीं होगा। भारतीय राजा ने साइरस को जन और धन की पर्याप्त सहायता भेजी। इससे साइरस ने अपनी सेनाओं की शक्ति को बढ़ाया। घमासान युद्ध हुआ। सिक्सेरस और एसीएजस पराजित किये गये और साइरस के बन्दी बने। परिणाम यह हुआ कि मीडिया की प्रजा तथा सेनाओं ने साइरस की आधीनता स्वीकार की और उसे अपना राजा स्वीकार किया। इस प्रकार भारतीय सैनिकों की सहायता से साइरस परशियन साम्राज्य का सम्राट् बन गया। साइरस ने भारतीय राजदूतों का उदारता तथा सन्मान पूर्वक

अभिनन्दन किया। यह भारतीय सैनिक पंजाब पंचनद सिंधु देशके वीरसिपाही थे। इस विषय के उपलक्ष्य में शककाल स्थापित किया गया। यह समय ५५० बी० सी० है। भारतीय साहित्य का शककाल यही है। भारतीय सैनिकों की सहायता से प्राप्त विजय की स्मृति में प्रचलित *शककाल का भारतीय साहित्य में निर्दिष्ट होना स्वाभाविक है।

इस प्रकार हमने देखा कि भारतीय पंचनदीय सैनिकों ने मध्य एशिया को अपने प्रभावसे प्रभावित किया था। इस सदीमें भी भारतीय सैनिक समयर पर इस भूपदेश पर अपना पराक्रम दिखाते रहे हैं।

साइरस की शिक्षा दीक्षा भारतवासियों—पंचनदवासियों में प्रचलित पद्धति से मिलती जुलती थी। साइरस के जीवन काल में भारतवासी—परशिया में विशेष प्रभाव रखते थे—परन्तु साइरस की मृत्यु के बाद—उसके उत्तराधिकारी डेरियस ने—इस नीति में परिवर्तन करके परशिया की स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करनी चाही। इसके लिये उसने भारतवर्ष पर—सिन्धु देश पर आक्रमण करने की भी तैय्यारी की। डेरियस हिस्टेस्पेस के सेनापति (Scy Lex) स्क्राइलैक्स ने ५१५—ई० पूर्व से ५०६ ई० पूर्व तक सिन्धु नदी की यात्रा की थी। परन्तु डेरियस पंचनद देश पर अपना किसी प्रकार का प्रभाव स्थापित न कर सका। परशिया के राजा—सप्तसिन्धु देश की सभ्यता तथा शक्ति के सामने सिर झुकाते रहे।

---

* आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ।
षड्द्विक पंच द्वियुतः शककाल स्तस्य राज्ञश्च॥

इस श्लोक में वर्णित शककाल यही है। युधिष्ठिर की मृत्यु से शककाल के प्रारम्भ होने का अन्तर २५२६ वर्ष है।

उस समय के भारतवर्ष की अवस्था का वर्णन (Cnidos) नाइडो के चिकित्सक ग्रीक (Tenis) सैक्सिस ने ३६८ ई० पूर्व में इंण्डीका नाम की पुस्तक में किया। मूल पुस्तक नष्ट हो चुकी है फोटियोस ने उसके अवशेष भागों का संग्रह कर उसको प्रकाशित किया है। यह लेखक डेरियस द्वितीय के परशियन राज दरबार में १७ साल तक रहा। इसके विवरणों तथा अन्य तात्कालीन ऐतिहासिकों के विवरणों से मालूम होता है कि उस समय भारतीय सभ्यता का परशिया पर अत्यधिक प्रभाव था। प्रसिद्ध ऐतिहासिक रौलिन्स ने साइरस तृतीय का जो जीवन चरित्र लिखा है उसमें यह प्रदर्शित किया गया है कि उसने आर्य जाति की आश्रम मर्यादा के अनुसार गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त की थी। उन दिनों भारतवर्ष और परशिया की सभ्यता एक दूसरेसे अत्यन्त मिलती जुलती थी।

मि० रालिन्स ने यह विवरण हैरोडोटस और जैनोफोन के विवरणों से संगृहीत किया है। अंग्रेजी उद्धरण दि एज आफ शंकर The age of Sankara के पृ० ११४ पर है। हिस्टरी आफ साइरस में मि० रालिन्स लिखते हैं उसका भावानुवाद निम्न प्रकार है :—

* परशिया के कानूनों का अन्तिम उद्देश्य तथा मूल सिद्धान्त लोकहित और जाति का सामुदायिक लाभ था। बालकों को शिक्षा

---

* The public good, the common benefit of the nation, was the only principle and end of all their laws. The education of children (Brahm Charya as the Brahman call it) was looked upon as the most important duty, and the most essential part of government: it was not left

(ब्राह्मण लोग इसे ब्रह्मचर्य नाम से कहते हैं) देना राज्य का मुख्य और आवश्यक कार्य माना जाता था। शिक्षा देने का कार्य माता पिता को नहीं सौंपा जाता था क्योंकि राज्य को आशंका थी कि वह लोग सन्तान मोह के कारण इस कर्तव्य का पालन भली प्रकार शायद न करें।

---

to the care of fathers and mothers, whose blind affection and fondness often rendered them incapable of that office; but the state took it upon themselves. Boys were brought up in common (as in old Gurukulas in India) after one uniform manner: where everything was regulated; the place and length of their exercises, the times of eating, the quality of their meat and drink, and their different kinds of punishment. The only food allowed either the children or the youngmen (Brahm Charies as the Brahmans would call them) was bread cresses and water: for their design was to accustom them early to temperance and sobriety; besides, they considered, that a plain, frugal diet, without any mixture of sauces or ragouts (क्षार लवण वर्जम् as our स्मृतिकार would put it) would strengthen the body, and lay such a foundation of health as would enable them to undergo the hardships and fatigue of war up to a good old age."

Here boys went to school to learn justice and virtue, (Swadhaya and Dharm as Manu would put it) as they do in other places to learn arts and sciences, and the crime most severely punished amongst them was ingratitude."

इन गुरुकुलों में विद्यार्थियों को समान भोजन समान वस्त्र तथा समान आहार विहार में रहने की शिक्षा दी जाती थी। उनका भोजन सादा और तपोमय होता था। १६, १७ साल की आयु तक वह लोग धनुर्वेद धनुर्विद्या सीखते थे। १७-२५ साल तक

The design of the Persian in all these wise regulution was to prevent evil, being Convinced that it is much better to prevent faults than to punish them; and where as in other states (as in Media for instance) the legislations are satisfied with enacting punishments for criminals, the Persians endeavered so to order it, as to have no criminals amongst them".

Till sixteen or seventeen years of age the boys remained in the class of children (Brahm Charyam); and here it was they learned to draw the bow, and to fling the dart or javelin; after which they were received into the class of young-men (Snatakes). In this they were more narrowly watched and kept under than before, because that age requires the strictest inspection, and has the greatest need of restraint. Here they remained ten years; during which they passed all their nights in keeping guard, as were for the safety of the city as to inure them to fatigue. In the daytime they waited upon their governors (Acharys) to receive their orders, attended upon the king (Raja) when he went a hunting or improved themselves in their exercises (Vyayamas).

The third class consisted of men grownup

रात को पहरा देना तथा दिन में गुरु सेवा में रहते थे। २५-५० साल तक गृहस्थाश्रम में रह कर कार्य करते थे फिर वानप्रस्थाश्रम में रह कर लोक सेवा करते थे। और उन्हें शस्त्र धारण करा कर स्वदेश से बाहर नहीं भेजा जा सकता था।"

सिन्धु पंचनदीय भारतीय सभ्यता की छाप स्पष्ट दिखाई देती है। मध्य एशिया में अनेक राज क्रान्तियां हुईं। सीरिया मीडिया बैविलोनिया परशिया—कई देशों के महत्वाकांक्षियों ने अपनी २ महत्वाकांक्षा को पूरा करने का यत्न किया परन्तु पंचनद तथा

(Griheasthers) and in this they remained five and twenty years.

Out of there, all the officers that were to command in the troops, and all such as were to fill the defferent posts and employments in the state were chosen. When they were turned of fifty, they were not obliged to carry arms out of their own country."

Besides these, there was a fourth or last class (Vana prorth) from whence men of the greatest wisdom and experience were chosen, for forming public counsel and presiding in the courts of Judieature."

"By this mean, every citizen might aspire to the chief post in the government; but no one could arrive at them till he had passed through all these several cleams, and qualified himself for them by all these exercisen. The classes were open to all; but generally, such only as were rich enough to maintain their children without working, sent them thither.

सप्तसिन्धु की ओर कोई आंख उठा कर न देख सका। मध्य एशियावासी शक्तियों के पारस्परिक संघर्ष तथा कलह के कारण क्षीण होने पर, परशिया के भोगी विलासी डेरियस की सेनाओं को पराजित करने वाले ग्रीस सिपाहियों तथा ग्रीस सेनापतियों को, मध्य एशिया का प्रदेश—अपनी राजतृष्णा को शान्त करने के लिये खुला दिखाई दिया। उन लोगों ने अपनी सेनाओं की बागडोर इधर मोड़ी। सिकन्दर ने भी अपने राजकाल में—मैसिडोनिया में अपना राज्य स्थापित कर इधर सेनाओं को कूच करने की आज्ञा दी। मध्य एशिया में किसी शक्ति ने परशिया तक, सिकन्दर की सेना को सफलता के साथ रोकने का साहस नहीं किया। सिकन्दर बरसाती नदी के वेग से इन मैदानों में बेरोक टोक बढ़ता आया। सिन्धु नदी के किनारे पर आकर उसे पता लगा कि सिन्धु देश अथवा पंचनद निवासियों को जीतना टेढ़ी खीर है। ३२० बी० सी० में सिकन्दर सिन्धु नदी के तट पर आकर रुक गया।

---

[३]

अलक्ज़ैण्डर की पंजाब यात्रा

५० हजार ग्रीक सैनिकों के साथ, मध्य एशिया में बेरोक बढ़ता हुआ, अलक्जैण्डर इंडिया (पंचनद-भारत) की विद्वत्ता वीरता और अनन्त ऐश्वर्य की सम्पत्ति का साक्षात्कार करने के लिये, उमंगों के साथ ३२३ ई० पू० हिन्दुकुश की पहाड़ी घाटियों में प्रविष्ट हुआ। १० दिनों की कठिन यात्रा के बाद कोह० ए० दामन में एलैक्जैण्ड्रिया नाम के स्थान पर डेरा डाला। ग्रीस के साथ यातायात का सम्बन्ध रखने के लिये। पीठ पीछे से होने वाले

आक्रमणों से रक्षा करने के लिये, पृष्ठ रक्षक की हैसियत में, विश्वसनीय सेनापति निकानोर को तैनात किया। स्वयं शेष सेना के साथ निकिया नाम के शहर की ओर बढ़ा। वह शहर आजकल के जलालाबाद के पश्चिम की ओर काबुल से भारत की ओर आने वाले मार्ग पर अवस्थित था। यहां सिकन्दर ने अपनी सेना को दो टुकड़ियों में बांटा। जनरल हैफिस्यन और पर्डिकार के नेतृत्व में, एक टुकड़ी को सीधे सिंधु नदी पर पहुँचने का हुक्म दिया। काबुल नदी की घाटी में से होते हुए यह भारत की ओर प्रस्थित हुए।

३२७ बी. सी. में, हस्ती नाम के जनपद गण ने यूनानियों (यवनों) की सेना को रोका। ३० दिन तक ग्रीक सेना अष्ठकों के विरोध के कारण आगे न बढ़ सकी। लाचार यूनानी सेनापतियों ने छल नीति और भेद नीति को अपनाया। सिन्धु नदी के उस पार के तक्षशिला नरेश को इस प्रदेश का एक भाग देने का लालच दिया और उसे अपने साथ मिलाया, और उसकी सहायता से अष्टक गण को पराजित कर सिन्धु नदी के तट पर पहुँचे। सिन्धु नदी के पश्चिमी तट पर विचरने वाले अनेक (अटाट्या) गणों टोलियों ने क्षणिक रुपये के प्रलोभनों में फँस कर यूनानी सिपाहियों को सिन्धु नदी का पुल बनाने में सहायता दी।

यूनानी सेना की दूसरी टुकड़ी का संचालन स्वयं सिकन्दर कर रहा था। इस सेना के द्वारा काबुल नदी के उत्तर भाग के भयंकर खूंखार फिर्कों को नियन्त्रण में रखना आवश्यक था। इन लोगों की जुझाऊ प्रवृत्ति तथा स्थान की दुर्गमता और पथरीलेपन के कारण सिकन्दर को इन्हें आधीन करने में ५ महीने लग गये। इन युद्धों में एक स्थान पर सिकन्दर जख्मी होकर मरणासन्न भी हो

गया था, मुश्किल से बचा। ग्रीक लोगों ने कैदियों को तलवार के घाट पर उतार कर इसका प्रतिशोध किया। पृष्ठ पार्श्व की रक्षा के लिये सेनापति क्रेटरैस को इन पहाड़ी फिर्कों का दमन करने के लिये नियत कर स्वयं सिकन्दर एस्पेसियन (Aspsian) गण को हराने में जुट गया। ४० हज़ार कैदियों के साथ २ ला० ३० हज़ार बैल भी हाथ में आए। इन बैलों में से चुने हुए अच्छे बढ़िया बैलों को यूनान खेती को उन्नत करने के लिये भेजा। इतने में क्रेटरस भी बाजौर स्थान पर सिकन्दर के साथ आकर मिल गया। इसके बाद २० हज़ार घुड़सवार और ३० हज़ार पदाति सेना और तीस हाथियों की सेना वाले भयंकर असैकियोन नाम के गण को जीतने के लिये पंजकौर नदी को पार कर, इनकी राजधानी (Mussaga) मसागा में प्रवेश किया। मसागा का किला शिलाओं तथा गहरे पहाड़ी नालों के कारण अत्यन्त सुरक्षित तथा दुर्भेद्य था। दुर्ग रक्षकों ने जीजान पर खेल कर मुकाबिला किया। परन्तु गण के मुख्य नायक के तीर द्वारा मारे जाने पर; सिपाही हताश हो गये। इस पर सिकन्दर ने एकदम भारी हल्ला करके किले को अपने आधीन कर लिया। मसागा किले में ७००० हिन्दुस्तानी सिपाही थे। सिकन्दर ने उन्हें आशा दिलाई कि यदि वह स्वयं बाहर आजायेंगे तो वह उन्हें स्वदेश लौटने देगा। उन्होंने ऐसा ही किया। यह बाहर यूनानी कैम्प के सामने की पहाड़ी पर आकर टिके परन्तु सिकन्दर ने रात को उन पर अचानक आक्रमण कर घेर लिया। इन ७००० पंजाबियों ने स्त्रियों बच्चों को सुरक्षित करने के लिये बीच में घेर लिया और स्वयं ग्रीक सिपाहियों के साथ जीजान पर खेलकर युद्ध किया। पंजाबी स्त्रियों ने भी इस युद्ध में भाग लिया। ग्रीक सेनापति चाहते थे कि यह लोग उसकी सेना में सम्मिलित होकर

पंजाब पर हमला करें। उन्हें यह स्वीकार न था। लाचार ग्रीक सिपाहियों की भारी संख्या ने उन्हें घेर कर विवश किया उन्होंने आत्मसमर्पण नहीं किया; लड़ते हुए वीरोचित मृत्यु का स्वागत किया और अपमान जनक आत्मसमर्पण की ग्लानि से बचे। उसके बाद सिकन्दर ने असिकनौयन्स की उन टोलियों को—जो अभीसार प्रदेश:—जेहलम चनाव के बीच के प्रदेश में—चली गईं थीं—हराने के लिये औरोन्स के उत्तर में डिर्टानाम के शहर को आधीन किया। इसके बाद अटक से १६ मील ऊपर ओहिन्द के पुल पर पहुँच कर, सेना को विश्राम करने का अवसर दिया। महीना भर यहां ठहर कर आगे की यात्रा की तैयारी की और ग्रीक देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिये सिन्धु नदी में भेटें अर्पित कीं।

यहां सिन्धु पार के तक्षशिला के राजा अम्भी (Ombhi) का राजदूत सिकन्दर को मिला। एक साल पहले इसका पिता निकिया में सिकन्दर को मिला था। उसके पुत्र ने भी राजदूत द्वारा पिता की भांति अधीनता स्वीकार की। भेंट के रूप में ५०० घोड़े ३० हाथी ३००० बैल १० हज़ार भेड़ बकरियां २०० चाँदी के सिक्के दिये। तक्षशिला के इस राजा की अभीसार के पहाड़ी राजाओं और जेहलम, गुजरात शाहपुर के राजा पोरस के साथ लड़ाई थी। तक्षशिला के राजा ने सिकन्दर की सहायता से इन दोनों से बदला लेने के लिये विदेशी सिकन्दर की आधीनना स्वीकार की। तक्षशिला के राजा की सहायता से सिकन्दर ने फरबरी मार्च ३२३ ई० पू० सिन्धु नदी को पार किया; और प्रथमवार विदेशी आक्रान्ता की हैसियत में सप्तसिन्धु-पंचनद की भूमि पर पैर रखा। अपनी शक्ति के भरोसे नहीं, तक्षशिला के राजा को स्वार्थ पूर्ण देशद्रोह के सहारे!

ग्रीस ऐतिहासिकों के ग्रन्थों में इन दिनों पंजाब के निम्न उपविभाग थे।

(१) जेहलम चनाव के नीचे के पहाड़ों में तक्षशिला और अभीसार नाम के जनपद राष्ट्र थे। यहां अरस्का, उरशा, हजारा मुख्य शहर थे।

(२) चनाव जेहलम के बीच में पोरस का राज्य

(३) चनाव रावी के बीच में छोटे पोरस का प्रदेश

(४) रावी का पूर्वीय भाग एड्रायंस्टाय (Adraistai)

(५) नमक की पहाड़ियों का प्रदेश—जेहलम सिन्धु—के बीच का प्रदेश इसे (Kingdom of Sophytess) सौफिटस का राज्य कहा गया है।

(६) रावी व्यास के बीच का प्रदेश फैगलिस का प्रदेश (Kingdom of pheglis)

(७) शिव का प्रदेश (Siboi) शोरकोट के शिलालेख में इसे शिव पुर कहा है।

(८) व्यास नदी के तट पर अगलासोई औकसाड्रेकाई संस्कृत में इसे क्षुद्रक-क्षौद्रक कहते थे।

(९) मालवा (Malloi) रावी चिनाव के बीच में मुल्तान के प्रदेश में।

(१०) अम्बष्ठ—चनाव के नीचे के भाग के पास इसे ग्रीक (Abastonoi) एवस्टोनाई कहते हैं। सांगला शहर भी प्रसिद्ध था। कनिंगहम शाकला और सांगला को एक मानता है। और इसे रावी नदी के पूर्व में नियत करता है। ग्रीक ऐतिहासिकों के विवरणों से मालूम होता है कि सिकन्दर को पंचनद

प्रदेश में, लगभग ५० राजशक्तियों से मुकावला करना पड़ा था। सामदान दण्डभेद द्वारा इन राजशक्तियों को आपस में लड़ाकर सिकन्दर ने व्यास तक यात्रा की।

× × × ×

सिकन्दर को इस प्रसंग में अनेक वीरों का मुकावला करना पड़ा। उनका रोमांचकारी वर्णन इस प्रकार से है:—

ओहिन्द स्थान पर सिकन्दर की सेना का शिविर लगा हुआ था। सिकन्दर को पता चला कि कुछ दूरी पर जंगल में एक निरीह योगी आसन जमाए बैठा था। उसके तेज की कीर्ति चारों तरफ फैली हुई है। इस प्रदेश के राजे धनी मानी और आम जनता उसकी पूजा करते हैं। सिकन्दर ने अपने राजदूत के साथ भारी भेंटें भेजकर इसे अपने दरबार में दर्शन देने के लिये संदेश भेजा। राजदूत योगी की सेवा में उपस्थित हुआ सिकन्दर का संदेश सुनाया। योगी ने उत्तर दिया—हमें परमात्मा के दरबार को छोड़कर किसी के दरवार में उपस्थित होने की आदत और आवश्यकता नहीं। जिसे अवश्यकता हो वह अपनी आवश्यकता पूरी करने के लिये आ सकता है।

इस प्रकार सिकन्दर को प्रथम पद पर, भारतीय आर्य सभ्यता की विशेषता का पता लगा। वह दरवारियों तथा सिपाहियों के साथ योगी के आश्रम में पहुंचा। साथियों को पीछे छोड़कर योगी के दर्शन के लिये गया। प्रातःकाल का समय था। सूर्य चमक रहा था। उसकी गर्मी से सर्दी की तीव्रता कम हो रही थी। सिकन्दर सूर्य की दिशा में खड़ा हो गया। और निवेदन किया मेरी भेंट स्वीकार करो—योगी कुछ समय तक चुप रहा ठहर कर उत्तर दिया

तुम्हारे पास ऐसी कोई चीज़ नहीं जो मेरे लिये आवश्यक हो परमात्मा मेरी आवश्यकताएं पूरी करता है। सिकन्दर के बार २ आग्रह करने पर योगी ने कहा—अच्छा—देना ही चाहते हो तो परमात्मा की दी हुई—सूर्य की धूप को मुझ तक पहुंचने दो—इसे अपनी परछांई से मत रोको। यह उत्तर सुनकर सिकन्दर हैरान हो गया।

बड़ी २ राजशक्तियों को पराजित करने वाला विजेता-निःशस्त्र योगी की तेजस्विनी वीर वाणी के सामने मंत्र मुग्ध हो चुप हो गया। भारत के आध्यात्मिक वीर के सामने पराजय स्वीकार कर प्रणाम कर वहां से विदा हुआ। योगी के तेज की चमक उसके हृदय पर अङ्कित हो गयी—भारत यात्रा से लौटते हुए—उसकी स्मृति में भारत से एक योगी को भी अपने साथ ले गया।

× × × ×

अभीसार के पहाड़ी सरदार यथार्थ में पोरस से मिलना चाहते थे परन्तु उन्होंने तक्षशिला के राजा तथा सिकन्दर की सम्मिलित शक्ति को देखकर अपने दूत भेज कर सिकन्दर की आधीनता स्वीकार की। सिकन्दर को आशा थी कि पोरस भी इसी प्रकार का संदेश भेजेगा। परन्तु कोई संदेश न आया। इस पर सिकन्दर ने अपना राजदूत भेजकर पोरस को अपने राज्य की सीमा पर भेंट आदि लेकर आने के लिये संदेश भेजा। पोरस ने राजदूत को वीरोचित उत्तर दिया और कहला भेजा कि मैं तुझे अवश्य मिलूंगा—परन्तु मिलूंगा लड़ाई के मैदान में—वीरों के मिलने का एक दूसरे का स्वागत करने का वही स्थान है।

३२६ बी.सी. में, जेहलम के उस पार पोरस विदेशी आक्रमण से स्वदेश की रक्षा के लिये, सेना के साथ क्षत्रियोचित कर्तव्य का पालन करने

की प्रतीक्षा में था। पोरस की सेना में २०० हाथी एक दूसरे से १००फीट के अन्तर पर ८ पंक्तियों में, प्रतिपक्षी की सेना के सामने के भाग में, मध्य स्थान में शस्त्रों तथा वीरों से सन्नद्ध खड़े किये गये। इनके पीछे ३० हज़ार पदाति सिपाही थे। दोनों पार्श्वों तथा हाथियों के बीच के फ़ासले में भी इनकी कुछ टोलियां थीं। इनके आगे दोनों पार्श्वों पर घुड़ सवार सेनाएं रथों के साथ खड़ी थीं। घुड़सवार ४००० थे। रथ ३०० थे। पदाति शस्त्रबद्ध थे। हरेक के पास तलवार-ढाल और तीर कमान थे। *यूनानी ऐतिहासिकों ने लिखा है कि पंजाबी आर्यों को धनुष बाण विद्या अन्य लोगों से बहुत बढ़ी चढ़ी थी। यूनानियों ने इस बात का वर्णन किया है कि पोरस के सिपाहियों के धनुष आदमी के सिर तक ऊँचे और उनके बाण तीन हाथ लम्बे होते थे। बाणों का लोहा या फल बहुत तीक्ष्ण और भारी रहता था। ऐसे धनुषों को खींचने वाले मनुष्य की भुजा में बहुत ताक़त की आवश्यकता होती थी यूनानियों को

---

* इन दिनों पंजाबियों का वेश क्या था इस विषय में स्पष्ट वर्णन नहीं मिलता परन्तु गेटस आफ़ इण्डिया पुस्तक के पृ० ६६ पर निम्न लिखित उद्धरण अङ्कित है।

The Indions, we are told frequently comb, but seldom cut the hair of theirheads. The beard of the chin, they never cut at all, but they shave off the hair•from the rest of the face so that it books pvlished (cultins VIII 9)

"भारतवासी सिर के बालों को प्रायः कघी से साफ़ करते हैं और उन्हें बहुत कम कटते हैं। ठोढ़ी की दाढ़ी कभी नहीं कटाते। चेहरे के शेष भाग के बाल साफ करते हैं जिससे वह अच्छा दिखाई दे।" गुरु गोविन्दसिंह ने इसी पंजाबी वेश को अपनाया था।

यह देखकर, आश्चर्य होता था कि उस समय के योद्धाओं द्वारा चलाए हुए बाण कितने ज़ोर से आते हैं। उन्होंने लिखा है कि ऐसे बाणों से लोहे की मोटी पट्टियां भी छेदी जा सकती थीं। पृथ्वीराज ने भी ऐसे धनुष बाण से लोहे के मोटे तवे छेदकर मुहम्मद गौरी को मारा था।

इधर सिकन्दर ने भी नदी पार कर पोरस का मान मर्दन करने का निश्चय किया। तक्षशिला और जेहलम के बीच में लगभग ११० मील का अन्तर था। सिकन्दर सेना के साथ दो सप्ताहों में जेहलम नदी के तट पर पहुंचा। गर्मी का मौसम था। नदी में बर्फ़ पिघलने से बाढ़ आई हुई थी। जिन किश्तियों से सिंधु पार किया था उन्हीं से जेहलम पार करने का निश्चय किया परन्तु सामने दूसरे पार खड़ी पोरस सेना की ओर से संभावित विरोध को देखते हुए यह उचित न प्रतीत हुआ था। परिस्थितियों को देखकर यही निश्चय किया कि पोरस की सेना की आंख बचाकर या उसे धोखे में रखकर नदी को पार किया जाय। अपनी सेना की एक टुकड़ी पोरस की सेना के सामने तैनात की। इस टुकड़ी का सेनापति क्रेटरस था और तक्षशिला की सेना के ५००० सिपाही भी यहीं रखे। स्वयं १२००० सिपाहियों और ५००० घुड़सवारों के साथ सैन्य शिविर से १६ मील ऊपर नदी को पार करने के स्थान के बीच में-ग्रीक पहरेदार तैनात किये जो कि इधर उधर घूम कर कभी मौसम बदलने की प्रतीक्षा की बात कहते थे कभी कुछ। पोरस-शत्रु सेना की स्थिर नीति और आक्रमण करने का निश्चित स्थान और गति विधि न जान सका और अपनी सेना को स्थिर व्यूह में किसी नियत स्थान पर तैनात न कर सका। मौसम भी आंधी वर्षा का था। इधर सिकन्दर ने रात

होते २ गुप्त रूप से नदी पार की। पोरस की सेना और सिकन्दर की सेना के पार होने के स्थान के बीच में–एक नाला था–उसके कारण पोरस की सेना एक दम सिकन्दर की सेना पर आक्रमण न कर सकी। इस अन्तर में सिकन्दर ने शत्रु पर आक्रमण करने के लिये अपनी सेना को ठीक तरह संगठित कर लिया। उधर पोरस की सेना शत्रु के आने का समाचार सुनकर लड़ने के लिये तैय्यार हो गई। पोरस का पुत्र २००० घुड़सवारों और १२० रथियों के साथ मुकाबला करने के लिये आगे बढ़ा। सिकन्दर की सेना ने इस पर हमला कर सब रथियों को मार कर, ४०० घुड़सवारों को कतल कर दिया; शेष सेना पीछे की ओर लौटी और पोरस को सूचना दी कि शत्रु इस पार आ गया है। सूचना मिलते ही पोरस कुछेक सिपाहियों को क्रेटरस की ओर से पीछे से होने वाले हमले का मुकाबला करने के लिये छोड़ कर; शेष सेना को लेकर स्वयं सिकन्दर का मुकाबला करने के लिये उत्तर पूर्व में पहाड़ियों से घिरे–कारी के मैदान में पहुंचा और वहां की युद्ध योग्य भूमि पर अपनी सेना को व्यूह में खड़ा किया। वर्षा होने पर भी–यह भूमि भाग लड़ाई के लिये और स्थानों से पर्याप्त था। सिकन्दर ने देखा कि उसकी परिमित सेना शत्रु पर सामने से सीधा हमला कर—विजय प्राप्त नहीं कर सकती। इसलिये उसने पोरस की सेना के दायें बायें पार्श्व पर घुड़सवार तीरंदाजों द्वारा हमला कर उन्हें पीछे हटाया–वह धकेलते जाकर हाथियों की कतारों की तरफ़ बढ़े। पृष्ठ भाग की ओर से पोरस के घुड़सवारों ने भी–ग्रीक घुड़ सवारों पर हमला करने की कोशिश की। इतने में हाथियों के कारण गड़बड़ हो गई। तीरों की मार से बिदके हुए अपने पक्ष को ही नुकसान पहुंचाने लगे। पोरस की सेना के पैर

उखड़ गये—ऐतिहासिक कार्टियस रूफस ने लड़ाई का वर्णन और पोरस की सेना के पराभव का वर्णन इस प्रकार किया है।

'लड़ाई के प्रारम्भ में ही वर्षा होने लगी, अतएव कहीं कुछ देख न पड़ता था। परन्तु कुछ समय बाद आकाश निर्मल हो गया। उस पर परस्पर सेनाएं दीखने लगीं। राजा पोरस ने यूनानियों को रोक रखने के लिये एक सौ रथ और चार हज़ार घोड़े सामने भेजे। इस सेना की प्रधान शक्ति रथों पर ही निर्भर थी। ये रथ चार घोड़ों से खींचे जाते थे। प्रत्येक रथ में छः आदमी थे। उनमें से दो हाथ में ढाल लिये खड़े थे। दो दोनों तरफ धनुप लिये खड़े थे और दो सारथि थे। ये सारथि लड़ने वाले भी थे। जिस समय मुठभेड़ की लड़ाई होने लगी उस समय ये सारथि बागडोर को नीचे रखकर हाथों से शत्रुओं पर भाले फेंकते थे। परन्तु उस दिन ये रथ विशेष उपयोगी न हुए क्योंकि पानी खूब ज़ोर से बरसा था। ज़मीन चिकनी होने से घोड़े दौड़ न सकते थे। इतना ही नहीं वरन् वर्षा के कारण रथों के पहिए भी कीचड़ में फंसने लगे और उनके अधिक बोझ के कारण रथ एक जगह से दूसरी जगह ले जाने लायक न रहे। इधर सिकन्दर ने उन पर बहुत ज़ोर से हमला किया। क्योंकि उसकी फौज के पास शस्त्रों का बहुत बोझ न था। पहले ग्रीक लोगों ने पोरस की सेना पर हमला किया फिर राजा ने अपने घुड़सवारों को उनकी पूर्व दिशा पर हमला करने की आज्ञा दी। इस प्रकार मुठभेड़ लड़ाई का आरम्भ हुआ। इतने में ही रथ के सारथी अपने रथों को पूरे वेग से दौड़ाते हुए लड़ाई के मध्य भाग में ले गये। और समझने लगे कि उन्होंने अपने मित्रों की बहुत सहायता की है। सिकन्दर के जो पैदल सिपाही सामने थे और जिन्हें इस हमले का प्रथम धक्का लगा वे ज़मीन

पर गिर पड़े । कुछ रथों के घोड़े बिगड़ गये । रथों को गड्ढों में या नदी में गिराकर वे छूट गये । जो थोड़े बाकी बचे उन पर शत्रु के बाणों की वर्षा होने लगी इसलिये ये पोरस की सेना की ओर वापस लौटे । इससे उनकी सेना में गड़बड़ पड़ गई ।"

इतने में क्रेटरस ने नदी पार की और पोरस की सेना के पीछे की ओर भागते हुए सिपाहियों पर हमला कर उन्हें तलवार के घाट उतारा । हाथी घोड़ों और रथों को तहस नहस तथा बेकार कर दिया । ३००० घुड़सवार, १२ हज़ार पदाति मारे गये । ६००० कैदी किये गये । सेना के तितिर बितर होने पर भी पोरस सच्चे क्षत्रिय की भांति अंतिम दम अकेला लड़ता रहा । उसका डील डौल शानदार ६½ फीट ऊंचा कद था । लड़ता २ गहरे ६ घावों से ज़ख्मी होकर मूर्छित हो गया । बेहोश दशा में उसे कैदी कर सिकन्दर के सामने पेश किया गया । सचेत होने पर सिकन्दर ने पोरस से पूछा तुम मुझ से कैसे व्यवहार की आशा करते हो । पोरस ने कहा वीर राजा जैसे वीर पुरुषों से आशा करते हैं । पोरस के इस वीरोचित उत्तर से प्रसन्न होकर सिकन्दर ने उसको उसका राज्य वापिस किया । केवल उसका अपना भाग नहीं अपितु उसके साथ का लगता प्रदेश भी उसे दे दिया । यही नहीं अपने पीछे उसे इस प्रदेश में अपना उत्तराधिकारी भी नियत किया । इस विजय की स्मृति में सिकन्दर ने निकइया और बुकाफेल नाम के शहरों की स्थापना की । रणक्षेत्र के स्थान पर निकइया की नींव डाली । जेहलम को जहां से पार किया वहां अपने वीर घोड़े बुकाफेल की स्मृति बनाई । पोरस युद्ध में बुकाफेल मर गया था । बुकाफेल आजकल का जेहलम ही है । निकइया कारी स्थान के दक्षिण में—सुख चैनपुर के गांव के पास है ।

पोरस युद्ध के बाद, सिकन्दर ने ग्लैसोई गण को जीता—अभीसार के राजा और छोटे पोरसने सिकन्दर की आधीनता स्वयं स्वीकार कर ली। पीछे की सेना के साथ सम्बन्ध रखने का उचित प्रबन्ध कर सिकन्दर ने चनाव और रावी को पार किया। इसी समय कैथोई औक्सीड्रैकाई और मलोई गणों को जीतकर, सांगला शहर को भूमिसात् किया। इसके बाद सिकन्दर व्यास नदी के तट पर पहुंचा और इस नदी को पार कर—उस पार के राजाओं को भी अपने आधीन करने की तैयारी करने लगा। परन्तु ग्रीस सेना ने आगे जाने से इनकार कर दिया लाचार सिकन्दर को आगे बढ़ने का विचार छोड़ना पड़ा, और व्यास नदी पर अपनी विजयों की स्मृति में स्मारक खड़े किये।

× × × ×

सिकन्दर व्यास पर क्यों रुका? ग्रीस ऐतिहासिक तो यही लिखते हैं कि ग्रीस सेना के सिपाही सालों स्वदेश से बाहर रह कर थक गये थे परन्तु कई ऐतिहासिकों का कहना है कि व्यास पार के राजाओं की बड़ी संगठित शक्ति को देखकर ग्रीक सेना ने आगे बढ़ने का साहस न किया। ❀

❀ "डयुटेन्स साज मोनस द्वारा ब्राह्मणों के शस्त्रों का प्रयोग करने का उल्लेख करता हुआ लिखता है कि सिकन्दर व्यास से आगे इसलिये नहीं बढ़ा क्योंकि व्यास गंगा के बीच के प्रदेश के लोगों के पास भयंकर घातक अस्त्र शस्त्र शक्ति थी।"

The modern atom bomb reminds us of the *Agneyastra* of the Hindus, which by the sheer discharge of certain forces was capable of tremendous destruction even at very distant places, writes the *Astrological Magazine* in its current issue.

सिकन्दर ने तक्षशिला के राजा और पोरस में सुलह कराई तक्ष-शिलाके राजा को सिन्धु और जेहलम के बीच का प्रदेश दिया। जेहलम सिन्धु के बीच में अवस्थित सुलेमानी नमक की पहाड़ियों के राजा सोफीटस को हेफस्टिसन और क्रैटरस द्वारा अपने आधीन किया। सिबोई अगला सोई और मलोई नाम के गर्णों ने मिलकर सिकन्दर पर हमला करने की तैयारियां कीं। तीनों गणों ने मिलकर सिकन्दर पर आक्रमण करना चाहा परन्तु सिकन्दर ने इन तीनों को न मिलने दिया और अलग २ इन्हें पराजित कर अपने आधीन किया। सिबोई गण चनाव नदी-के तट पर-इसके आस पास

Halhed, it writes, gives an extract from a Sanskrit work referring to firearms and observes: "It will no doubt strike the reader with wonder to find a prohibition of fire arms in records of such unfathomable antiquity and he will probably renew this suspicion, which has long been deemed absurd, that Alexander the Great *did* absolutely meet with some weapons of this kind in India. Among the several extra-ordinary properties of this weapon (*Agneyastra*), one was that after it had taken its fight, divided into several sepatate streams of flame, each of which took effect, and which, when once kindled, could not be extinguished"

Dutens mentions the attempt of Salmonens to imitate the thunder of the Brahmins;, but his most remarkable quotation shows that Alexander was prevented from extending his conquests in India, because of the use of certain kinds of peculiar fire weapons by the Indians. The passage here adverted to is as follows: "These truly wise men dwell between the rivers Hypphasis and Ganges, their country Alexander never entered,—their cities he never could have taken, for they come not out to the field to fight those who attack them, *but these holy men, beloved by the Gods. overthrow their enemies with tempests and thundetbolts shot from their walls."*

(ट्रिब्यून १६४५ से)

रहते थे। कैथोई लाहौर से उत्तर पूर्व—। मलोई औक्सीड्रैकाई (मालव क्षुद्रक) क्रमशः लाहौर से दक्खन पश्चिम सिद्ध की सराय और आक्सीड्रेकाई व्यास नदी रावी के आस पास। सिकन्दर के इतिहासकारों ने मालव क्षुद्रक का वर्णन इस प्रकार किया है:—"मालव स्वतंत्र इंडियन जाति के लोग हैं। वे बड़े शूर हैं और उनकी संख्या भी अधिक है। मालव और आक्सिड्रे (क्षुद्रक) के भिन्न २ शहरों में रहने वाले मुखियाओं और उनके मुख्य शासकों की ओर से सिकन्दर के पास राजदूत आए। उन्होंने कहा कि हमारा स्वातंत्र्य आज तक कभी नष्ट नहीं हुआ इसीलिये हम लोगों ने सिकन्दर से लड़ाई की।

इन दोनों गणों की ओर से सौ राजदूत आए। उनके शरीर बहुत बड़े और मजबूत दृढ़ थे। उनका स्वभाव भी बहुत अभिमानी प्रतीत होता था। उन्होंने कहा कि आज तक हमने अपनी जिस स्वाधीनता की रक्षा की है उसे अब हम सिकन्दर के अधीन करते हैं। (अरायन पृ० १५४)

ये लोग मुलतान के समीप रावी और चनाब के संगम के पास रहा करते थे। यह भी लिखा है कि इसके दूसरी ओर अम्बष्ठ जाति के लोग अनेक शहरों में रहते थे और उनमें गणतंत्र राज्य था। (मैक्रिंडलकृत सिकन्दर की चढ़ाई का वर्णन)

इन गणों को हराकर सिकन्दर सिन्धु और पंजाब की नदियों के संगम पर पहुंचा। इसके बाद एरियन के लेखानुसार सिकन्दर ने सिन्ध के एबस्टाई, सैथोई, एक्सोड्राई गणों को जीता और अपनी सेनाके एक भाग को समुद्र मार्ग से भेजा और स्वयं मध्य एशिया के रास्ते से स्वदेश की ओर प्रस्थित हुआ। रास्ते में स्वदेश पहुंचने से पहले बेबिलोनिया में ही अतिश्रम और आमोद प्रमोद के राग

रंग में अत्यधिक चूर होने से मर गया।

× × × ×

सिकन्दर की इस यात्रा वृत्तान्त को पढ़ने से निम्न लिखित प्रश्न पैदा होते हैं? यदि सिकन्दर की सेना थक चुकी थी और आगे न बढ़ना चाहती थी तो उसने लौटने के लिये नया मुसीबतों वाला रास्ता क्यों स्वीकार किया—पुराने उसी मार्ग से क्यों नहीं गई—जहां उसके विजित राजा उसे सब प्रकार की आराम तथा सुविधाएं पहुंचाते। पंजाब के किसी भी विजित प्रदेश में सिकन्दर का कोई उत्तराधिकारी या प्रतिनिधि नहीं नियत किया गया—ऐसा प्रतीत होता है सिकन्दर की यह विजय यात्रा आंधी की भांति थी इसका कोई स्थिर असर न था। पंजाबी राजशक्तियों ने सिर पर आई आंधी को गुजरने देना ही उचित समझा और लौटते हुए आक्रान्ता को रोकना—अनावश्यक जानकर विशेष ध्यान नहीं दिया। हां व्यास नदी तक सिकन्दर की सेना की वीर गति-अदम्य वेग से बढ़ने की गति की सराहना किये बिना, कोई नहीं रह सकता।

ग्रीक सेना की अदम्यता को स्वीकार करना चाहिए। परन्तु यह बात निर्विवाद है कि यदि तक्षशिला की पंजाबी सेना उनका साथ न देती तो वह इस तीव्रता से आगे न बढ़ सकते। उन दिनों भारत के उत्तरापथ की मुख्य राजधानी मगध पाटलिपुत्र था-पाटलि पुत्र की सेना से सिकन्दर की भेंट ही न हुई थी-उसे व्यास नदी पर थकी परेशान ग्रीक सेना के "पंजाब छोड़ो" का नारा स्वीकार करना पड़ा। विजयी होकर भी सिकन्दर पंजाब पर शासन न कर सका। विजित पोरस आदि को ही पुनः शासन तंत्र देकर लौटना पड़ा। पंजाबी जनता की स्वच्छन्दता स्वतंत्र

प्रियता और हर समय लड़ाई करने को उद्यत होने की प्रकृति को देखते हुए सिकन्दर के सेनापतियों ने पंजाब पर शासन करने का साहस न किया। ग्रीक ऐतिहासिकों ने अपने ग्रन्थों में इस विजय का अतिरंजित वर्णन इस लिये किया कि उनके देशवासी निराश न हों। परन्तु भारतीय साहित्य में सिकन्दर की इस विजय का कहीं उल्लेख नहीं। उनकी दृष्टि में यह लड़ाई साधारण सी राष्ट्र के सीमान्त पर होने वाली घटना थी। इसमें संदेह नहीं कि जब तक सिकन्दर पंजाब में रहा उसने किसी शक्ति को सफलतापूर्वक सिर नहीं उठाने दिया। पंजाबी जनता सिकन्दर और रणजीत-सिंह जैसे व्यक्तियों के नियन्त्रण में ही रह सकती है। सिकन्दर और रणजीतसिंह दोनों, पंजाबी प्रकृति के अनुकूल थे। अस्तु!

सिकन्दर के लौटने पर और उसकी मृत्यु का समाचार सुनने के बाद पंजाबी जनता ने ग्रीक जाति के नाम मात्र के प्रतिनिधियों को पंजाब छोड़ने के लिये बाधित किया। सिकन्दर के उत्तराधिकारी प्रतिनिधि शासक पारस्परिक ईर्ष्या तथा द्वेष के कारण पंजाब में अपनी सत्ता कायम न रख सके। इस प्रकार सिकन्दर पंजाब में मई ३२७ ई० पूर्व से ३२५ ई० पूर्व तक रहा। सिकन्दर की विजय का पंजाब पर क्या असर रहा। इस विषय में कई योरोपियन ऐतिहासिक उसका गहरा असर सिद्ध करना चाहते हैं। परन्तु जहां तक साधारण व्यावहारिक बुद्धि से स्थिति की पड़ताल की जाती है; उसका प्रभाव नाम मात्र भी दिखाई नहीं देता। हां यह कहा जा सकता है कि सिकन्दर की विजय के बाद उत्तरापथ की केन्द्रीय राजशक्ति, पाटलिपुत्र ने पंजाब पर अपना सीधा शासन विशेष रूप से स्थापित करना आवश्यक समझा। इस समय तक पंजाब की राजशक्तियां स्वतंत्र थीं। पाटलिपुत्र के

राजा भी उसकी स्वतंत्रता में हस्ताक्षेप न करते थे। परन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानामात्य चाणक्य ने ग्रीक आक्रान्ताओं की गतिविधि को देखकर पंजाब में सीधा अपना प्रभाव जमाना आवश्यक समझा। इसीलिये चन्द्रगुप्त के उत्तराधिकारी बिंबिसार ने अपने पुत्र अशोक को युवराज दशा में पंजाब के सीमान्त तक्षशिला का शासक बनाकर भेजा। साथ ही साथ चाणक्य ने ग्रीक विदेशियों की छलयुद्ध की नीति के मुकाबले में कौटिलीय नीति-कुटिल नीति-'शठे शाठ्यं' की नीति का प्रतिपादन किया। इससे पूर्व भारत की राजनीति धर्मयुद्ध प्रधान मानी जाती थी। दिन में लड़ते थे, रात को मिलकर रहते थे। परन्तु सिकन्दर की सेना ने रात को छलयुद्ध कर उन्हें सावधान किया। उन दिनों भारतीय राजनीति शास्त्र के मुख्य आचार्य चाणक्य ने विदेशियों के सम्पर्क में आने पर समयानुसार कुटिल नीति का प्रयोग करने और गुप्त शस्त्रों तथा कूट उपायों का प्रयोग करने की आज्ञा दी। परिणाम यह हुआ कि सिकन्दर के बाद कई सदियों तक विदेशी पंजाब में न आ सके। कुछेक आए परन्तु वह भी यहां पैर न जमा सके। इस विदेशी सम्पर्क से पंजाब और भारत की धर्म युद्ध प्रधान राजनीति का रूप परिवर्तित हो गया।

सिकन्दर-पोरस तथा अन्य पंजाबी गणों के साथ किये गये युद्धों के वर्णनों से प्रतीत होता है कि उस समय की पंजाबी जनता-सशस्त्र थी—अश्वविद्या तथा शस्त्रविद्या में प्रवीण थी। हर समय आत्म रक्षा और आत्म सम्मान कायम रखने के लिये सन्नद्ध रहती थी। उनकी शिक्षा पद्धति में कृषि-शिल्प के साथ २ शस्त्रविद्या और अश्वविद्या को पर्याप्त स्थान दिया जाता था। यदि हम आज भी विदेशियों का मुकाबला करना चाहते हैं, पंजाबियों की

स्वाभाविक स्वतंत्रता को अकलङ्कित रखना चाहते हैं, तो हमें पंजाव की शिक्षापद्धति में, पुस्तकी विद्या के साथ २ कृषि-शिल्प और शस्त्र विद्या तथा अश्वविद्या को भी स्थान देना चाहिए। यह पंजाबी धर्म अथवा पंजाबी सभ्यता का आवश्यक अंग है।

× × × ×

अशोक ने सम्राट् बनने पर पंजाब से सुपरिचित होने के कारण अपने प्रतिनिधियों द्वारा पंजाबको नियन्त्रण में रखा। पंजाबी स्वभाव को समझते हुए उनके अन्तरीय-प्रबन्धों में विशेष रूप से हस्ताक्षेप नहीं किया। स्वयं बौद्धधर्म में दीक्षित होने के बाद पंजाब में भी इसका प्रचार किया। कश्मीर में श्रीनगर नाम का नगर बसाकर पंजाब के साथ के प्रदेशों पर बौद्ध धर्म की छाप अङ्कित की। इस बीच में पंजाबमें कोई विशेष घटना नहीं हुई। इसके बाद पंजाब की स्थिति का परिचय प्राप्त करने के लिये हमारे पास समय २ पर विदेशों से आने वाले चीनी यात्रियों के वर्णन और प्रशस्तियाँ ही मुख्य साधन हैं।

पंजाब तथा सिंधु नदी के साथ के प्रदेश में, ई. स. की प्रथम सदी में (Tuccha) श्वेत हूण बस् गये थे। इसका निर्देश केवल एरियन स्ट्रेबो आदि के लेखों में ही नहीं है, अपितु इस सम्बन्ध में प्राप्त सीथियन के सिक्कों से भी प्रमाणित होता है। यह लोग इसके बाद भी ३५०साल तक भारत में रहे। ई-सन की छटी सदी में इन्हें भारतीय राजाओं से भारी हार मिली। इसके बाद यह लोग सर्वथा पंजाब तथा भारत से निकाल दिये गये और इस प्रकार भारत हूणों से स्वतंत्र हो गया।

कुशान वंश के प्रसिद्ध राजा कनिष्क ने अपने शासन काल में ई० स० की दूसरी सदी में पंजाब में अपना अधिकार जमाया

और अशोक की भांति इसने भी बौद्धधर्म का प्रचार करने की कोशिश की।

× × × ×

गुप्त वंश के समय में पंजाब की क्या स्थिति थी इसका वर्णन गुप्त वंश के राजकवि हरिसेन की प्रशस्तियों में मिलता है। प्रसिद्ध ऐतिहासिक विन्सन स्मिथ ने अपनी पुस्तक अर्ली हिस्टरी आफ इंडिया में पृ० २८६ पर इस प्रकार से अङ्कित किया है।

"पंजाब, पूर्वीय राजपूताना और मालवा के प्रदेश, अधिकांश में, गणतंत्र शासन पद्धति के अनुसार शासन करने वाले गणों के आधीन थे। सतलुज के दोनों तटों पर यौधेय गण का राज्य था। पंजाब के मध्य भाग में मद्रकों का राज्य था। सिकन्दर के समय में भी इस प्रदेश पर मलोई और कैथोई गणों का राज्य था।"

इससे सिद्ध होता है कि सिकन्दर के समय से लेकर समुद्रगुप्त के समय तक पंजाब के राजनैतिक संगठन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया था।

---

[४]
विदेशी यात्रियों की दृष्टि में पंजाब

फाहियान सन् ४०० ई० में-भारतवर्ष की ओर चला था और ४१४ ई० में अपने देश में लौट गया था।

फाहियान और उसके साथी पर्वतमाला के किनारे २ दक्षिण पश्चिम दिशा में चले, पन्द्रह दिन चलते रहे। मार्ग कठिन था। चढ़ाई उतराई अधिक थी। किनारा बहुत ढालू पर्वताकार पत्थर

की दीवार सा था। इसकी ऊंचाई नीचे से १० हज़ार हाथ थी।

किनारे पर खड़े होने से आंख तिलमिलाती थी। आगे पांव धरने की जगह न थी। सामने पानी था जिसे हिंतु (सिंधु) कहते हैं। यहां पत्थरों को काटकर राह बना दी है। नदी पार करते ही उचांग उद्यान जनपद में पहुंचे। यह उत्तरीय भारत का देश है। इसके बाद स्वात गांधार होते हुए यहां से पूर्व और सात दिन चल कर तक्षशिला नामक जनपद में पहुंचे। बौद्ध दन्त कथा के अनुसार बुद्धदेव ने यहां बोधि सत्व की दशा में, अपना सिर एक मनुष्य को दान किया था। गांधार जनपद से दक्षिण की ओर चलकर पुरुष-पुर जनपद में पहुंचे। इस देश की यात्रा करते हुए बुद्ध ने आनन्द से कहा था—

"मेरे परि-निर्वाण के पीछे इस देश में कनिष्क नामक राजा यहां स्तूप बनवाएगा" (१२० ई० १२८ ई० तक राज्य किया)

दक्षिण दिशा में १६ योजन चलकर नागर जनपद की सीमा पर हेलो–नगर में पहुंचे–इसे अब हिड्डा भी कहते हैं। यह पेशा-वर के पश्चिम में जलालाबाद से ५ मील दक्षिण है। इसे नगरहार भी कहते थे। दक्षिण पर्वत माला को पार कर लोई–या रोही–(काबुल के एक भाग का नाम–जो सफेद कोह के दक्षिण और कुर्रो नदी के आस पास है) पहुंचे। यहां लगभग३०००बौद्ध श्रमण रहते हैं। इसके बाद कुछ दिन आराम कर दस दिन चलकर पोना (बन्नू) जनपद पहुंचे। यहां से पूर्व दिशा में तीन दिन चले फिर हिन्तू (सिंधु) पार किया। इस पार की भूमि समथर और नीची थी।

नदी पार करते ही पीतू नामक जनपद (इसमें सारा पंजाब सम्मिलित था) पहुंचे। यहां बौद्ध धर्म का बड़ा प्रचार था। सब

महायान और हीनयान के अनुयायी थे। जनता ने चीन से आए सहधर्मी को देखकर करुणा और सहानुभूति प्रकट की।

× × × ×

सुंगयुन और हूईसांग दोनों वीई महारानी के आदेशानुसार ई०सन् ५१७-५१८ तक महायान की पुस्तकों की खोज में, भारत आए थे। ५२१ ई० में स्वदेश लौटे थे। इनके यात्रा वृत्तान्तों में सप्त सिंधु पंजाब से सम्बद्ध निम्न उद्धरण अङ्कित किये जाते हैं।

दोनों उद्यान जनपद से होते हुए यात्रा के पहले वर्ष के चौथे मास में गांधार जनपद पहुँचे। यहां के राजा का वर्णन किया है कि वह क्रोधी था। बुद्ध धर्म पर विश्वास नहीं था भूत पिशाच की पूजा करता था। राजा ७०० लड़ाई के हाथियों के साथ सीमा पर रहता था। बूढ़ों को काम करना पड़ता था प्रजावर्ग पीड़ित रहता है। यहां से तक्षशिला-गये। २० श्रमण हैं, एक स्तूप बिहार भी है। तदनन्तर सिंधु महानद होते हुए फोशाप्पू-पुरुषपुर पेशावर पहुंचे। नगर के प्राचीर में सिंहद्वार था। बस्ती घनी-बाग-बगीचे पर्याप्त थे पानी के स्रोतों के कारण भूमि उपजाऊ है। नागरिक धर्मात्मा सत्य परायण थे। नगर में ब्राह्मणों का प्राचीन मंदिर था। उसे संगते-संगति कहते थे। उसमें धर्मनिष्ट व्यक्ति रहते थे (Sang teh) नगर के उत्तर में हस्ती प्रसाद बिहार था यहां बुद्धदेव की पूजा होती थी।

इसके बाद गांधार की राजधानी बीलू होकर शिविक राज-स्तूप और बिहार को सिन्धु नदी के तट पर देखा।

ह्यूनसांग :—

चीन में थाङ्वंश शासन कर रहा था और भारतवर्ष में

हर्ष वर्धन राज कर रहा था—उस समय ६४० ई०.के लगभग ह्यूनसांग यात्री भारत में आया। नाना प्रकार की विपत्तियों को झेलता हुआ हिन्दुकुश पर्वत के समीप बामियान नगर में पहुँचा। यह नगर उन दिनों बौद्ध धर्म का केन्द्र माना जाता था। यहां कई दिन ठहर कर हिन्दुकुश पर्वत पार कर नगरहार पहुंचा। यहां से पेशावर-पेशावर से सिन्धु नदी पार कर तक्षशिला पहुंचा। वहाँ से कश्मीर गया। यहां ६३१—६३३ तक दो वर्ष एक विहार में रहकर बौद्धधर्म का अध्ययन किया। यहां से भारत के मुख्य २ शहर कन्नौज आदि से होकर ६४० ई० में कांचीपुर, काञ्जीवरम, महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, सिन्ध, मुलतान, गजनी तथा काबुल नदी के किनारे होता हुआ स्वदेश लौटा।

× × × ×

ह्यूनसांग ने अपने यात्रा वृत्तान्त में भारतवर्ष के विविध राज्यों तथा प्रदेशों का उल्लेख किया है। इसमें पंजाब सम्बन्धी शहरों तथा प्रदेशों का उल्लेख इस प्रकार है।

टक्क—ह्यूनसांग के लेखानुसार इसकी राजधानी स्यालकोट व शाकल थी। इस समय में यहाँ अधिकांश लोग देवों की पूजा करते थे। इस प्रदेश में सड़कों पर सराय थीं। यहां मिहिरकुल नाम (यह स्वयं शैव था) का राजा राज्य करता था। इस राष्ट्र के निवासी बौद्ध नहीं थे। यहां के विदेशी राजा मिहिरकुल ने बौद्धों का कतल कराया था। इसी मिहिरकुल को मगध के बालादित्य और यशोधर्मन् ने मिलकर ५२८ ई० में हराया; और इसे कैद कर उत्तर दिशा की ओर भेज दिया था। तदनन्तर शाकला या स्याल-कोट की गद्दी पर मिहिरकुल के भाई ने अधिकार कर लिया। इधर

मिहिरकुल ने कुछ दिन छिप कर बिताए फिर कश्मीर के राजा के यहां आश्रय लिया* ।

"यह मिहिरकुल अपने अत्याचारों के लिये प्रसिद्ध था । चन्योट, शाहकोट (जो कि क्रमशः झंग और गुजरांवाला के जिले में है) में मिहिरकुल हूण के सिक्के भी मिले हैं । यशोधर्मन ने स्याल-कोट के राज्य को नष्ट भ्रष्ट कर दिया था । उसके बाद टक्क या तक्क वंश ने इस पर अधिकार कर लिया था । चचनामा में भी इसका उल्लेख है । जालंधर राज्य के उत्तर में रावी और चनाब के

---

*The next country of importance is the one which Hiuen-sang calls Tekka, the former capital of which was Sakala and a former noted king of which was Mihirkula.

Both Sakala and Mihirkula are names of note in the ancient history of India but this capital Sakala was now in ruins, the new capital and the name of Tekka have not been identified. It is possible to identify Tekka, however with the Tak of the Chuchnama and the Tak royal family enumcranted among the 36 royal families of India. The Tak according to Todd disappeareed from Indian history owing to Convrasions to Mohamedanism in the 13th century A.D. The Tekka kingdom appears to have held extensive sway, as Mulasthanpure (Multan) and Parvata are said by Hiuensang to have been subject to Tekka in his days. All these countries were not prominently Budhist and it may be conjectured that they were the places where old Hindu worship then flourished. Mihir Kula, was a persecutor of Budhists, and at Multan there was the famous temple of the Sun worshipped by devotees throughout India. Who the Tekka king was, it would be most interesting to discover. He was the most important king of the Punjab so to speak, though as his country lay between Kashmir and Thanesar, his subordination to Harsha may be inferred. श्री चिन्तामणि वैद्य मैडीवियल हिन्दु इंडया" पृ. १२

बीच के प्रदेश में टक्क राज्य था। ह्यूनसांग ने जो वर्णन लिखा है वह भौगोलिक स्थिति से मिलता है। केवल उसमें यह विशेष लिखा है कि सिन्धु इसकी सीमा पर था। इसका यह अभिप्राय हो सकता है कि यह राज्य हिमालय की तराई से सिन्धु तक फैला हुआ था। यह टक्क लोग हिन्दू थे। कर्नल टॉड के लेख के अनुसार यह लोग क्षत्रियों के ३६ राजवंशों में से थे। परन्तु क्योंकि १३ वीं सदी में यह मुसलमान हो गये थे; इसलिये उनका शेष नहीं रहा। राजतरंगिणी में चक्कथ का निर्देश है। यह नहीं कह सकते कि यह टक्क का अपभ्रंश है या नहीं। कन्नौज के राजा भोज ने शंकरवर्मा की सहायता से इस राज्य को नष्ट किया था। इससे ज्यादा इस राज्य का निर्देश नहीं मिलता। यह राज्य बलशाली प्रदेश था। ह्यूनसांग के लेखानुसार मुलतान भी इसके आधीन तथा अन्तर्गत था। जब चच, सिंध का राजा हुआ तब उसने मुलतान को अपने आधीन किया। इस समय पंजाब के अधिकांश भाग कश्मीर और सिंध के आधीन थे। टक्क और जालंधर दो राज्य स्वतंत्र थे।

८५१ ई० में मुसलमान व्यापारी सुलेमान ने टाक्की का वर्णन इस प्रकार से किया है।

यह प्रदेश छोटा है। राजा कमज़ोर है। अड़ोस पड़ोस के राजाओं के आधीन है। *इसके अन्तःपुर में, भारत में सबसे सुन्दर गौर वर्ण वाली स्त्रियां हैं।

कनिंगहम लिखता है कि—इस प्रदेश का $टक्क नाम टक्क गण

---

* (He possessed the finest white women in all the Indies)

$ The name must have been derived from the Tribe of Takka or Takkas who were once the undisputed Lords of Punjab and still exist as a numerous agricultural races in the lower hills of the Jhelum and Ravi.)

(ट्राइब) के नाम से रखा गया था। यह टक्क लोग पंजाब के एक छत्री शासक थे। इस गण के अनेक कृषिजीवी फिर्के अब भी जेहलम और रावी के नीचे के पहाड़ों में मिलते हैं।

९१५ ई० में ऐतिहासिक मसूरी ने इस प्रदेश का वर्णन इस प्रकार किया है। टक्क प्रदेश में पंजाब की नीचे की पहाड़ियां सिन्धु मुलतान और इनके उत्तर के पंजाब के समतल प्रदेश सम्मिलित हैं। (कनिंगहम की हिस्ट्री आफ पंजाब के पृ० १७ पर कनिंगहम लिखते हैं—

*इस टक्क जाति की महत्ता इससे प्रकट होती है कि उत्तरी

---

†Takka includes lower hills, and ploins of the Punjab to the North of Indus, Multon.

*The former importance of this race is perhaps best shown, by the fact that the old nagari character which are still in use throughout the whole country from Bamiyan to the banks of Jumna, are named Takari most probably because this particular form was brought into use by the Taks or Takkas. I have found these characters in common use under the same name among the grain deale to the west of Indus and to the east of the Satlaj as well as amongst the Brahman of Kashmiri and Kangara. It is used in the "inscription" as well as upon the coins of Kashmir and Kangara; it is seen on the Sati monuments of Mandi and in the inscriptions of Panjore and lastly the only copy of the Raj Tarangini of Kashmir was preserved in the Takari charactars. I have obtained copies of this alphabet from twenty six different places between Peshwar and Simla. In several of these places the Takari is also called Mundi and Lundi; but the meanings of these terms in unknown. The chief peculiarity of this alphabet is, that the Vowels are never attached to the consonants but are always written separately. with; of course, the single exception of the inherent short 'a': It is remarkable, also that in this alphabet the initial letters of the cardinal numbers have almost exactly the same forms as the nine units figures in present use. Cunninghom p. 176.

बामियान से यमुना तक प्रचलित नागरी वर्णमाला का नाम इस जाति के नाम पर प्रसिद्ध हुआ। सम्भवतः इसलिये कि टक्क लोग इस वर्ण माला को व्यवहार में लाए थे। मैंने सिंधु के पश्चिम से लेकर सतलुज के पूर्व तक गेहूं के व्यापारियों, और कश्मीर तथा कांगड़ा के ब्राह्मण और साधारण जनतामें इन अक्षरों का टाकरे या टाकरी नाम से प्रयोग पाया है। शिलालेखों काश्मीर और कांगड़ाके सिक्कों में भी इन अक्षरों का प्रयोग पाया जाता है। मंडी रियासत के 'सती के स्मारक स्तम्भ' और पंजौर के शिलालेख पर इनका प्रयोग किया गया है।

कश्मीर के इतिहास राजतरंगिणी की एक मात्र उपलभ्यमान हस्तलिखित प्रति टाकरी (शारदालिपि) वर्णमाला में लिखी हुई ही उपलब्ध होती है। पेशावर और शिमला के मध्यवर्ती २६ स्थानों पर प्रयुक्तवर्णमाला की नकल अनुकृति लिपि प्राप्त की है। इनमें से कई स्थानों पर टाकरी को मुण्डी और 'लुण्डा' नाम से भी निर्दिष्ट करते हैं। परन्तु इन शब्दों का अर्थ नहीं मालूम। इस वर्णमाला की मुख्य विशेषता यह है कि इसमें स्वर व्यञ्जनों से पृथक् लिखे जाते हैं व्यंजनों के साथ जोड़े नहीं जाते। इसमें ह्रस्व-स्वर अपवाद है। यह बात भी महत्वपूर्ण है कि इस वर्णमाला में संख्या के प्रारम्भिक संख्या सूचक चिह्न वही हैं, जो कि आजकल साधारण व्यवहार में आते हैं।" कई ऐतिहासिकों की राय है कि टाकरा शारदा ही गुरुमुखी का पूर्व रूप है।

मुलतान में जो सिक्के मिले हैं उनसे पता लगता है सूर्यपूजा की समानता से कि यह प्रदेश परशिया के राजाओं के आधीन रहा है। इन सिक्कों पर सूर्य का उल्लेख है। एक सिक्के पर नागरी में 'श्री वासुदेव' लिखा है। और इस सिक्के के एक तरफ़ मुलतान

का राजा श्री वासुदेव लिखा है। इससे पता चलता है कि चच के राज्य के दिनों के आसपास, मुलतान में श्री वासुदेव ना का राजा राज्य करता था।

(२) जालंधर—उत्तर पूर्व में अवस्थित है। राजा का नाम नहीं ज्ञात। वर्तमान तात्कालिक राजा से पहला राजा बौद्ध धर्म संबंधी मामलों का एकमात्र अध्यक्ष था। ५० बौद्धमठ थे। ३ देवालय थे। पाशुपत सम्प्रदाय के मानने वाले इन देवतों के अध्यक्ष थे।

जालंधर प्रदेश में रावी और सतलुज के बीच के दोआवे सम्मिलित थे। इस प्रदेश की राजधानी जालंधर थी और कोट

❀ जालंधर के विषय में कनिंगहम ने यह उल्लेख किया है। Coins of mediveal India" p. p. 99—100.

"The rich district of Jallandhera originally comprised the two Doabas lying between the rivers Ravi and Sutlej. The capital of the country was Jallandhar and Kot Kangra was its chief stronghold. The name is derived from the Danava Jullandhar Killed by Siva. The dead demon stretched; it is said, across the Panjab. The Titan's mouth is said to be Jwalamukhi, and his feet are at Multan; and the part about Jallandhar is said to be his back and hence it is called Jullandhar Pith a name slightly altered by Akbar to Jullandhar Bit. Another name for this country is Trigart *i.e. watered by the three rivers Ravi Bias and Sutlej.*

जालंधरा स्त्रिगर्ताः स्युः हेमचन्द्र कोसः। यह नाम अभी तक प्रचलित हैं।

The Royal family of Trigart believes that they are descendent from Susharman of Mahabharat fame (who with Duryodhon made a raid on Matsaya cattle) and who fought in the great war against the Pandavas. They are luner race क्षात्रय and take the suffix of Chandra to their names all along. An inscription in the temple of Baijnath at

कांगड़ा इसका मुख्य रक्षास्थान-दुर्ग था। पुराणों के अनुसार शिव द्वारा मारे गये जालंधर नाम के दैत्य के कारण इस प्रदेश का नाम जालंधर रखा गया था। ज्वाला मुखी इस दैत्य का मुख था। इस दैत्य के पैर मुलतान में थे। जालंधर के आस पास इस की पीठ थी। इसीलिये इसे जालंधर पीठ भी कहते थे। अकबर ने इसे जालंधर बिट लिखा था। इस प्रदेश को त्रिगर्त नाम से भी निर्दिष्ट करते थे। क्योंकि रावी, व्यास और सतलुज तीनों के जलों से यह सिंचित होता था। हेमचन्द्र कोष में 'जालंधरा स्त्रिगर्ताः स्युः जालंधर को त्रिगर्त का समानार्थक लिखा है।

त्रिगर्त के राजवंश वाले अपने आपको दुर्योधन के साथी सुशर्मा का वंशज मानते थे। यह लोग चंद्रवंशी क्षत्रिय थे और अपने नामों के अन्त में, 'चन्द्र' शब्द लगाते थे। कीरा ग्राम के समीप बैजनाथ के मंदिर में ८०४ ई० तिथि अङ्कित शिलालेख पर जालंधर के राजा का नाम 'जयचन्द्र' लिखा है। राजतरंगिणी में लिखा है कि त्रिगर्तराजा पृथ्वीचन्द्र राजा शंकरवर्मा के आक्रमण से भयभीत होकर भाग गया था। कल्हन ने लिखा है कि १००४ ई० में जालंधर में इन्द्रचन्द्र नाम का राजा राज्य करता था। इनके सिक्कों पर पंजाब के अन्य राजाओं के सिक्कों की भांति 'घुड़सवार' की तसवीर है। पंजाब के राजाओं की इस प्रथा को, महमूद गजनी

---

kira grama dated A.D. 804 names Jayachandra as the Raja of Jullandhara. The Raja Taharangin states that Prithvi Chandra the Raja of Trigart fled before Sankar Varman. Kalhon again mentions one Indra Chandra as the Raja of Jallandhar about 1040 A.D. Their coins show the same symbol viz a horseman which symbol is used by most coins of the Punjab and of Kabul and Prithvi Raj of Delhi and even Mohammedan Kings like Mahmud and Ghori copied it.

और मुहम्मद गौरी भी अपनाते रहे।

मुहम्मदी शासन काल में त्रिगर्त के राजा कभी स्वतंत्र रहते थे कभी परतंत्र। जालंधर का पृथक् राज्य मुगलों के समय समाप्त हो गया था परन्तु कोट कांगड़ा स्थानीय राजाओं के आधीन स्वतंत्र पृथक् रूप में देर तक रहा।

(३) कुल्लू—(Kuluta) उत्तर पूर्व के पहाड़ों में था। राजा का नाम नहीं लिखा। यहाँ २० बौद्ध मठ और १५ देवालय थे।

(४) शतद्रु—दक्षिण दिशा में बहती थी। पश्चिम दिशा में सतलुज थी। वहां के निवासी बौद्ध थे।

(५) परियार-बैराट—(Bairat) दक्षिण पश्चिम में। इस प्रदेश का राजा वैश्य जाति का था। इसका नाम संकेत नहीं किया गया। ८ बौद्धमठ नष्ट भ्रष्ट हो गये थे। १० देवालय थे। इनमें १००० नान बुद्धिस्ट हिन्दू रहते थे।

(६) तक्षशिला, सिंहपुर (नमक की पहाड़ियां पश्चिम में सिन्धु द्वारा घेरी हुई) और हरिपुर हजारा ह्यूनसांग के समय कश्मीर में ककोर्टवंश का राज्य था। ६०० ए. डी. में तक्षशिला-सिंहपुर और हजारा में इसी वंश का राज्य था।

इस प्रकार हमने सिकन्दर के आक्रमण काल से—चीनी यात्रियों के यात्राकाल के समकालीन पंजाब की राजनैतिक धार्मिक तथा सामाजिक स्थिति का वर्णन संगृहीत किया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि अलैक्जैण्डर के आक्रमण के बाद भारत की केन्द्रीय राजशक्तियों ने अपनी शक्ति बढ़ाकर समय २ पर पंजाब को अपने आधीन करने के लिये उसके गणों और स्थानीय राज शक्तियों को निर्बल कर दिया। मगध पाटलिपुत्र की केन्द्रीय

राजशक्ति ने यहां के स्वतंत्र राजाओं को अपने प्रतिनिधियों को आज्ञानुसार कार्य करने पर बाधित किया। पंजाब मौर्य साम्राज्य का अंग बना रहा। अशोक ने बौद्ध धर्म प्रचार के साथ-साथ इन गणों को मगध का आश्रित बना दिया। इसके बाद २०० ई पू. से पंजाब में विदेशी फिरंगियों ने लगातार आक्रमण कर अपना राज्य बसाने की कोशिश की। सबसे पहले सिकन्दर के उत्तराधिकारी ग्रीक सेनापतियों ने कोशिश की; परन्तु इन्हें मौर्य सम्राटों ने सफल न होने दिया और पंजाब पर अपना प्रभावस्थापित किया। इसके बाद शक लोगों ने, तदनन्तर यूची लोगों ने पंजाब पर आक्रमण किये। इन्होंने कनिष्क के नेतृत्व में पंजाब तथा पंजाब से बाहर वर्तमान युक्त प्रान्त तक अपना प्रभाव फैलाया। इन विदेशी आक्रमणों के कारण पंजाब के अनेक स्वतंत्र राजवंश तहस नहस हो गये। कई इनमें से पंजाब छोड़कर दक्षिण भारत तथा राजपूताना में चले गये। परन्तु पंजाब की साधारण जनता अधिकांश में यहीं पूर्ववत् शुद्धरूप में बसी रही। इन विदेशी आक्रमणों ने राजवंशों को नष्टभ्रष्ट किया परन्तु पंजाब की साधारण जनता के सिरों पर से ऊपर २ निकल गये। यह लोग साधारण जनता की सभ्यता तथा उनके पारिवारिक संगठन को छिन्न भिन्न न करसके। स्वभावतः जनता ने स्वदेशी राजशक्ति के नष्ट होने पर आत्मरक्षा तथा अपने पृथक् व्यक्तित्व को कायम रखने के लिये बिरादरियां की दीवारें खड़ी कर विदेशियों (म्लेच्छों) का सामाजिक बहिष्कार कर अपनी पृथक् सत्ता कायम करने की कोशिश की। परिणामतः राजपूत खत्री सैनी अरोड़ा बिरादरियों के लोग व्यापार दुकानदारी द्वारा जीविका निर्वाह कर विदेशी राजशक्ति से अलग रह कर जीवन व्यतीत करने लगे।

पंजाब की साधारण जनता पंचायती ढंग पर ही अपना कार्य चलाती रही। सामाजिक संगठन तथा पारिवारिक ढाँचा गोत्र कुल कुलपति, पिंड ग्रामपति राष्ट्र राष्ट्रपति जनपद के ढांचों पर निर्भर रहा। राजनैतिक शक्ति के कम होने पर—यह संस्थायें केवल मात्र आर्थिक और सामाजिक सम्बन्धों को कायम करने वाली बन गईं। समयान्तर में—यही गण जनपद जन्म मूलक बिरादरियों की नींव डालने वाले बन गए। वर्तमान समय की राजपूत, जाट, खत्री, अरोड़ा आदि जातियों उपजातियों का मूल इन राज शक्तिहीन गणों जनपदों, गोत्रों, पिंडों और ग्राम पंचायतों में ढूँढ़ना चाहिए।

[१]

लाहौर और गजनी का संघर्ष

अरब में इस्लाम की उदीयमान शक्ति के प्रतिनिधि हजाज़ के गवर्नर ने ७११ ई० में अपने भतीजे कासिम के नेतृत्व में एक सेना भारत की ओर भेजी। इस सेना ने सिंध को अपने आधीन किया और मुलतान तक पहुंच कर वहां से सीधा दक्षिण की ओर चली गई। पंजाब की ओर नहीं बढ़ी। महमूद गज़नी के आक्रमण तक इन अरबी आक्रान्ताओं ने पंजाब पर आक्रमण नहीं किया—क्यों नहीं किया इसके कारणों पर विवेचना करने के साधन उपलब्ध नहीं होते। उस समय पंजाब की क्या दशा थी इस विषय में निश्चयात्मक रूप से विस्तार के साथ कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु यह पता लगता है कि जयपाल और उसके पूर्वजों हशपाल आदि ने, अरब वालों के आक्रमण से भारतीय जनता पर जो आतंक छा गया था उसे दूर कर दिया था और काबुल तक पंजाब की राजशक्ति का प्रभाव फैला दिया था। इस बात पर प्रायः सब ऐतिहासिक सहमत हैं कि काबुल में जयपाल का राज्य था। भारतीय साहित्य में ऐसा कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं होता जिसमें इस समय के पंजाब की जनता के सम्बन्ध में कोई विवरण मिलता हो। जो भी वर्णन मिलते हैं, वह मुसलमान ऐतिहासिकों द्वारा लिखे हुए ही हैं। महमूद गजनी के दरबार के विद्वान् अलबूनी की पुस्तक तहरीरे-इ-हिन्द में भारतवर्ष का

भूगोल नाम का अध्याय भी है। इस वर्णन के अनुसार उन दिनों कन्नौज भारत का राजनैतिक तथा ज्योतिष का केन्द्र था; और यहां प्रतिहार वंश का राजा राज्य करता था। अलब्रूनी ने पंजाब का पृथक् निर्देश नहीं किया। परन्तु पंजाब के मुख्य २ शहरों का वर्णन किया है।

अलब्रूनी लिखता है कि अरब के ऐतिहासिक भारतवर्ष को सिंध और हिन्दू नाम के दो विभागों में विभक्त करते थे। सिंध अरब वालों के आधीन था यहां की अधिकांश जनता राजशक्ति के मुसलमान होने के कारण मुसलमान बन रही थी। हिन्द की राजधानी कन्नौज थी; इसका मुख्य भाग मध्य देश था।

अलब्रूनी लिखता है कि सिन्ध की ओर जाने के लिये सीजिस्तान (Sijisttan) होकर जाना पड़ता था और हिन्द की ओर जाने के लिये काबुल होकर जाना पड़ता था। अलब्रूनी काश्मीर का वर्णन करते हुए लिखता है कि यहां यहूदियों के सिवाय औरों का प्रवेश निषिद्ध था।

यहां गिलगित होकर जा सकते हैं। यहां भट्ट तुर्क रहते हैं। इनको भट्टशाह भी कहते हैं—यह तुर्क अभी तक हिन्दू थे। (सर ग्रियर्सन की सम्मति में गिलगित में अभी तक वैदिक सभ्यता और वैदिक भाषा के अवशेष चिह्न उपलब्ध होते हैं) कश्मीर से दक्षिण में लाहौर और राजगिरि नाम के मुख्य नगर हैं; यह सुदृढ़ स्थान हैं। यह भारत की उत्तरी सीमा है। पश्चिमी सीमा पर अफ़गान फिर्का (गण) रहते थे।

रावी तटवर्ती लाहौर इस प्रान्त या राष्ट्र की राजधानी था। जालंधर और राजौरी पृथक् राष्ट्र व प्रान्त थे। कश्मीर शक्तिशाली

राष्ट्र था। इसके बाद कंधार की राजधानी बाहिन्द नाम का नगर था।

अलबूनी लिखता है कि मुलतान में वर्षा नहीं होती। परन्तु अन्य पर्वतीय प्रदेशों के समीप आषाढ़ से श्रावण तक वर्षा होती है। अलबूनी ने भारतीय महीनों का वर्णन किया है और उन्हीं के आधार पर विवरण लिखे हैं और लिखता है कि भारतीय महीने बहुत कम बदलते हैं। अलबूनी ने अपने विवरण में राजनैतिक घटनाओं तथा राजनैतिक व्यक्तियों का नाम मात्र से भी कम वर्णन किया है। इन विवरणों में दिल्ली का वर्णन नहीं के बराबर है। १०३० ई० में दिल्ली साधारण सा शहर था यहां तोमर वंश के छोटे २ राजा थे। इस वर्णन में पानीपत–थानेसर कैथल और मेरठ के वर्णन मिलते हैं। इन दिनों पंजाब में राज दरबार की भाषा, अन्य भारतीय राजदरबारों की भांति संस्कृत थी। विद्वान् जनता (बौद्ध जैनादि) अपना व्यवहार प्राकृत भाषा में करती थी। साधारण जनता की बोल चाल की भाषा कई बोलियों का सम्मिश्रण रूप थी। इन दिनों पंजाब की प्रचलित लिपि शारदा टाकरी देवनागरी से मिलती जुलती थी। इसी में राजतरंगिणी लिखी गई थी। श्री हीराचन्द गौरीशंकर ओझा की सम्मति में इसी शारदा टाकरी का रूपान्तर गुरुमुखी है।

---

[२]

जयपाल का लाहौर

लाहौर का नाम पंजाब की राजधानी के रूप में ईसा की पिछली ६ सदियों से ही निर्दिष्ट किया जाता है। लाहौर शहर को

किसने स्थापित किया—इस विषय में अनेक दन्त कथाएं प्रचलित हैं। कई लोग इसे रामचन्द्र के पुत्र लव द्वारा बसाया हुआ मान कर इसे लवपुर शब्द से भी स्मरण करते हैं। चीनी यात्री ह्यूनसांग के यात्रा वृत्तान्तों में इसका नाम नहीं दिखाई देता। ऐतिहासिक आबूरीकन ने इसे लोहोवार (Lohowar) लिखा है। स्पष्ट रूप से इसका वर्णन महमूद गज़नी के आक्रमण के समय में ही मिलता है। मुसलमान ऐतिहासिक फरिश्ता ने जयपाल और आनन्दपाल को लाहौर का राजा लिखा है। महमूद गजनी ने अपनी राजनैतिक महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिये लाहौर पर आक्रमण करने शुरू किये। इस प्रसंग में ही जयपाल और महमूद गजनी में संघर्ष प्रारम्भ हुआ। दोनों की शक्ति संतुलन का मुख्य स्थान—लाहौर था।

× × × ×

गजनी पर अलप्तगीन का अधिकार था। वह समय समय पर अपने सेनापति सुबुक्तगीन को पंजाब के मुलतान और लाँधमान नाम के प्रदेशों पर आक्रमण करने के लिये भेजता था। लाहौर में जयपाल राज्य करता था। उसने भाटिया के राजा के साथ मिलकर इन आक्रमणों को रोकने की कोशिश की। भाटिया वर्तमान भटनेर रियासत थी। यहाँ का राजा बीजीराय, राजा जयपाल को कर देता था।

९७६ ई० में अलप्तगीन मर गया। दो साल बाद सुबुक्तगीन गजनी की राजगद्दी पर बैठा। यह सुबुक्तगीन टर्की से लाया हुआ गुलाम था। इसने अलप्तगीन की लड़की से शादी कर ली थी। एक हाजी व्यापारी ने इसे बुखारा में अलप्तगीन को बेचा था। सुबुक्तगीन ने इस्लाम का रक्षक की उपाधि धारण कर, कन्धार

प्रदेश जीतकर अपनी सेनाओं को भारत की ओर मोड़ा। गजनी के क्रियाशील आक्रान्ता—गुलाम से राजा बनकर, स्वभावतः साधारण जनता को इस्लाम की ओर खींचते थे। सुलतान भारत की सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य की आशा दिलाकर उन्हें अपनी सेना में भरती करते थे। उनकी सेना में जो आता था वह सेनापति और राजा के धर्म इस्लाम में दीक्षित हुआ समझा जाता था। वह अपने आपको इस्लाम का प्रचारक मानकर-बुतशिकन् बनने के लिये; उत्साह और उमंगों के साथ भारत की ओर बढ़ता था। इनके लिये घर या सम्पत्ति का कोई ख्याल न था क्योंकि यह अभी कहीं स्थिर रूप से बसे ही न थे—वे मध्य एशिया से धकेले जाकर—घर की तलाश में थे।

पंजाब के मुख्य शहर लाहौर में राजा हशपाल का पुत्र जयपाल राज्य करता था। इसका राज्य सिंधु नदी से लांघमान तक फैला हुआ था। दूसरी तरफ़ कश्मीर से मुलतान तक इसका अधिकार था। ६७७ ई० में सुबुक्तगीन ने भारत पर आक्रमण किया। लूटमार कर गजनी लौट गया। जयपाल ने लांघमान स्थान पर १००००० सैनिकों के साथ सुबुक्तगीन को गजनी वापिस लौटने के लिये लाचार किया। वह गजनी में जाकर अपनी गद्दी की रक्षा के प्रबन्ध में लग गया। फिर इधर आने का साहस न किया।

सुबुक्तगीन की मृत्यु पर महमूद ने गजनी की गद्दी संभाली। मुसलमान ऐतिहासिकों के लेखानुसार इसने भारत पर छोटे मोटे १३ आक्रमण किये। प्रथम आक्रमण १००१ ई० में किया। अन्तिम आक्रमण १०२७ ई० में हुआ।

१००१ ई० में महमूद गजनी ने १० हज़ार घुड़सवारों के साथ पंजाब पर आक्रमण किया। इधर—जयपाल २ हज़ार घुड़-सवारों और ३००० पदातियों के साथ मुकाबला करने के लिये पेशावर पहुंचा। दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। जयपाल गिरिफ्तार हो गया। उसके गले में ८२००० मोतियों वाली माला थी। उसने माला लेकर जयपाल को छोड़ दिया। महमूद भटिण्डे के किलों को जीतकर लौट गया। इस लूटमार से निराश हताश जयपाल ने अपने बेटे आनन्दपाल (अनंगपाल) को राजगद्दी सौंप दी स्वयं चिता में जलकर भस्म हो गया।

१००४ ई० में भाटिया के राजा बीजीराय के नियत कर न देने पर, महमूद ने उस पर आक्रमण किया। राजा ने महमूद का मुकाबला किया। महमूद निराश हो गया—उसे स्वयं जीते जी लौटने की आशा न रही। लाचार मक्का की ओर मुँहकर भूमि पर लेटकर परमात्मा से दुआ मांगी। सिपाहियों को इस्लाम के नाम पर उत्तेजित किया। अचानक बीजीराय की सेना पर रात को हमला कर भाटिया की सेना को तितिर बितर कर हाथ लगी सम्पत्ति लूटकर लौट गया। आए दिन होने वाले आक्रमणों से परेशान होकर भाटिया के राजा ने भी आत्म हत्या कर ली। १००५ ई० में मुलतान के मुसलमान शासक शेख हमीद ने महमूद गजनी को राज कर देना बन्द कर स्वतंत्र होने की कोशिश की; और अनंग-पाल के साथ मिलकर पेशावर में महमूद गजनी की सेना का मुकाबला किया। महमूद गजनी ने ७ दिन तक भटिण्ढे का घेरा डाला। इसी समय काशगर के राजा द्वारा गजनी पर आक्रमण करने का समाचार मिला और उसे तत्काल लाचार लौटना पड़ा।

१००८ ई० में राजा अनंगपाल ने—आए दिन होने वाले

आक्रमणों का मुकाबला करने के लिये पंजाब तथा भारत के राजाओं को इक्ट्ठा कर पेशावर में सैन्य शिविर लगाया। इधर महमूद गजनी भी अपनी सेना के साथ ४० दिन तक वहां रुका रहा। अनंगपाल की सेना के साथ उज्जैन, ग्वालियर, कन्नौज अजमेर कालंजर की सेनाओं के साथ २ गक्खरों के ६००० वीर-राजपूत भी थे। दोनों में मुकाबला हुआ। महमूद गजनी की सेना थक गई। मैदान छोड़ने ही लगी थी कि इतने में अचानक अनंगपाल का हाथी—घबरा कर भाग खड़ा हुआ। इससे भारतीय सेना में भगदड़ मच गई। महमूद गजनी ने मौका देखते ही ६००० गजनवी घुड़सवारों और १०००० तुर्कों के साथ मिलकर—भारतीय सेना पर हमला कर दिया और उसका पीछा किया—अपार सम्पत्ति लूटी। लगते हाथ कांगड़ा नगरकोट का किला भी जीता। इसे राना भीम का किला कहते थे। यहां के मंदिरों में सालों से संगृहीत सम्पत्ति इकट्ठी पड़ी थी उसे लूटा। यहां एक विद्यामंदिर भी था। अनेक लोग विद्या पढ़ने आते थे। यहां मंदिर के पुजारियों ने महमूद को रुपया देकर—अपने प्राणों की रक्षा की। महमूद अनन्त सम्पत्ति लेकर गजनी लौट गया। गजनी में दरबार लगाकर पंजाब से प्राप्त सम्पत्ति का प्रदर्शन कर—अपने दरबारियों तथा जनता को फिर भारत पर आक्रमण करने के लिये उत्साहित किया। फिर नई सेना के साथ १०११ ई० में थानेसर पर हमला किया। अनंगपाल ने रुपया देकर महमूद गजनी को यहां की मूर्ति तोड़ने से मना किया; परन्तु वह न माना। उसने मूर्ति तोड़ी—उसके टुकड़ों को गजनी, मक्का, मदीना भेजकर उन्हें मसजिदों में लगवाया। हजारों कैदी अपने साथ ले गया। १०१३ ई० में महमूद गजनी ने नानदौन पर हमला

किया यहां अनंगपाल के लड़के जयपाल द्वितीय ने उसका मुकाबला भी किया। परन्तु अन्त में जयपाल द्वितीय आत्म रक्षा के लिये कश्मीर चला गया। महमूद लूटमार कर-गजनी लौट गया। अनेक नागरिकों को कैदकर-मुसलमान बनने के लिये बाधित किया। जो मुसलमान बन जाते, वह उसके सिपाही बन जाते। महमूद गजनी की सहायता करने वाले कन्नौज के राजा कुंवरराय के विरुद्ध, भारतीय राजाओं ने-इनमें लाहौर का राजा अनंगपाल भी शामिल था-संगठन कर उस पर हमला किया। महमूद गजनी को जब यह समाचार मिला वह भारी सेना के साथ राजा कुंवरराय की सहायता के लिये आया। कलिंजर के राजा ने-कुंवरराय को साथियों सहित मार दिया। महमूद गजनी ने-कलिंजर के राजा पर अचानक आक्रमण कर उसे भगा दिया। लाहौर के राजा जयपाल द्वितीय और लाहौर शहर को तहस नहस कर दिया। इसके बाद महमूद ने विजित प्रदेशों पर अपने सूबेदार नियत किये। लाहौर का शासन अपने विश्वासपात्र मलिक अयाज को दिया। यह लाहौर का प्रथम फिरंगी(वचन से फिरने वाले)विदेशी सूबेदार था। कहा जाता है कि इसने लाहौर का किला बनवाया। शहर कोसुन्दर बनाया। लाहौर को विद्या का केन्द्र बनाने की कोशिश की। अनेक लोगों को गजनी से आकर लाहौर में बसने की प्रेरणा की। इन्हीं में एक फकीर मखदूम शेख अली-गंज बख्श हजवरी था। इसकी समाधि दातागंज बक्श के नाम से प्रसिद्ध है। यहां हर शुक्रवार को मेला लगता है। टकसाली दरवाजे के बाहर (पुराने भिटे के पास) मलिकएयाज की कबर है-मुसलमान इसे लाहौर का संस्थापक मानकर इसकी पूजा करते हैं—

महमूद गजनी ने अपने नाम पर लाहौर का नाम 'महमूदपुर' रखा। अरबी और हिन्दी अक्षरों में अपने नाम के सिक्के भी लाहौर से जारी किये। इन सिक्कों पर एक तरफ़ (अव्यक्तात्मा महम्मद अवतार नृपति महमूद) हिन्दी अक्षरों में लिखा है। यह सिक्का महमूदपुर में बना। अन्तिम १३वां आक्रमण १०२७ ई० में सोमनाथ पर किया और अपार सम्पत्ति लूट कर लौट गया। रास्ते में सिन्धु नदी के तटवर्ती जाटों ने इसकी सेना पर हमला कर इसे लूट लिया। इसके बाद महमूद गजनी ने कोई हमला नहीं किया। १०३० ई० में पथरी की बीमारी से पीड़ित होकर गजनी जाकर मर गया।

इस प्रकार हमने देखा कि सन् १००१ ई० से लेकर १०२७ तक लगातार २७ वर्षों के यत्न के बाद महमूद गजनवी पंजाब की राजधानी में पैर जमा सका और प्रथम विदेशी सूबेदार को लाहौर का शासक नियत किया। महमूद गजनवी के उत्तराधिकारी सुलतान मसूद तृतीय के समय में, लाहौर गज़नवी वंश की राजधानी बन गया। गियासुद्दीन गौरी और शाहबुद्दीन गौरी के आक्रमणों के कारण इन्हें गजनवी राज्य के कई शहर छोड़ने पड़े।

---

[३]

विदेशियों का पारस्परिक संघर्ष

११६० ई० में अन्तिम गजनवी बादशाह खुसरो मलिक को हराकर शाहबुद्दीन गौरी गजनी का सुलतान बना और गजनी वंश के उत्तराधिकारियों से लाहौर भी ११८० ई० में छीन लिया। मलिक खुसरो ने लाहौर को सुरक्षित कर गक्खरों के साथ मिल

कर शाहबुद्दीन गौरी का मुकाबिला किया। ११८६ ई० में मलिक खुसरो को कैद कर शाहबुद्दीन ने लाहौर पर गौरी वंश का अधिकार घोषित किया और अपने भाई घियासउद्दीन के नाम पर शासन किया।

इसी सिलसिले में पंजाब के पहाड़ों में रहने वाले गक्खरों ने शाहबुद्दीन गोरी के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा कर, जेहलम चनाब के मध्यवर्ती प्रदेश को लूटा। लाहौर को भी अपने आधीन किया। गौरी गजनी से इनका दमन करने आया। कुतुबुद्दीन ऐवक को पूव से सेना लेकर गक्खरों पर हमला करने के लिये आदेश दिया। गक्खर घिर गये—कई मारे गये—लाहौर उनसे छीना गया—परन्तु उन्होंने भी गौरी से बदला लेने का संकल्प किया। गौरी गजनी वापिस जा रहा था सिंधु नदी के तट पर रोहतक गांव के पास उसने अपना सैन्य शिविर लगाया था। गक्खड़ों ने षड्यंत्र रच कर रात को गौगी के शिविर पर घातक हमला कर उसे २४ स्थानों पर ज़ख्मी कर मौत के घाट भेजा।

शाहबुद्दीन गौरी निःसन्तान था—उसके भतीजे महमूद ने कुतुबुद्दीन ऐवक का विरोध शान्त करने के लिये उसे १२०५ ई० में लाहौर का प्रथम मुसलमान बादशाह घोषित किया। स्वयं गजनी की गद्दी संभाली। कुतुबुद्दीन ऐवक ने इसे स्वीकार कर—लाहौर पंजाब के बल पर दिल्ली की राजगद्दी भी संभाल ली। कुतुबुद्दीन ने दास वंश की नींव डाली। हस्पताल रोड के पास कुतुबुद्दीन ऐबक की मसजिद के पास एबक रोड है। दास वंश के समय में—विशेष घटना—मुगलों के पंजाब पर आक्रमण थे। इन्हें दास वंश के राजा रोकते रहे। महत्वाकांक्षी मुसलमान लाहौर

और दिल्ली की गद्दी के लिये आपस में लड़ते रहे। जनता तटस्थ उदासीन रही। १२०५–१२८८ई०तक दास वंश के समय में चंगेज़खां हलाकूखां तैमूरखां ने पंजाब के मुख्य शहरों को लूटा। पंजाब के गवर्नर मौका देखकर समय २ पर दिल्ली से स्वतंत्र होने की कोशिश करते। दिल्ली के बादशाह भी समय२ पर पंजाब की सूबेदारी अपने मनोनीत व्यक्तियों को देकर गद्दी सुरक्षित करने की कोशिश करते। इन ८८ वर्षों में पंजाब विदेशी आक्रान्ताओं की महत्वाकांक्षाओं की रंगभूमि बना रहा। ईर्ष्यालु सर्दारों की घुड़दौड़ का चौगान बना रहा। जनता को राजशक्ति की ओर से अपनी उन्नति के लिये कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। प्रान्तीय राजशक्ति का मुख्य उद्देश्य अफ़गानिस्तान की ओर से होने वाले आक्रमणों तथा दिल्ली दरबार के षड्यंत्रों से अपने आपको सुरक्षित रखना था।

१२८८ ई० से १३२१ तक खिलजी वंश ने राज किया। इस समय मुगलों ने पंजाब पर भी हमले किये। अलाउद्दीन खिलजी ने उनकी रोकथाम की। पंजाब के सूबेदार गाजीवेग तुगलक ने भी इन मुगलों की काफ़ी रोकथाम की। इस समय यह मुगल भी मुसलमान बन गये थे। जलालउद्दीन फिरोज ने अपनी लड़की का विवाह चंगेज़खां के पोते के साथ कर इनके आक्रमणों को रोकना चाहा परन्तु इससे भी वह न रुके। अलाउद्दीन खिलजी ने सख़्ती से इनका दमन किया पंजाब के गवर्नर गाजी वेग तुगलक ने गजनी तक इनका पीछा भीकिया। तुगलक वंश के राज काल में पंजाब में गक्खरों ने कई बार मुगलों पर आक्रमण किये। तैमूर लंग को भी गक्खर सरदार शेख के नेतृत्व में रोका परन्तु अब मुगलों को रोकना कठिन हो गया था। इस समय पंजाब पर मुगलों का अधिकार हो रहा था। खिजर खान तैमूरलंग का प्रतिनिधि

होकर पंजाब में शासन करने लगा। दिल्ली का कमजोर बादशाह मुगलों के आक्रमणों के सामने मैदान छोड़कर भागने लगा। सैयद वंश के समय भी गक्खरों ने समय २ पर पंजाब पर अधिकार करने और लाहौर को अपने आधीन करने की कोशिश की, परन्तु उन्हें सफलता नहीं हुइ। मुलतान दीपालपुर और लाहौर के शासक परस्पर ईर्ष्या कर; दिल्ली तथा अफ़गान के शासकों की सहायता से अपनी शक्ति बढ़ाने में लगे हुए थे। इन दिनों पंजाब की गवर्नरी दिल्ली के वज़ीर से ज्यादा महत्त्व की चीज़ बनी हुई थी। पंजाब के सूबेदार खिजर खान सैयद ने पंजाब की गवर्नरी के भरोसे ही दिल्ली में सैयद वंश को कायम किया था। इसी प्रकार सरहिन्द के सूबेदार इस्लाम खां के मरने पर उसके भतीजे बहलोल लोदी ने सरहिन्द की सूबेदारी संभाल ली। दीपालपुर पर हमला कर पानीपत का प्रदेश जीतकर बादशाह को अपना कठपुतली बना कर कमाल-उल-मुल्क को दिल्ली की बजारत से अलग कर स्वयं बादशाह का मुख्य सलाहकार बन गया।

१४४१ ई० में सैयद मुहम्मद ने बहलोल लोदी को लाहौर और दीपालपुर की सूबेदारी पर पक्का किया। १४४५ ई० में सैय्यद मुहम्मद के मरने पर उसका लड़का सैयद अलाउद्दीन बदाऊं जाकर ऐश करने लगा। इधर बहलोलखां लोदी ने मौका देखकर दिल्ली की गद्दी संभाल ली। फिर पंजाब के गवर्नर ने दिल्ली की गद्दी संभाली। लोदी वंश के समय पंजाब में कोई गड़बड़ न हुई। इसने गक्खरों से दोस्ती की हुई थी। इब्राहीम लोदी १५१७ ई० में गद्दी पर बैठा। लाहौर के सूबेदार दौलत खां लोदी ने इब्राहीम लोदी के विरुद्ध विद्रोह किया। इब्राहीम लोदी के चाचा अलाउद्दीन के साथ मिलकर दौलतखां ने दिल्ली पर हमला किया,

परन्तु बादशाह का मुकाबला न कर सके। पंजाब लौट आए और अपने राजदूत भेजकर-काबुल से तैमूरलंग के प्रपौत्र बाबर को पंजाब और भारत का शासन तंत्र संभालने के लिये निमंत्रित किया। पंजाब के गवर्नर द्वारा निमंत्रित बाबर ने दिल्ली के बादशाह इब्राहीम लोदी पर हमला किया। २१ अप्रैल १५२६ ई० में बाबर विजयी हुआ; इब्राहीम लोदी मारा गया।

१००० ई० से १५२६ ई० तक पंजाब की जनता गक्खरों की विद्रोह ज्वालाओं और अफ़गानिस्तान गजनी की आंधियों से परेशान विदेशी राजशक्ति से; कोई सुख न पा सकी। जनता ने सामाजिक बहिष्कार और असहयोग की नीति द्वारा आत्मरक्षा की। जनता और राजशक्ति में भेदभाव की खाई गहरी होती गई। इस अरसे में कोई पंजाबी, पंजाब का शासक नहीं बना; न किसी विदेशी ने पंजाब को मातृभूमि की तरह अपनाया।

---

[४]

जनता का रूपान्तर

यथा राजा तथा प्रजा

१००० ई० से १५२६ तक पंजाब की जनता के कई भागों में राजशक्ति के प्रभाव भय तथा प्रलोभन से धर्मान्तर हुए। पेशावर के राजा सेवकपाल और राजा हरदत्त के मुसलमान होने का वर्णन इतिहास ग्रन्थों में मिलता है। इस समय पंजाब से कुछेक राज वंश राजपूताना की ओर गए कुछेक राजपूत पंजाब में भी आए। किस समय किस गण ने धर्म परिवर्तन किया—क्यों किया इसका विवेचन करना कठिन है। इसके लिये विविध बिरादरियों

तथा फिर्कों के इतिहासों का अनुशोलन करना चाहिए। इस विषय में 'दि पंजाब चीफ़स' में मि० ग्रिफिथ ने जो उल्लेख किया है उसका सार यहां दिया जाता है। इसकी प्रामाणिकता के विषय में कुछ न कहते हुए हम इस विवेचन की उपयोगिता को स्वीकार करते हुए पंजाब के ऐतिहासिकों से आग्रह पूर्वक निवेदन करेंगे कि वह पंजाब की जनता के सामाजिक विकास के अध्ययन के लिए इस दिशा में भी विशेष ध्यान दें इससे हमें पंजाब की जनता का इतिहास पता लगाने में काफ़ी सहायता मिल सकती है।

ईसा की १०वीं सदी से १५ सदी तक पंजाब में मान तथा अन्य अनेक फिर्कों के लोग आए थे। इनमें मुख्य जाटजंजूह टिवाणा सियाल घेब और कोक्खर थे।

जनजू फिर्के (गण) के लोग अपना इतिहास इस प्रकार बताते हैं। ६८० ई० में, राजमल पाण्डु राठौर राजपूत, जोधपुर और कन्नौज से पंजाब में आए। कन्नौज में राठौर वंश का राज्य था। राजमल अपने अनुयाइयों के साथ जेहलम के उत्तरी पहाड़ी प्रदेश में गया। वहां राजगढ़ नाम का गांव बसाया। आज कल इसका नाम मलौट है। गज़नी के महमूद के आक्रमण काल के समय राजमल यहां राज्य करता था। महमूद ने उसे अपने सामने हाज़िर होने के लिये बुला भेजा, उसने आने से इनकार किया। महमूद ने सेना भेज कर उसे कैद कर लिया। जीवन रक्षा और स्वतंत्र होने के लिये उसने लाचार होकर इस्लाम स्वीकार किया। क्यों कि इस फिर्के के जंजू (जनेऊ) तोड़ कर इन्हें मुसलमान बनाया गया था, इस लिये इस फिर्के का नाम जंजूह पड़ा।

राजमल ने मलोटे और कटासराज में तालाब और मन्दिर भी बनवाए थे। आज कल भी हज़ारों यात्री वहां जाते हैं।

राजमल के पुत्र जोध और वीरखां के वंशज भी पंजाब के कई भागों में फैल गये। इन दोनों ने राजमल के प्रदेश आपस में बांट लिये। वीरखां के पुत्र राजा मुहमदखां ने भी कई किलों की नींव डाली। जोध के पुत्र रहपाल, सेसपाल, जयपाल आदि पुत्र थे। इनके वंशजों ने तैमूर की सेना में भी काम किया था। सिक्खों के शक्तिशाली बनने पर यह राजपूत उनके आधीन भी सिपाही बन कर काम करते रहे।

१—छिब—राजपूत खानदान से हैं। व्यास जेहलम के बीच में रहते हैं। गुजरात के गांवों में रहने वाले मुसलमान हैं। कांगड़ा जम्मू के छिब हिन्दू हैं। १४०० ई० में छिबचन्द उदयचन्द से लड़कर भिम्भर के मलूटा भूचलपुर गांव में बसे। वहां के राजा श्रीपाद की लड़की से ब्याह कर उसे धोखे से मार दिया। इन छिबों के उत्तराधिकारी यहीं राज्य करते थे। बाबर के शासन काल में यह राजपूत उसके दरबार में हाज़िर हुए थे। तब हिन्दू धर्म छोड़ कर अपने सूबों को बादशाह बाबर से स्वीकृत कराकर अपना नाम शराबखां रखा।

पंजाब के इतिहास में गक्खर विशेष महत्व का फिर्क़ा है। इन लोगों ने समय समय पर सिकन्दर से लेकर मुगलों तक विदेशियों के विरुद्ध विद्रोह करने में विशेष तत्परता दिखाई। १२ वीं सदी तक इन्होंने इस्लाम स्वीकार नहीं किया था। फरिश्ता की सम्मति में इन लोगों ने १३वीं सदी में इस्लाम धर्म स्वीकार किया था। फरिश्ता के अनुसार ६८२ ई० में यह लोग गक्खर

नाम से पंजाब में रहते थे । इनके पूर्वजों ने ही पता नहीं उस समय इनका क्या नाम था; सिकन्दर को लौटते समय परेशान किया था ।

आहराह फिर्का भी राजपूतों का है । यह भी सुलतान महमूद गज़नी के समय ११ वीं सदी में मुसलमान बना था ।

---

* पंजाब की पराधीनता के कारण

चीनी यात्रियों के यात्रा वृत्तान्तों में श्रमणों, मठों, विहारों और देवतओं पुजारियों तथा जैन सम्प्रदाय के मन्दिरों का उल्लेख मिलता है । विद्या मंदिरों का स्थान मठ बिहार मंदिर ले चुके थे । तेजस्वी बुद्ध के व्यक्तित्व का स्थान उनकी मूर्तियों ने और परमात्मा और प्रकृति की जीवन संचारिणी देवपूजा का स्थान पत्थर की मूर्तियां ले चुकी थीं । जैन बौद्ध पौराणिक पुजारी मूर्तियों द्वारा मठों व मंदिरों में धनसंचय में लगे हुए थे । विद्याप्रचार के स्थान पर, साम्प्रदायिक सिद्धान्तवाद पर बल दिया जाने लगा था । जन्माभिमानी पुजारियों तथा बौद्ध श्रमणों ने जनता को रूढ़ियों के जाल से

---

* नाना प्रकार की बिरुद्ध स्वरूप नाम चरित्र युक्त मूर्तियों के पुजारियों का ऐक्य मत नष्ट हो के विरुद्ध मत में चल कर आपस में फूट बढ़ा के देश का नाश करते हैं ।

उसी के भरोसे में शत्रु का पराजय और अपना विजय मान बैठे रहते हैं । उनका पराजय होकर राज्य स्वातंत्र्य और धन का सुख उनके शत्रुओं के स्वाधीन होता है और आप पराधीन भठियारे के टट्टू और कुम्हार के गदहे के समान शत्रुओं के वश में होकर अनेक विध दुःख पाते हैं ।

पृ० ४४६ सत्यार्थप्रकाश दयानन्द

जकड़ कर चेतनाहीन और परस्पर विरोधी बना दिया था। साम्प्रदायिक अहिंसावाद ने उन्हें अकर्मण्य बना दिया था—पौराणिक देवतावाद ने उन्हें मूर्तियों पर आश्रित कर दिया था। पौराणिक सम्प्रदायों ने नए २ देवता सृज कर जनता को टुकड़ों में बांट दिया था। मूर्ति पूजा ने—मंदिरों के पुजारियों ने मूर्ति की पवित्रता कायम रखने के लिए पवित्र अपवित्र छूत अछूत की भावनाएं पैदा कर सामाजिक संगठन में विघटन के बीज बो दिए थे। 'पौराणिक, बौद्ध-जैनों को, 'न गच्छेत् जैन मंदिरम्' कहकर बहिष्कृत करते थे—बौद्ध—पौराणिक पुजारियों को धुत्कारते थे। राजा भिक्षु का बाना पहनने लगे—ब्राह्मण राजा बनने लगे—परमात्मा के पुजारी पत्थर के पुजारी बन गये। वर्णाश्रम व्यवस्था जटिल हो गई। मंदिरों की सम्पत्ति ने, बिना परिश्रम के कमाई दौलत ने, आलस्य व्यभिचार अनाचार को जन्म देकर जाति के नेताओं में भोगवाद अकर्मण्यवाद को पैदा कर दिया। न बौद्ध श्रमणों को पढ़ने की आवश्यकता थी न ब्राह्मणों को यज्ञयाग करने की ज़रूरत थी। मंदिरों मठों की मूर्तियों के चारों ओर धन स्वयं एकत्र हो रहा था। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये, जाति के नेता जातीय संगठन को मटियामेट कर रहे थे।

हाय ! क्यों पत्थर की पूजा कर सत्यानाश को प्राप्त हुए ? क्यों परमेश्वर की भक्ति न की जो म्लेच्छों के दांत तोड़ डालते। और अपना विजय करते। देखो ! जितनी मूर्तियां हैं उतनी शूरवीरों की पूजा करते तो भी कितनी रक्षा होती। पुजारियों ने इन पाषाणों की इतनी भक्ति की परन्तु मूर्ति एक भी उन शत्रुओं के शिर पर उड़के न लगी जो किसी एक शूरवीर पुरुष की मूर्ति के सदृश सेवा करते तो वह अपने सेवकों को यथा शक्ति बचाता और उन शत्रुओं को मारता। जब संवत् १९१४ के वर्ष में तोपों के मारे मंदिर

पौराणिक सम्प्रदायवाद और बौद्ध अहिंसावाद ने राजा प्रजा दोनों को विज्ञान कर्म शिल्प और कृषि के प्रति उदासीन कर दिया। जो लोग इन कामों को करते उन्हें घृणित समझा जाने लगा। विदेशों से आने वाले आक्रान्ताओं को शक्ति बल और उदारता द्वारा अपनाने के स्थान पर—उनसे दूर रह कर—अपनी पृथक् सत्ता कायम करने के लिये रूढ़ियों की चार दीवारी खड़ी की। आक्रमण करने की—बाहर फैलने की नीति के स्थान पर घर में रहने—कूप मंडूक की नीति को स्वीकार किया। परिणाम यह हुआ कि मध्य

मूर्तियां अंग्रेजों ने उड़ा दी थीं तब मूर्ति कहां गई थीं! प्रत्युत बाघेर लोगों ने जितनी वीरता की और लड़े शत्रुओं को मारा परन्तु मूर्ति एक मक्खी की टांग भी न तोड़ सकी। जो श्री कृष्ण के सदृश कोई होता तो इनके धुर्रे उड़ा देता और ये भागते फिरते। भला यह तो कहो कि जिसका रक्षक मार खाय उसके सरणागत क्यों न पीटे जांय। पृ० ४५८ दयानन्द

बौद्ध—जिसको अशोक और सम्प्रति महाराज ने माना उससे जैन बाहर किसी तरह नहीं निकल सकते जो जैनों में विद्वान् हैं, वे सब जानते हैं कि 'बुद्ध' और 'जिन' तथा बौद्ध और जैन पर्यायवाची हैं इसमें कुछ संदेह नहीं। पृ० ५७१ दयानन्द सत्यार्थप्रकाश

ये जैन लोग राज्य के बड़े खुशामदी भूठे और डर पुकने हैं क्या भूठी बात भी राजा की मान लेनी चाहिए? पृ० ६६६,

परन्तु जैन लोग बनिये हैं इस लिये राजा से डर कर—यह (राजा की आज्ञा माननी चाहिए) बात लिख दी होगी।

पृ० ६२१ पृ० दयानन्द

जब 'महमूद गजनवी' आकर लड़ा तब यह चमत्कार हुआ कि उसका (सोमनाथ) मंदिर तोड़ा गया और पुजारी भक्तों की दुर्दशा हो गई और

एशिया और अफगानिस्तान के मैदानों में घर की तलाश में विचरने वाली जातियों की दृष्टि–भारत की सम्पत्ति पर पड़ी। रूढ़ियों के कारण निर्जीव सामाजिक संगठन की कमजोरियां भी उनकी आंखों के सामने जीवित रूप में आ गई।

लाखों फौज दश सहस्र फौज से भाग गई। जो पोप पुजारी पूजा—करते थे "हे महादेव—हमारी रक्षा कर" और वे अपने चेले राजाओं को समझाते थे कि आप निश्चिन्त रहिये। हमारा देवता प्रसिद्ध होता है "हनुमान्—दुर्गा भरव ने स्वप्न दिया है—सब काम कर देंगे" वे विचारे भोले राजा और क्षत्रिय पोपों के बहकाने से विश्वास में रहे।—जब फौज ने आकर घेर लिया तब दुर्दशा से भागे कितने ही पोप पुजारी और उनके चेले पकड़े गये—पुजारियों ने यह भी हाथ जोड़ कहा कि तीन करोड़ रुपया ले लो मंदर और मूर्ति मत तोड़ो। मुसलमानों ने कहा हम बुतपरस्त नहीं किन्तु बुतशिकन हैं अर्थात् बुतों के तोड़ने वाले "मूर्ति भंजक हैं" जाके झट मंदर तोड़ दिया। पृ० ४५८ पृ० दयानन्द

मूर्ति पूजा जैनियों (बौद्धों) ने मूर्खता से चलाई। शाक्त आदि ने जैनियों के अनुकरण में बनाई। पृ० ४४०

पाषाणादि मूर्तियों के विश्वास से बहुत सी हानि (पाषाणादि मूर्ति पूजकों का पराजय) हो गई। पृ० ४१३ पृ०

ऋषभदेव—से लेके महावीर पर्यन्त अपने तीर्थंकरों की बड़ी २ मूर्तियां बना कर पूजा करने लगे अर्थात् पाषाणादि मूर्ति पूजा की जड़ जैनियों से प्रचलित हुई। पृ० ४१६ पृ० दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश

जैनियों के मंदिर शंकराचार्य और सुधन्वा राजा ने नहीं तुड़वाए थे क्योंकि उनमें वेदादि की पाठशाला करने की इच्छा थी।

पृ० ४१८ दयानन्द स०

गंगा यमुना अन्तर्वेदि के रहने वालों ने पंजाब की इस राजनैतिक और धार्मिक सामाजिक पराधीनता के कारण इसे वाहीक–कहना शुरू किया। पंजाबियों को अपवित्र और अपने आपको पवित्र मानने लगे। ठीक भी है, यथार्थ में राजनैतिक पराधीनता से बढ़कर पाप और निर्बलता नहीं है! इसी ने पंजाब में क्षत्रियों को खत्री, ब्राह्मणों को बामन बना दिया।

चन्दबरदाई का वीर सन्देश—

इस समय पंजाब की साहित्यिक भाषा का क्या रूप था। इस विषय की झलक हमें हिन्दी के प्रथम कवि चन्दबरदाई की निम्नलिखित कविता से मिल सकती है।

चन्दबरदाई का जन्म ११४६ ई० में लाहौर में हुआ था। उसके पूर्व पुरुष चौहानों के पुरोहित थे। उसके पिता का नाम रावबेल था। उसने महाराज पृथ्वीराज रासो के नाम से वीर काव्य लिखा था। एक प्रचलित दन्त कथा के अनुसार चन्दबरदाई ने निम्नलिखित दोहा कह कर स्वामिभक्ति प्रकट कर शहाबुद्दीन को मृत्यु के घाट उतारा था।

चौहान राजसंगरधनी, मत चूकै मोटेतवै।
चारबंश चौबीस गज़, अंगुल अष्ट प्रमान।
एते पर सुलतान है, मत चूके चौहान'।

इसके बाद दोनों एक दूसरे को कटारी मार कर आत्मसन्मान पूर्वक इस संसार से कूच कर गये थे। चन्दबरदाई ने निम्न कविता में पंजाबियों के सामने वीरता का आदर्श रखा।

भुज प्रचंड चव चार मुख रत्त अन्न तन तुंग।
अनलकुण्ड उपज्यौ अनल, चाहुवान चतुरंग॥

आई सकति सिंघ आरोही, द्वादस भुजा सु आयुध सोही।
खेटक खग्ग वरदहपासं घंटा बाण क्रती सिर आसं।

खप्पर सकति शूल मद पात्रं दिखे रूप क्रमि क्रमि सैत्रं ॥
आसा पूरि कहै रिषिराज चाहुवान मंड्यो कृत-काजं ।
चल्लिय सकति सहाय अनल्लं चल्ले सूर सब्ब कसि बल्लं ॥
सब आए चढ़ि रक्षसठानं मंढयो जुद्ध उभै असमानं ।
वाहैं आवध सकती सारं धर आवहिं पडै धर भारं ॥
सद्धे धूमर केत सकत्तिय जंभ केतं चहु आन सुहत्तिय ।
सत्य सुरष्षस दानव सद्धे गये रसातल अवरि अद्धे ॥
देवी आई अचल्लह पासं जमी तत्थ प्रसन्नी तासं ॥
आसापूर कहै मो नामं पुज्जै पुत्र इक पर तामं ।
कुल गोत्र जमो थप्पै नामं अप्पौरिधि अचल्लहतामं ॥
उपज्यौ सुनर अनुपम रूपं नह आकृत्ति अवर नर दूपं ।
वरण अमृत सुउन्नत थजिष्टं वरन भुरक्कि वद्ध जनु पिष्टं ॥
स्याम समश्रु कपोल विसालं उन्नत कन्ध छत्रि वीसालं ।
लाल भाल सोम उर सुब्भं प्रथु प्राकोष्टं दिग्ध कर दूभं ॥

सिंह पर सवार, उत्तम आयुधों से शोभायमान, बारह भुजा वाली देवी आई। खेटक तलवार, अभयदान देने के लिये अस्त्र रहित, फलरी, घंटा, बाण, धनुष, दैत्यों का मस्तक, खप्पर—दैत्य दानवों के रुधिर पीने का पात्र, शक्ति, त्रिशूल और मद्य पीने के पात्र से उसके हाथ शोभमान थे। और उसने क्रम से यज्ञ से उत्पन्न चारों क्षत्रियों को देखा।

फिर आशापूरा देवी से वसिष्ठ जी ने कहा कि चाहुआन को कृतकार्य कीजिये। फिर शक्ति अग्न्युत्पन्न 'चाहुवान' इत्यादिक चारों क्षत्रियों की सहायता करने के लिये चली, और सब शूरवीर भी, भाला तलवार इत्यादि से सुसज्जित होकर चले। फिर क्षत्रिय चढ़ाई कर राक्षसों के स्थान पर पहुँचे और दोनों दलों ने परस्पर अद्वितीय युद्ध किया।

गंगा यमुना अन्तर्वेदि के रहने वालों ने पंजाब की इस राजनैतिक और धार्मिक सामाजिक पराधीनता के कारण इसे वाहीक-कहना शुरू किया। पंजाबियों को अपवित्र और अपने आपको पवित्र मानने लगे। ठीक भी है, यथार्थ में राजनैतिक पराधीनता से बढ़कर पाप और निर्बलता नहीं है! इसी ने पंजाब में क्षत्रियों को खत्री, ब्राह्मणों को बामन बना दिया।

चन्दवरदाई का वीर सन्देश—

इस समय पंजाब की साहित्यिक भाषा का क्या रूप था। इस विषय की झलक हमें हिन्दी के प्रथम कवि चन्दवरदाई की निम्नलिखित कविता से मिल सकती है।

चन्दवरदाई का जन्म ११४६ ई० में लाहौर में हुआ था। उसके पूर्व पुरुष चौहानों के पुरोहित थे। उसके पिता का नाम राववेल था। उसने महाराज पृथ्वीराज रासो के नाम से वीर काव्य लिखा-था। एक प्रचलित दन्त कथा के अनुसार चन्दवरदाई ने निम्नलिखित दोहा कह कर स्वामिभक्ति प्रकट कर शहाबुद्दीन को मृत्यु के घाट उतारा था।

चौहान राजसंगरधनी, मत चूकै मोटेतवै।
चारवंश चौबीस गज़, अंगुल अष्ट प्रमान।
एते पर सुलतान है, मत चूके चौहान'।

इसके बाद दोनों एक दूसरे को कटारी मार कर आत्मसम्मान पूर्वक इस संसार से कूच कर गये थे। चन्दवरदाई ने निम्न कविता में पंजाबियों के सामने वीरता का आदर्श रखा।

भुज प्रचंड चव चार मुख रत्त ब्रन्न तन तुंग।
अनलकुण्ड उपज्यौ अनल, चाहुवान चतुरंग॥
आई सकति सिंघ आरोही, द्वादस भुजा सु आयुध सोही।
खेटक खग्गा वरदहपासं घंटा वाण क्रती सिर आसं।

७०० ई० से १५२६ ई० तक विशेषतया १००१ ई० से बाबर को पंजाब में निमन्त्रित करने की अवधि में, पंजाब में अनेक विदेशी राजशक्तियों ने शासन किया। परन्तु कोई भी राजशक्ति स्थिर रूप से अपनी सत्ता कायम न कर सकी। समय समय पर अफगानिस्तान की ओर से विविध गिरोह पंजाब पर आक्रमण करते रहे। यहां की जनता ने राजशक्ति का सामाजिक बहिष्कार कर नए विदेशियों का मुकाबला करने में, राजशक्ति को सहयोग नहीं दिया। विदेशी राजशक्तियों ने भी यहां की जनता से निरपेक्ष होकर स्वतन्त्र रूप से राज करना चाहा। एक दूसरे को काफिर और म्लेच्छ समझते थे। इस दीर्घ काल में किसी भी विदेशी राजा ने किसी पंजाबी को लाहौर अथवा पंजाब के किसी प्रदेश का शासक नहीं बनाया। राजशक्ति और जनता में पंजाबी भेदभाव की खाई गहरी होती गई। राजशक्ति इस्लाम के नाम पर अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिये हिन्दुओं को नाना प्रलोभनों से अपनी ओर खींचती और जनता पर भय आतंक और अत्याचार करने में सकुचाती न थी। राजशक्ति और जनता की इस भेदभाव की गहराई से फ़ायदा उठा कर मुग़लों ने पंजाब पर आक्रमण किया। उन्हें लोदी राजवंश को पराजित करने में सफलता भी मिली। राजशक्ति द्वारा पीड़ित जनता को धैर्य ढाढ़स और सहारा देने वाली शक्ति की आवश्यकता थी। जनता को निर्जीव रूढ़ियों से मुक्त करने की आवश्यकता थी। पंजाब में यह कार्य दस गुरुओं के नेतृत्व में सफल हुआ। इन गुरुओं ने बादशाह के मुकाबले में 'सच्चे पादशाह' की अलख जगा कर राजशक्ति के अन्यायों के विरोध में प्रतिवाद की आवाज़ उठाई। जनता में राजशक्ति के प्रति आत्म सन्मान पूर्वक विरोध करने की भावना

जागृत की। इसका श्रीगणेश गुरुनानकदेव ने किया।

गुरु नानक देव-सन् १४६९में शरकपुर तहसील के तलवंडी गांव में, बादशाह बहलोल लोदी के समय वेदी क्षत्रियों के कुल में, महता कालू क्षत्री के घर में त्रिपता की कोख से नानकदेव का जन्म हुआ। तलवंडी गांव राय बुलर भट्टी फिर्के के आधीन था। रावी चनाब के बीच के इस प्रदेश में भट्टी फिर्के के लोग रहते थे। यह मुसलमान बन चुके थे। नानकदेव का जिस स्थान पर जन्म हुआ था उसे ननकाना साहब कहते हैं। गुरु नानक देव* की जन्म साखी में उनके जीवन के सम्बन्ध में अनेक चमत्कारी बातें लिखी हैं। बचपन से ही इनकी वृत्ति वैराग्य की ओर थी। पंडित गोपाल से हिन्दी और संस्कृत पढ़ी। इन्होंने कुछ समय तक अपने बहनोई जयराम के कहने पर नवाब दौलतखां लोदी के मोदी खाने में नौकरी भी की थी। परन्तु इनका इस काम में दिल न लगा और ३२ साल की आयु में घर से विरक्त हो गये। देश देशान्तर की यात्रा भी की। बंगाल में भ्रमण करते हुए गुरु गोरखनाथ से भी मिले। कहा जाता है कि मक्का की भी इन्होंने यात्रा की। वहां काबा की ओर पैर करके लेटने पर जब आक्षेप किया तो इन्होंने कहा कि उधर पैर कर दो जहां परमात्मा नहीं है। हरद्वार में भ्रमण करते हुए सूर्यतर्पण श्राद्धतर्पण करने वालों को समझाने के लिये अपने खेतों की ओर पानी का अर्पण करने लगे। लोगों के पूछने पर कहा कि यदि सूर्य तर्पण और श्राद्ध तर्पण

---

*यह सच है कि जिस समय नानक जी पंजाब में हुए थे उस समय पंजाब संस्कृत विद्या से सर्वथा रहित, मुसलमानों से पीड़ित था। उस समय उन्होंने कुछ लोगों को बचाया। पृ० ५०४ दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश

से पानी पितरों को पहुँच सकता है तो—यहां से मेरे खेतों में भी पानी जा सकता है।* देश देशान्तर की यात्रा के बाद रावी नदी के किनारे डेरा लगाया। यहां जनता उनकी गुरु रूप में पूजा करने लगी। इनके लक्ष्मीचन्द और श्रीचन्द नामक दो पुत्र भी थे। श्रीचन्द उदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक बने। इनके अनुयाइयों को 'नानक पुत्र' भी कहते हैं। जालंधर में ज़िले में करतारपुर शहर भी इन्होंने बसाया। १५३८ ई० में ७१ साल की आयु में लाहौर से उत्तर की ओर करतारपुर में इनका देहान्त हो गया। वहां इनकी समाधि बनाई गई परन्तु वह समाधि समयान्तर में रावी प्रवाह में बह गई।

मृत्यु का समय समीप आया जान इन्होंने लहना नाम के भक्त शिष्य को अंगद नाम से अपना उत्तराधिकारी बनाया। अपने किसी पुत्र को अपना उत्तरधिकारी नहीं बनाया। नानक देव जी के साथी बाला और मर्दाना नाम के दो भक्त रहते थे। बाला हिन्दू था और मर्दाना मुसलमान। हिन्दू मुसलमान दोनों गुरु नानकदेव को अपना गुरु मानते थे। मुसलमान इन्हें बाबा नानक कहते थे और हिन्दू गुरु नानक देव। गुरु नानक देव हिन्दू मुसलमानों को निर्जीव रूढ़ियों से बचा कर एक दूसरे के समीप लाना चाहते थे। कुरान पुरान दोनों की युक्ति विरुद्ध बातों का खंडन करने में संकोच न करते थे। जनता में भ्रातृ भाव एकेश्वरवाद और आध्यात्मिक साम्यवाद (उत्तम नीच न कोई) का प्रचार करने और शक्तिशाली व्यक्तियों को भी खरी बात कहने में संकोच न करते थे।

---

*विरोधियों के गढ़ में इस प्रकार का व्यवहार आत्म ज्ञानी असाधारण व्यक्ति ही कर सकता है!

एक बार नवाब दौलतखां लोदी ने गुरु नानकदेव को कहा कि तुम मूर्ति पूजा का खंडन करते हो, और एक ईश्वर को मानते हो। इस आधार पर इस्लाम स्वीकार कर लेने को कहा और अपने साथ नमाज पढ़ने मस्जिद ले गया। इस खबर से हिन्दू घबरा गये—नानकदेव मसजिद में गये परन्तु वहां जाकर नमाज़ नहीं पढ़ी। नवाब ने पूछा कि तुमने नमाज़ क्यों नहीं पढ़ी, नानकदेव ने कहा नमाज क्या पढ़ता—तुम तो ऊपर से नमाज पढ़ रहे थे और दिल में कन्धार के घोड़े खरीदने की सोच रहे थे। मसजिद का इमाम नमाज क्या पढ़ रहा था अपने बेटे की बीमारी और बछिया की चिन्ता में था कि कहीं वह कुए में न गिर जाय। दोनों नानक के ठीक उत्तर से निरुत्तर हो गये।

बादशाह बाबर जब पंजाब में आया—तो एमनाबाद में मर्दाना और साथियों के साथ नानकदेव बाबर को मिले। बाबर—बाबा नानक से मिल कर खुश हुए। कुछ भेंट देनी चाही। नानक ने कहा कि मेरे जीवन का उद्देश्य राजाओं के महाराजा परमात्मा को प्रसन्न करना है। इस लिये मुझे राजा द्वारा दी भेंटों की आवश्यकता नहीं। बाबर के लिये योग्य हकीमों ने विशेष दवाई बनाई, बाबर ने उसमें से कुछ हिस्सा गुरु नानकदेव को भी देना चाहा परन्तु नानक ने यह कहा कि जो व्यक्ति परमात्मा की भक्ति के रस में लवलीन है उसे इन विशेष औषधियों की आवश्यकता नहीं। वह भी स्वीकार नहीं की और कहा:—

कहे नानक सुन बाबर मीर।
तुझते मांगे सु अहमक फकीर ॥

बादशाह इब्राहीम लोदी ने बाबा नानक को ७ महीने तक कैद में रखा। क्यों कि इब्राहीम लोदी के पास रिपोर्ट पहुँची कि गुरु

नानकदेव पुरान कुरान दोनों की निन्दा करता है विशेष रूप से मुलतान में होने वाले गुरछत्तर मेले पर। कैदखाने में नानकदेव को चक्की में आटा पीसना पड़ा।

जब बाबर ने इब्राहीम लोदी को पानीपत के मैदान में हराया तब उसने बाबा नानक को रिहा किया। भारत तथा विदेशों की यात्रा करके गुरु नानकदेव ने पंजाबियों की देश देशान्तरों जाने की प्रवृत्ति को जगाया। सदियों की राजनैतिक पराधीनता तथा कूप मंडूकता की भावना के कारण, जयपाल की पराजय के बाद पंजाबियों ने देश देशान्तरों में जाना छोड़ दिया था। नानकदेव ने इस प्रवृत्ति को बदल दिया। अफगानिस्तान, फारस, मक्का—टर्की की यात्रा की। मुल्ला, पुजारी, बादशाह—सब से मत भेद प्रकट करने में संकोच नहीं किया और विचार स्वातंत्र्य को जगाया।

नानकदेव ने जनता में आत्माभिमान पैदा करने, तथा राजनैतिक गुलामी के कारण पैदा हुई भाषा सम्बन्धी पराधीनता को दूर करने के लिये अपने उपदेश पंजाबी भाषा में रचे और जनता को अपनी भाषा अपनाने के लिये इस प्रकार प्रेरणा की:—

"खत्रीआतु धरमु छोडिया मलेच्छ भाखिआ गही।
स्रसटि सम इक वरन होई धर्म की गति रही॥"

महला १। घरू० ३.

खत्री ने मलेच्छ भाषा अपना कर, धर्म छोड़ा।

तात्कालिक राज शक्ति के अत्याचारों की निंदा इस प्रकार की:—

कलि काती राजे कसाई धर्मु पंख करि उडरिआ।
कूड़ अमावस सच चन्द्रमा दीसे नाहीं कह चढिआ॥

हडे भालि विकुली होई। अंधेरे काहु न कोई।
विचिह उमैं करि दुखु कोई, कहु नानक किनि विधि गति होई॥
खुरासान खसमाना कीआ, हिन्दुस्तान डराइआ।
आपै दोसु न देई करता, जमु करि मुगलु चढाइआ॥
एती मार पई करलाणे तैं की दरदु न आइआ।
जैसा करे सु तैसा पावै, आपि बीजि आपे ही खावे॥
सो ब्राह्मण जो ब्रह्म विचारै आपि तरे सगले कुल तारे।
दान सबेहु सोई दिलि धोवै, मुसलमानु सोई मल खोवै॥

गुरु अंगदः—को उत्तराधिकारी बना कर नानक ने अपने अनुयाइयों में कर्मण्यता समता, उत्साह तथा सेवा भाव पैदा किया। गुरु अंगद बान बट कर निर्वाह करता था। अंगद १५०४ ई० में गोन्दवाल के समीप व्यास नदी के किनारे—खदूर गांव में—तिरहन छत्रियों में पैदा हुए थे। पहले वह ज्वालामुखी देवी पूजा के लिये जाया करते थे, परन्तु नानक का शिष्य बनने के बाद वहां जाना छोड़ दिया।

अंगद ने स्वयं अनुभूत तथा दूसरों से चुने हुए गुरु नानकदेव के संस्मरण तथा उनके वचन इकट्ठे किये और लिखे—

अंगद के दो बेटे थे। ये संसारी ही रहे। इन्होंने डेरा बाबा नानक से खदूर में अपने डेरे लगाए। वह पैर में दर्द होने से मर गए, इस समय १५५२ ई० में अकबर को शासन करते हुए—१३वां साल था।

एक बार बादशाह हुमायूं शेरशाह से हार कर गुरु अंगद के पास सहायतार्थ आया। गुरु उस समय ध्यान में थे अतः कुछ न बोले। इससे हुमायूं को गुस्सा आया वह तलवार निकाल ही

रहा था कि गुरु की आंख खुल गई और कहा — शाह के सामने निकाली होती तो यहां क्यों आता ! एक बार चला कर—इसकी धार को कुन्द मत कर। होगई

हुमायूं लज्जित होकर क्षमा प्रार्थी हुआ—गुरु अंगद ने कहा जा रणांगण में इसे चमका, तू अपने मनोरथ में सफल होगा। इनके समय भी तात्कालिक राजशक्ति से कोई संघर्ष नहीं हुआ।

गुरु अमरदास—गुरु बनने की परख गुरु भक्ति और आचार बल था। अमरदास गुरु अंगद का छाया सेवी—भक्त था।

गुरु अमरदास का जन्म १५०६ ई० में—अमृतसर ज़िले में वसारकी गांव में भल्ला छत्रियों के घर में हुआ था। वह भी साधारण कुल तथा स्थिति का था और उसका धंधा-गधे घोड़ों पर—सामान को इधर से उधर ले जाना था। उसे सन्तों की संगति का शौक था—खदूर में आकर उसने गुरु अंगद को अपना आध्यात्मिक गुरु बनाया। उसने गुरु की सेवा में अपने को लगा दिया। उसने गुरु के गोदाम भंडार से कभी कुछ नहीं लिया। नमक तेल के व्यापार से अपनी जीविका करता रहा। खदूर से दो कोस की दूरी पर गोन्दवाल से गुरु के स्नान के लिये हर रात को ताजा पानी लाता था—गुरु की तरफ़ पीठ न करता था उलटा आता था। एक अंधेरी रात आंधी बरसात में गढ़े में गिर गया। पड़ोसी जुलाहे की औरत ने कहा यह 'अमरू' ही होगा। अगले दिन यह घटना सुन कर गुरु ने खुश होकर उसे अपना उत्तराधिकारी बनाया। अमरदास को ५ पैसे और नारियल दिये और नमस्कार किया।

गुरु अंगद के मरने पर गोंदवाल में गद्दी बनाई।—मिलनसार स्वभाव का था। कविता भी अच्छी करता था—अकबर भी उसकी

हड्डे भालि जिन्दा परन्तु श्रोता बन कर कीर्तन सुनता था। विचिह नां बन्द कर—विधवा विवाह जारी किया।

भक्तों की भेंटों से गोंदवाल में ८४ सीढ़ियों वाली बौली बनाई। सिक्ख मानते हैं कि इन पौड़ियों पर जपजी का पाठ करने वाला पाप से मुक्त होता है। हर साल मेला लगता है। अमरदास ने २२ मंजियाँ बना कर २२ शिष्य नानक की शिक्षाओं के प्रचार के लिये कई स्थानों पर भेजे। गुरु अमरदास के मोहन मोहनी नाम के दो संतान थीं। मोहनी को भैनी भी कहते हैं। बौली बनाते समय कई दर्शक मज़दूर आते थे। उनमें एक रामदास नाम का युवक था। गुरु ने नाई को बुला कर भैनी के लिये वर ढूँढने को कहा, नाई ने पूछा वर कैसा हो। इतने में रामदास चने बेचता हुआ सामने से निकला, नाई ने उधर इशारा करते हुए कहा इतना बड़ा हो इतना। गुरु जी बोले बस हो गया जो होना था। दोनों का ब्याह करा दिया। अमरदास जी को भैनी से प्यार था—उसने अपने पुत्र तथा अन्य किसी को गद्दी न देकर रामदास को अपना उत्तराधिकारी बनाया। १५७७ ई० १४ मई को अमरदास मर गए—उनकी समाधि रावी बहा कर ले गई।

गुरु रामदास सोढ़ी क्षत्री थे। लाहौर के रहने वाले थे। गरीबी के कारण आजीविका के लिये गोंदवाल आए। शान्त मिलनसार स्वभाव था। कविता लेखन का कार्य भी करते थे। आदि ग्रन्थ में उनकी रचना भी शामिल की गई थी।

लाहौर में अकबर से इनकी भेंट हुई, उसने प्रसन्न होकर चकर रामदास का टुकड़ा इन्हें दिया। यही गुरु का चक से अमृतसर

कहलाया। रामदास ने इसका नाम अमृतसर रखा। एक बार अकबर ने लाहौर में सैनिक डेरा लगाया। वस्तुएँ मँहगी होगई शिविर उठने पर बेकारी से जनता हैरान हुई। गुरु ने अकबर को कहकर प्रजा को भूमि कर की माफी दिलाई। गुरु के इस काम से इस इलाके के जाट जमींदार उसके भक्त बन गये। केन्द्रिय स्थान अमृतसर बना कर सिक्खों को संगठित रूप में इकट्ठे होने का मौका दिया। अमृतसर में हर मन्दिर बनवाया।

इन्होंने शान्त स्वभाव होने से गुरु नानक की शिक्षाओं द्वारा भ्रातृ-भाव फैलाया और सिक्ख राष्ट्रीय भावना से अमृतसर आने लगे। रामदास के तीन बेटे—महादेव फकीर, पृथ्वीराज गृहस्थ, और अर्जुनमल थे। इस समय से गुरुगद्दी जन्मानुगत हो गई। इस परिवर्तन से सिक्ख शक्ति को राजशक्ति बनने का अनुकूल मौका मिला। अब सिक्ख गुरु केवल आध्यात्मिक ही नहीं अपितु सांसारिक शासक भी बनने लगे। १५८१ ई० में रामदास मर गये। व्यास नदी पर उनका स्मारक स्थान बनाया गया।

गुरु अर्जुनदेव—

गुरु अमरदास ने अपनी लड़की भैनी का रामदास से ब्याह कराया और कहा कि तुम्हारे वंश में गुरु गद्दी रहेगी*। रामदास के

---

* एक दिन बीबी भैनी अपने पिता अमरदास को स्नान करा रही थी। स्नान चौकी का पाया अचानक टूट गया। भैनी ने तत्काल अपना पांव चौकी के नीचे दे दिया। पाये का कील भैनी के लगा। लहू बहने लगा पर उसने उफ तक न की। स्नान के बाद उन्हें इस बात का पता लगा तो उन्होंने प्रसन्न होकर कहा बीबी वर मांग। बीबी बोली पिता जी आप प्रसन्न हैं तो कृपा करें मेरे पति को अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी बनाएँ।

मरने पर १५८१ में गुरु अर्जुनमल गद्दी पर बैठे। उन्होंने अमृतसर अपना मुख्य स्थान (राजधानी) बनाया। फकीराना वेश छोड़ कर शाही राजसी ठाट-बाट से रहने लगे। हाथी, घोड़ों के साथ२ दरबार लगाने लगे। सन्तोषी गद्दी को शाही गद्दी बना दिया, वह शक्तिशाली महत्वा कांक्षी संयोजक था, अपने आध्यात्मिक धार्मिक विचारों को फैलाने के लिये सिक्खों का प्रयोग किया। पहले उसने सोचा कि क्या गुरु नानक की शिक्षाएँ उस समय की विविध सोसायटियों की आवश्यकताओं को पूरी करती हैं। सारे शिष्यों को एक नियन्त्रण में रखने के लिये नियम संग्रह किये। आदि ग्रन्थ को तैयार कराया। इस ग्रन्थ में नानक की सूक्तियां, कविताएं, पहले गुरुओं की कविताएं, पुराने और तात्कालिक प्रसिद्ध सन्तों की वाणियां इकट्ठी कीं। जनता के हृदय में इनकी स्मृति ताज़ी थी। यह ग्रन्थ हरेक गुरु अपने उत्तराधिकारी को देता था। इसे पवित्र तथा सबके सन्मान का पात्र मानते थे, इसकी शिक्षाएँ सब सिक्खों को माननीय थीं—इसकी एक कापी हरि मन्दिर में रखी जाती थी। जिसका हर रोज़ पाठ होता था। इसे अमृत-सर में स्नान करने के लिये आने वाले भक्त नित्य सुनते थे। साथ ही गवैये परमात्मा की स्तुति के गीत गाते थे। बाबा नानक की जीवन घटनाएं विशेष उत्साह से गाई जाती थीं। इससे श्रोता शिष्यों के हृदयों में नई स्फूर्ति नई भावना संचारित होती थी,

---

और यह गुरुगद्दी मेरे वंश में ही रहे। बेटी की बात सुनकर गुरु जी ने कहा बेटी तूने बहती नदी में बांध लगा दिया है। पर अच्छा अब परमात्मा की ही यही इच्छा प्रतीत होती है परन्तु यह कह देता हूं कि तेरी सन्तान इस गद्दी से दुःख ज़रूर पावेगी।

उन्होंने अनेक प्रदेशों में अपने अनुयाइयों से कर वसूल करने के लिये प्रतिनिधि नियत किये । यह नज़राने वार्षिक संगति में गुरु को भेंट किये जाते थे। इस प्रकार धीरे २ उन्हें शासन प्रणाली की शिक्षा मिलने लगी। अपने राष्ट्र को समृद्ध करने के लिये अर्जुनदेव ने अपने शिष्यों को विदेशों में व्यापार :—विशेषतः तुर्कस्तान के घोड़ों के व्यापार के लिये भेजा।

घोड़ों के व्यापार से सिक्खों में निर्भयता वीरता तथा स्फूर्ति की भावनाएँ पैदा हो गईं । अमृतसर के बड़े तालाब को पूरा किया। इसी जगह पर पीछे कौलसर नाम का तालाब बनाया गया और तरनतारन नाम का तालाब भी बनाया। पंजाब के देहाती किसानों के लिये तालाब विशेष रूप से आकर्षक थे।

चन्दूशाह अपनी कन्या का विवाह इनके पुत्र हरगोविन्द से करना चाहता था, परन्तु उसने इन्हें फकीर तथा नालीव चौबारे से मिलाया। फिर लाख रुपये भी भेंट करके शान्त करना चाहा। परन्तु गुरु ने कहा मेरे शब्द पत्थर की लकीर हैं। तुम दहेज में सारे संसार की दौलत भी दो तो भी मेरा लड़का तुम्हारी कन्या से विवाह नहीं करेगा। चन्दूशाह ने जहांगीर के कान भरे कि गुरु अर्जुन ने ही खुसरो के लिये विजय प्रार्थना की थी जब कि वह पंजाब में था। बादशाह ने इस अपराध पर गुरु अर्जुन को कैदखाने में डाल दिया । हर्जाने की भारी रकम भी गुरु ने नहीं दी। उस पर ज़ुलम किये । १६०३ ई० में लाहौर में रावी में बलिदान हुए । २४ साल तक गुरु गद्दी पर कार्य किया । उनकी समाधि किले के पास है, हर साल मेला लगता है। चन्दूशाह ने सम्राट् को सलाह दी कि वह उनको गौ की खाल में बन्द करें।

खाल सामने लाई गई उन्होंने रावी स्नान की इच्छा की। पहरे-दारों के साथ भेजा गया, रावी में छलांग मारी फिर नहीं लौटे।

गुरु अर्जुन के समय गुरदास नाम का विद्वान् लेखक हुआ है। इसने चालीस अध्यायों वाली ज्ञान रत्नावली पुस्तक लिखी। इसमें नानक के चरित्र का चित्रण किया गया। गुरु अर्जुन ने सिक्खों इस को पुस्तक के पढ़ने का आदेश दिया। इस पुस्तक का लेखक गुरदास अर्जुन का शिष्य था। उसने गुरु नानक को संसार के इतिहास में विशेष उच्च स्थान दिया है और वह नानक को व्यास और महम्मद का उत्तराधिकारी मानता है और उन्हें परमात्मा की ओर से मनुष्य मात्र को दुःखों से छुड़ाने के लिये भेजा हुआ पवित्र भावना तथा उद्देश्य वाला मानता है।

गुरु अर्जुन की मृत्यु ने सिक्ख जाति के रुख को बदल दिया। इस घटना द्वारा सिक्खों और मुसलमानों में द्वेष तथा घृणा के भाव पैदा हो गये। सिक्ख लोग मुसलमानों से नफ़रत करने लगे, इन भावों ने सिक्खों के हृदयों में प्रतिहिंसा का भाव भी पैदा किया। गुरु नानकदेव दोनों को आध्यात्मिक सचाइयों द्वारा मिलाना चाहते थे परन्तु इस घटना ने दोनों धर्मों में खाई पैदा कर दी। इस समय तक पंजाब के इतिहास में शासकों का इतिहास पंजाब का इतिहास समझा जाता था; परन्तु इस घटना के बाद सिक्ख गुरु तथा उनके अनुयाइयों के आन्दोलन विशेष रूप से जनता के सामने आने लगे। अब सिक्ख गुरुओं के इतिहास को तात्कालिक पंजाबी जनता के नेताओं के आन्दोलन का इतिहास कहा जा सकता है।

गुरु हरगोविन्द—की आयु पिता की मृत्यु के समय ११ साल की थी। परन्तु इसके चाचा पृथिवीमल ने नाबालिग होने का फ़ायदा

उठा कर स्वयं गद्दी लेने की कोशिश की। सिक्खों ने इसे नहीं माना, क्योंकि उनका यह भी खयाल था कि चन्दूशाह ने अर्जुनमल के साथ जो बुरा सलूक किया था, उसमें इसका भी हाथ बताया जाता था—

गुरु हरगोविन्द में योद्धा, सन्त और खिलाड़ी तीनों का मेल था। नानक ने मांस खाना मना किया था परन्तु हरगोबिन्द शिकार खेलने में रुचि रखते थे। हरगोविन्द पहला गुरु था जिसने सिक्खों को सैनिक ढंग पर संगठित किया। उन्हें शस्त्रों से सजाया और तलवार बांधने की आज्ञा दी और लड़ाई के लिये तय्यार किया। यह सब काम मुख्यतया उसने चन्दूशाह से पिता की मृत्युका बदला लेने के लिये किये। जहांगीर जब लाहौर रहता था तो गुरुजी को एक दिन बादशाह से मुलाकात का मौका मिला उन्होंने उस समय बादशाह को कीमती हीरों के हार की भेंट की। बादशाह ने हरगोविन्द को और भी हीरे लाने को कहा—उसने कहा कि इसमें १०० मनके थे, परन्तु शेष चन्दूशाह के पास हैं मिलने पर देने का वचन देते हुए वह रो पड़ा। दुखदायी कहानी सुन कर जहांगीर ने चन्दूशाह को हरगोविन्द के सुपुर्द कर दिया। बाप का बदला लेने की छुट्टी दी।

हरगोविन्द चन्दूशाह को अमृतसर ले गया, वहां पैरों में रस्सी बांध कर उसे तपते हुए लोहे के तवे और गर्म रेत पर तड़पा तड़पा कर मरवा दिया।

गुरु हरगोविन्द शान शौकत और ठाठ-बाठ में अपने पिता से बढ़ चढ़ कर निकला। यह शान भक्तों और प्रतिनिधियों द्वारा एकत्र किये हुए कर द्वारा भी बढ़ी। उनके पास ८०० सुंदर सजे हुए घोड़े रहते थे। उन्होंने व्यास नदी के तट पर रुहीला

गांव के समीप हरगोविन्दपुर नाम का नगर बसाया। यहां दमदमे में आवश्यकता पड़ने पर आराम कर सकते थे।

उनकी युद्ध प्रिय प्रवृत्तियों ने उन्हें जहांगीर के यहां सेनापति के रूप में सम्मिलित होने की प्रेरणा की और वह शाही कैंप के साथ कश्मीर भी गए परन्तु वहां अपनी सेना में विद्रोहियों और मुगल सेनाओं के भर्ती करने और साल का शेष जुर्माना न देने के कारण बादशाह नाराज़ हो गया।

बादशाह ने उन्हें ग्वालियर के किले में १२ साल तक कैद रखा। अनेक प्रकार के कष्ट दिये, भक्त लोग वहां उन्हें पूजने जाते। क़िले की दीवारों के पास नमस्कार कर लौट आते और मुग़लों के अत्याचारों से पीड़ित जीते शहीदों के प्रति शोक प्रकट करते।

आखिर सुप्रसिद्ध फ़कीर मियाँ मीर के समझाने से बादशाह ने इन्हें रिहा कर दिया। अपनी रिहाई के साथ गुरु साहब ने और भी कितने ही अमीर उमराओं और राजाओं को रिहा करवाया। इस रिहाई को 'बन्दी छोर' कहते हैं।

१६२८ ई० में जहांगीर के मरने के बाद शाहजहां दिल्ली की गद्दी पर बैठा। हरगोविन्द शाहजहां के बड़े लड़के दाराशिकोह का प्रेमी तथा कृपापात्र था, शाहजहां भी अधिक समय लाहौर में रहता था। दाराशिकोह सात्विक स्वभाव, सरल, और सन्तों का भक्त था। दोनों दोस्त हो गये, दारा के कारण गुरु हरगोविन्द ज्यादा समय लाहौर में रहते थे। आनन्द यात्राओं में भी वह दारा के साथ कश्मीर जाते थे परन्तु निम्नलिखित घटनाओं के कारण बादशाही सेना के साथ उनका संघर्ष हो गया।

(१) गुरु का एक शिष्य एक तुर्कस्तानी घोड़ा अमृतसर ले जारहा था तो बादशाह के अफ़सरों ने वह जबर्दस्ती छीन कर

उसके मालिक को उसके दाम दे दिये--इस पर गुरु को गुस्सा आया। परन्तु वेबस चुपरहा, घोड़ा लंगड़ा होगया, लाहौर के काज़ी ने उसे बेच दिया, गुरु हरगोविन्द ने उसे १०००) में खरीदने का वादा किया, विना दाम दिये अमृतसर ले गये।

(२) गुरु के एक चेले ने बादशाह का वाज़ छीन लिया।

(३) काज़ी के ज़नानखाने की एक कौला नाम की स्त्री गुरु की भगतन हो गई। गुरु जी ने उसे अपने यहां आसरा दिया। इसी के नाम पर अमृतसर में कौलसर वनवाया, उसे हरगोविन्द से प्रेम हो गया था।

इन घटनाओं से उत्तेजित होकर मुसलमानी सरकार ने गुरु के विरुद्ध सशस्त्र सेना भेजी, उन्हें गिरफ़तार करने तथा अनुयाइयों को तितर-बितर करने की कोशिशें की।

मुसल्लिमखां लाहौर से ७००० सिपाहियों के साथ अमृतसर की ओर गया। बादशाही सेना हार गई, उनका नेता मारा गया। पराजित सेना लाहौर वापिस आई। पंजाब के इतिहास में यह पहली घटना थी जब गुरु के सिक्खों तथा मुसलमानों में आपस में मुठभेड़ हुई।

गुरु हरगोविन्द अपनी सीमित शक्ति तथा बादशाह की समृद्ध शक्ति को देख कर खदूर से १५ मील दूर सतलुज के दक्षिण में भटिण्डा के जंगलों में चले गये; जिससे मुकाबला न हो। इतने में दाराशिकोह ने अपने पिता को गुरु के पक्ष में कर लिया और मामला शान्त हो गया।

भटिंडा के जंगलों में गुरु ने अनेक व्यक्तियों को सिक्ख वनाया। इनमें एक वुड्ढा नाम का साहसी वीर भी था, सिक्ख इसे वावा वुड्ढा नाम से कहते थे। इसने वादशाह की लाहौर

स्थित अश्वशाला से दो बढ़िया घोड़े चुरा कर गुरु के सामने पेश किये। कमरबेग और लालबेग को लाहौर से भारी सेना के साथ इनका दमन करने के लिये भेजा। सेना ने सतलज पार की परन्तु रसद की कमी और यातायात की दिक्कतों के कारण शाही सेना मुसीबतों में पड़ कर सिक्ख सेना से हार गई। लाहौर वापिस आ गई। सेनापति मैदान में मारे गये, इन विजयों से गुरु को अपने पर भरोसा हो गया। उन्होंने सतलुज पार करतारपुर में अपना शिविर बनाया और मौके की प्रतीक्षा करने लगे।

गुरु हरगोविन्द का पैंडाखां नाम का एक पठान भाई बना हुआ था, उसका दिली दोस्त था। उदार व्यवहार था—गुरु जी के बड़े लड़के का बाज़ उड़कर उस पठान के घर पर गया। पैंडाखां ने गुरु बाज़ पर अपना अधिकार प्रकट किया, गुरु के डेरे में पैंडाखां को पीट कर अपमानित करके निकाल दिया। पैंडाखां दिल्ली बादशाह के पास गया और उसने शिकायत की। बादशाह ने उसे भारी सेना के साथ पंजाब में गुरु का मुकाबला करने के लिये भेजा।

दोनों में घमासान युद्ध हुआ, बिजय संतुलित रही। गुरु हरगोबिन्द ने बहादुरी से लड़ाई की। कई मुसलमानों को यम घाट पहुँचाया। पैंडाखां से दोदो हाथ किये और उसे मार दिया। इतने में एक वीर पठान गुरु पर लपका, गुरु ने चतुराई से उस का वार रोका और तलवार का वार कर, उसे कहा कि 'तुम तलवार चलाना नहीं जानते ऐसे चलाओ' उसे कहकर उसे भी मार गिराया। उसके मरते ही मुग़ल सेना भाग खड़ी हुई। हरगोविंद

अब केवल आध्यात्मिक गुरु नहीं अपितु तलवार के धनी भी समझे जाते थे। जीवन के अन्तिम दिनों में अपने दोस्त बाबा बुद्धा के साथ वह पहाड़ों में चले गये और करतारपुर रहने लगे। १६४५ई० में परलोक सिधारे और हरराय को अपना उत्तराधिकारी नियत किया। गुरु के मरने पर लोग दुःखी हुए। एक जाट और एक राजपूत उनकी जलती चिता पर बलिदान हो गये; और भी भक्त ऐसा करने लगे। परन्तु हरराय ने उनको मना किया। करतारपुर में उनकी समाधि बनाई गई।

हरगोविन्द के तीन स्त्रियां और ५ सन्तान थीं। गुरदत्ता= दामोदरी से। तेग़बहादुर=नानकी से। सूरतसिंह, अमृत, और अटलराय=मर्दानी से। गुरुदत्ता मर गया, गुरुदत्ता का लड़का हरराय था। इससे गुरुजी को प्रेम था। इसलिये हरराय को गुरु बनाया। नानकी इस निर्णय से नाराज़ हुई। परन्तु गुरु ने उसे बताया कि समयान्तर में उसका लड़का भी गद्दी पर बैठेगा और उसे समय पर तेग़बहादुर को देने के लिये अपने हथियार दिये।

गुरु हरराय—शान्त प्रकृति का था। ३३ साल तक गुरु गद्दी पर रहा। १६६५ ई० में करतारपुर में मर गया।

इसके समय में औरंगज़ेब का भ्रातृ युद्ध हुआ। गुरु हररायने दारा शिकोह की सहायता की। औरंगज़ेब ने विजयी होने पर इन्हें दरबार में हाज़िर होने को कहा। परन्तु इन्होंने अपने बड़े लड़के रामराय के हाथ चिट्ठी भेजी कि मैं फ़क़ीर हूँ मेरा दरबार में क्या काम! औरंगज़ेब ने रामराय को दरबार में रखा। सिक्ख प्रकृति से सैनिक बन चुके थे हरराय की प्रेरणा से भक्त सिक्खों ने दाराशिकोह का साथ दिया था।

गुरु हरराय के दो लड़के थे—रामराय और हरिकृष्ण। रामराय दिल्ली में गुरु का ज़ामिन था। निर्बल प्रकृति का था।

दिल्ली दरबार में रहते हुए एक दिन औरंगज़ेब ने रामराय से पूछा कि तुम्हारे ग्रन्थ में यह क्या लिखा है कि—"मिट्टी मुसलमान की, पेड़े पेई घुमिआर। घट भांड़े इट्टां कीआं जलती करे पुकार"। इससे तो मुसलमानों का अपमान होता है। रामरायजी बोले—बादशाह सलामत! मिट्टी मुसलमान की नहीं बल्कि 'मिट्टी बेईमान की' असल शब्द है, लेखक की भूल से ऐसा लिखा गया है। बादशाह सुनकर चुप हो गया और उसने रामरायजी को सही सलामत भेज दिया। इधर जब गुरु हररायजी को इसका पता लगा तो वह पुत्र पर बड़े नाराज़ हुए और जब वह आया तो उसकी ओर पीठ करके बैठ गये। रामराय जी भी अपनी भूल पर बहुत लज्जित हुए और जैसे-के-तैसे वापस लौट गये तथा देहरादून में जा बैठे। देहरादून में अब तक उनका गुरुद्वारा है, पर सिक्ख वहां माथा नहीं नवाते।

गुरु हरराय ने हरकिशन को अपना उत्तराधिकारी नियत किया। इससे रामराय उत्तेजित हो गया। बादशाह के सामने मामला गया। उसने गुरु हरकिशन को दिल्ली बुलाया, वहां पहुच कर सराय में उतरे, गुरु हरकिशन विचित्र वस्तु के रूप में दरबार में पेश किए गए। समान वेष वाली स्त्रियों में बेगम को पहचानने को कहा। इसने ठीक पहचान की। उसकी बुद्धिमत्ता से प्रसन्न होकर बादशाह ने उसे ही गुरु का उत्तराधिकारी नियत किया।

१६०८ ई० गुरु हरिकिशन चेचक से मर गया, वहां अन्त समय में शिष्यों ने पूछा आप का उत्तराधिकारी कौन है? कुछ मिनट

सोचकर ५ पैसों और नारियल के सामने सिर झुका कर कहा "बाबा वकाले जाओ" वहां गुरु मिलेंगे।

---

[२]

मुगलों के समय में पंजाब की स्थिति

हुमाऊँ ने दिल्ली में अपना अधिकार कायम कर, इसकी रक्षा के लिये पंजाब में अपने विश्वासपात्र शाह अब्दुलमाली को पंजाब का शासक नियत किया। हुमाऊँ की मृत्यु पर १५५६ ई० १५ फरवरी को, गुरदासपुर ज़िले के कलानौर स्थान में अकबर १३ साल की आयु में मुग़ल संरक्षकों के सामने राजगद्दी पर बैठा। जिस जगह पर अकबर का राज्याभिषेक हुआ था वह अभी तक विद्यमान है। शेष आडम्बर के सामान तथा उस उपलक्ष्य में बनाई हुई चीज़ें टूटफूट गई हैं। आस पास के किसानों ने इन ईंटों से अपने मकान बना लिये। उस स्थान पर अब किसान खेती कर रहे हैं। इसी समय पंजाब के शासक हुमाऊँ के मित्र शाह अब्दुलमाली ने स्वतन्त्र होने की कोशिश की। अकबर ने एकदम उसे कैद कर उसे लाहौर के कोतवाल गुलजर के आधीन कर दिया। इस पहलवान ने इस शाहमाली को मरवा दिया। अकबर ने लगते हाथ नगरकोट के समीप पहाड़ी राजाओं को हरा कर, वर्षा आरम्भ होने पर जालन्धर में अपना सैन्य शिविर लगाया। इसी समय खिजरखां को पंजाब का गवर्नर नियत किया। इसी समय सिकन्दरशाह सूर ने दिल्ली की गद्दी पर अधिकार जमाने के लिये पंजाब पर हमला कर दिया और खिज़र खां को हराया। यह समाचार मिलते ही अकबर कलानौर पहुँचा वहां शेरशाह सूरी से लड़ाई हुई। शेरशाह को लौटना पड़ा।

कलानौर में तीन महीने तक रहकर अकबर ने अपने शासनतन्त्र को दृढ़ किया। कुछेक गक्खरों ने आदम के नेतृत्व में पंजाब में गड़बड़ मचानी चाही। परन्तु अकबर ने कमाल गक्खर की सहायता से इनको न उठने दिया। अकबर के भाई हकीम मिर्ज़ा ने भी लाहौर पर अधिकार करना चाहा। परन्तु उसे भी सफलता न हुई। इसके बाद अकबर ने राजपूत राजा कल्याणमल की कन्या से विवाह किया और १५७६ ई० में राजा मानसिंह को पंजाब का गवर्नर बनाया।

अकबर के भाई हकीम मिर्ज़ा ने लाहौर का घेरा डाला। १५७६ ई० १५ फरवरी को राजा मानसिंह और राजा भगवान सिंह ने बहादुरी से किले की रक्षा की। हकीम मिर्ज़ा को लाहौर का मैदान छोड़ना पड़ा। इस वर्ष अकबर ने राजा भगवानदास को पंजाब का गवर्नर बनाया। अकबर ने अपने लड़के की शादी मानसिंह की बहन के साथ कर दी और कुँवर मानसिंह को काबुल का गवर्नर बना कर भेजा।

लाहौर में अकबर ने १५८२ ई० से १५९८ ई० तक विविध धर्मों की चर्चाएं करवाईं। यहीं पर इसने 'दीने इलाही धर्म' की नींव रखी। पंजाब के असहिष्णुता प्रधान वातावरण वाले लाहौर में, धार्मिक सहिष्णुता पैदा करने का यत्न किया।

धार्मिक चर्चाएँ इबादतखाने में होती थीं। बादशाह दरबारियों के साथ उपस्थित होता था। अब्दुलफ़ज़ल बादशाह की ओर से प्रश्न तथा विचारणीय समस्याएँ उपस्थित करता था। उपस्थित विद्वान् पक्षी प्रतिपक्षी इतिहास विज्ञान इलहाम आदि पर चर्चाएं करते थे। विचारक विद्वानों के निवास के लिये मीयाँमीर जाने

वाली सड़क के बाईं ओर दारा नगर के पास खैरपुर नाम का भवन मुसलमानों, यहूदियों तथा अग्नि पूजकों के लिये बनवाया था। हिन्दुओं के लिये धर्मपुरा के पास मकान बनवाए थे। कई बार इन धर्म चर्चाओं में गर्मी भी पैदा हो जाती थी, एक बार प्रतिपक्षियों की ओर से मुल्ला अहमद शिमा को किसी ने लाहौर की गलियों में कतल कर दिया। बादशाह ने कातिल को ढुँडवा कर हाथी की टांग में जीता जी बांध कर मरवा दिया।

अकबर ने अफगानिस्तान के हमलों को रोकने के लिये चिर काल तक लाहौर को अपना मुख्य स्थान बनाया। अकबर प्रथम मुसलमान बादशाह था जिसने भारतीय सेनाओं द्वारा गज़नी और अफ़गानिस्तान को जीता। अकबर ने सदियों पीछे प्रथम वार मानसिंह और भगवानसिंह को पञ्जाब का गवर्नर बनाया था। पञ्जाब को दिल्ली के साथ मिला कर, विदेशी आक्रमणों को रोका। अकबर के उत्तराधिकारी जहांगीर, शाहजहां, औरंगज़ेब भी इसी नीति पर कार्य करते रहे और पञ्जाब को विदेशी हमलों से बचाते रहे। जहांगीर का अधिक समय लाहौर में ही बीतता था। शाहजहां का जन्म ही लाहौर में हुआ था। औरंगज़ेब के भ्रातृ युद्ध में दाराशिकोह ने लाहौर को अपना मुख्य स्थान बनाया था।

इन मुगल बादशाहों ने लाहौर के किले तथा शहर को सुरक्षित और सुन्दर बनाने की कोशिश की। मुगल बादशाहों ने समय समय पर पञ्जाब में गुजरात रोहतास आदि के किले बना कर इसे सुरक्षित और सुदृढ़ बनाने की कोशिश की। शाहजहां के समय तक लाहौर तथा पञ्जाब की स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। परन्तु औरंगज़ेब के समय गुरु तेगबहादुर

की मौत के बाद उसके उत्तराधिकारी गुरु गोबिन्दसिंह और मुग़ल दरबार में झगड़े शुरू हो गये। इनके कारण सिक्ख गुरु जो पहले कई बार मुग़ल बादशाहों के साथ मिलकर रहते थे अब निश्चित रूप से उनके विरोधी और विद्रोही बन गये। इसके बाद सिक्ख, जनता के प्रतिनिधि होकर, औरंगज़ेब के अत्याचारों से तंग आकर जनता को बचाने में जुट गये। मुग़ल वंश के बादशाहों ने पंजाब की जनता का सहयोग प्राप्त करने की कोशिश की। जनता ने भी विदेशियों का मुकाबला करने के लिये मुगल बादशाहों को यथा सम्भव सहयोग दिया। परिणामतः इस समय में औरंगज़ेब से पहले तक पंजाब की भूमि युद्धों का मैदान न बनी; और जनता अपना कारोबार तथा सामाजिक जीवन शांति पूर्वक बिताती रही।

गुरु तेग बहादुरः—८वें गुरु हरिकृष्ण ने अपने उत्तराधिकारी का संकेत 'बाबा बकाले' शब्दसे किया था। शिष्य गुरु की तलाश में वहां पहुंचे। वहां अनेकों व्यक्ति गुरु गद्दी के उम्मीदवार बनने लगे। अन्त में मक्खनशाह ने, जो कि विश्वसनीय प्रतिष्ठित व्यक्ति था, गुरु तेग बहादुर को उनकी सचाई निस्पृहता और दूरदर्शिता से प्रभावित होकर उत्तराधिकारी घोषित किया। पहले उन्होंने गुरु बनने से इनकार किया परन्तु अपनी माता की प्रेरणा से गुरु हरगोविन्द द्वारा दिये गये हथियार स्वीकार करते हुए कहा कि मैं इनको धारण करने के योग्य नहीं हूं। और कहा कि मैं तेग बहादुर नहीं बनना चाहता, मैं देग बहादुर बन कर गरीबों तथा भूखों की सेवा करना चाहता हूं। उनकी इस भावना से जनता उन्हें अत्यन्त श्रद्धा से पूजने लगी।

गुरु गद्दी के दावेदार धीरोमल और रामराय ने यथाशक्ति

गुरु तेगबहादुर का विरोध करना शुरू किया। गुरु जी ने धीरोमल के साथियों को क्षमा दान कर उनका विरोध शान्त किया। रामराय औरंगजेब के दरबार में रहता था वह समय २ पर औरंगजेब को इनके विरुद्ध उत्तेजित करता रहता था। गुरुतेगबहादुर ने बाल्यकाल में अपने पिता से संस्कृत शास्त्र शिक्षा के साथ २ शस्त्र विद्या भी सीखी थी। वह बचपन में ही अपने पिता के साथ करतारपुर आदि युद्धों में भी शामिल रहते थे। उसके बाद, 'बाबा बकाले' में, पिताकी मृत्यु से गुरु हरिकृष्ण की मृत्यु तक, २० साल तक गुरुतेगबहादुर ने निरन्तर एक गुफा में एकान्त ध्यान द्वारा अपने आत्मिक बल को भी चमकाया। उनके चेहरे पर क्षत्र तेज के साथ ब्रह्म तेज भी चमकता था। जनता उनके झंडे के नीचे भारी संख्या में एकत्र होने लगी। वह अमृतसर भी गए, वहां के पुजारियों ने उनकी भेंट स्वीकार न की सम्भवतः प्रति पक्षियों की प्रेरणा से गुरु जी ने बाहर बैठ कर ही धर्म प्रचार किया। वहां से लौट कर वह बाबा बकाले नहीं गये। क्योंकि वहां रहने से उनके सम्बन्धी तथा प्रतिपक्षी उनके प्रभाव को देख कर जलते थे। उन्होंने झगड़ों से पृथक् रहने के लिये वह स्थान छोड़ दिया और अपने भक्तों तथा शिष्यों के लिये आनन्दपुर नाम का नगर बसाया। इस नगर के लिये उन्होंने सम्वत् १७२३ में राज कहलूर से, पहाड़ी इलाके में, सतलुज नदी के किनारे नैना देवी पहाड़ के समीप (नगर माखोवाल ज़िला हुशियारपुर के पास) ५००) में जमीन खरीदी। यह नगर भी खडूर से १० मील की दूरी पर है। जालंधर नवां शहर से पचीस मील पर है। इसे धर्म प्रचार तथा अपने दरबार का मुख्य स्थान बनाया और आने वाले लोगों के लिये निवास स्थान भी बनवाए। अपने एकान्तवास के लिये यहां ६ फीट गहरी गुफा

बनवाई। रहने वाले भक्तों की आवश्यकता पूर्ति के सब सामान भी जुटाए। दूर २ देशों के भक्त अनेक प्रकार की भेंटें लाने लगे। इस ऐश्वर्य तथा बढ़ते प्रभाव की सूचना रामराय ने औरंगजेब को दी और कहा कि वह अपना राज्य कायम करना चाहता है। यह भी कहा कि वह आदम हाफिज के साथ मिलकर मुसलमानों तथा धनी हिन्दुओं को लूटता है। इस पर औरंगजेब ने गिरफ्तारी के वारण्ट जारी कर दिए। परन्तु राजा जयसिंह ने बीच में पड़ कर औरंगजेब को समझाया कि यह तो फ़कीर है, 'धर्म प्रचारक है' इसे न छेड़ो। गुरु जयपुर के राजा के साथ आसाम बंगाल की यात्रा करने चले गये और पटना में अपने परिवार को छोड़ गये। वहां ५, ६ साल रहे। आसाम के राजा राजाराम और जोधपुर के राजा रामसिंह में सुलह कराई। यहां उन्हें पटना से समाचार आया कि उनकी धर्म पत्नी गुजरी ने पुत्र रत्न को जन्म दिया है, अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट की। गुरु तेगबहादुर राजा के साथ पटना लौट आए और बालक का नाम गोविन्दराय रखा। वहाँ कुछ दिन रह कर स्वयं आनन्दपुर चले गये परन्तु परिवार वहीं रहा। कुछ दिन बाद परिवार को भी आनन्दपुर बुला लिया। गोविन्दराय की शिक्षा दीक्षा का प्रबन्ध आनन्दपुर में ही किया गया। उन्हें संस्कृत हिन्दी फारसी आदि विद्याओं की शिक्षा दी और साथ ही साथ शस्त्र विद्या और अश्व विद्या भी सिखाई।

गुरुगोविंदराय को बचपन से ही घुड़ सवारी का शौक था। कभी कभी गंगा नदी में किश्ती में बैठकर मलाहगिरी—किश्ती संचालन का अभ्यास भी करते थे। बाद दुपहर अपने समवयस्क बालकों की सेनाएं बना कर उन्हें आपस में लड़ाते और विजयी दल को इनाम देते। इनकी इन बाल लीलाओं को देख कर, देखने

वाले कहते थे कि यह अपने दादा हरगोविन्द की भांति धर्मयुद्ध करेंगे।

इन्होंने पटना से पंजाब आने का वर्णन स्वयं किया है और उस विषय में निम्न लिखित पद्य भी रचा था:—

तेही प्रकाश हमारा भयो, पटना शहर विषै भव लयो।
मद्रदेश हम को ले आए, भांति भांति दादूऊन दुलराए॥

इन दिनों पंजाब को मद्रदेश कहते थे। इन्हीं दिनों कश्मीर से कुछ ब्राह्मण आनन्दपुर में आए और गुरु तेगबहादुर के सामने अपने दुःखों की कहानी कहते हुए बताया कि बादशाह औरंगजेब और उसके अधिकारी जजिया कर लगा कर और कई तरीकों से उन्हें तंग कर मुसलमान बनने के लिये बाधित कर रहे हैं। पंजाब कश्मीर में कोई उनके मुकाबले में खड़े होकर—हमारी रक्षा करने का साहस नहीं करता। आप 'हिन्दुस्तान की चादर' हैं, हमारी रक्षा करें। उनकी यह बात सुन कर गुरु तेग बहादुर गहरे विचार में लीन हो गये।

वीर बालक गोविन्द राय ने पिता को चिन्तित देख कर पूछा—पिता जी क्या बात है आप उदास क्यों हैं उन्होंने कश्मीरी ब्राह्मणों की दर्द भरी बात की ओर संकेत किया और कहा कि यह मुसीबत तभी दूर हो सकती है यदि कोई वीर और धर्मात्मा पुरुष अपना बलिदान दे। इस पर वीर बालक ने कहा इस समय आप से बढ़कर कौन धर्मात्मा वीर है? आप इन ब्राह्मणों*को रक्षा करें।

---

*आसाम बंगाल की यात्रा ने उनके सामने औरंगजेब के अत्याचारों की जीती जागती तसवीर रख दी थी। हिन्दू राजाओं की कमजोरी भी उनके सामने थी। इस भारत यात्रा के बाद अत्याचारी राजशक्ति का विरोध और जनता के धार्मिक अधिकारों की रक्षा की समस्या उनके सामने इन ब्राह्मणों की दुःख भरी विनति के रूप में उपस्थित थी।

वीर पुत्र के वीर वचन को सुन कर गुरु तेगबहादुर आत्म बलिदान के लिये तैय्यार हो गए। पुत्र मोह को स्वयं पुत्र ने दूर कर दिया ! इस संसार में विरले योग्य पिताओं को ही गोविंद जैसे योग्य पुत्र मिलते हैं !!!

गुरु तेगबहादुर ने ब्राह्मणों को कहा तुम लोग दिल्ली औरंगजेब से आकर कहो कि इस समय गुरु नानकदेव की गद्दी पर गुरु तेग बहादुर बैठे हैं। वह हमारे गुरु नेता हैं यदि तुम उन्हें मुसलमान बना लो, तो हम सब भी मुसलमान बन जायेंगे। उन्होंने गुरु का संदेश औरंगजेब के पास पहुंचाया। औरंगजेब ने पंजाब के नवाब को फर्मान भेज कर गुरु तेगबहादुर को दिल्ली में हाजिर होने के लिये हुक्म भिजवाया। बादशाह के दूत परवाना लेकर गुरु तेग बहादुर के पास आनन्दपुर पहुंचे। गुरु जी ने उन्हें कहा कि जाओ हम स्वयं आते हैं।

गुरु जी दिल्ली जाने की तैय्यारी करने लगे। गुरु हरगोविन्द की तलवार, वीरपुत्र गोविन्दराय की कमर में बांधी और उत्तराधिकारी गुरु के रूप में उसका स्वागत अभिनंदन नारियल की भेंट के साथ कियाऔर कहा कि हम अब दिल्ली से जीते जी नहीं लौटेंगे। तुमने मेरे मृत शरीर की यथाविधि अन्त्येष्टि क्रिया करनी। पुत्र का आलिंगन और चुम्बन कर दीवान भाई मतिदास और भाई गुरुदित्ता भाई ऊदोभाई चेता और भाई दियाला के साथ आगरा होते हुए दिल्ली पहुंचे। वहां इन्हें चांदनी चौक की कोतवाली में कैद किया गया। दिल्ली आते ही भाई मतिदास ने-गुरु से आज्ञा मांगी कि हुक्म देवें तो औरंगजेब को मौत के घाट उतार कर दिल्ली की ईंट से ईंट बजा दें।" गुरु जी ने कहा, अभी यह समय नहीं

आया। हम यहां सीस देने आए हैं–लेने नहीं। इन ज़ुल्मों की आग में औरंगज़ेब स्वयं राख हो जायेगा। चिन्ता मत करो। इन्हें औरंगज़ेब के सामने पेश किया गया। उसने इन्हें इस्लाम स्वीकार करने के लिये कहा। कई दिनों की मुहलत भी दी। परन्तु किसी ने इस्लाम धर्म स्वीकार करना नहीं माना। फिर बादशाह ने भाई मतिदास को अलग बुला के समझाया कि तुम अपनी जान बचाओ। उसके इनकार करने पर, गुरु तेग़ बहादुर के सामने–दो लकड़ी के तख्तों के बीच में मतिदास को खड़ा कर बांध कर आरे से चिरवाया। इधर आरे से अंग कट रहे थे–उधर भाई मतिदास सीधे खड़े रहे और जप जी का पाठ करते हुए प्राण त्यागे। इसके बाद भाई दयाला को जलती भट्टी के ऊपर रखी लोहे की कड़ाही में, गर्म उबलते पानी में उबालने का हुक्म दिया। भाई जी कड़ाही में बैठाए गये। आग प्रदीप्त की गई। गर्म पानी और लहू एक हो गया, परन्तु दयाला के चेहरे और मुंह से 'सी' तक न निकली। देखने वालों के दिल काँप उठे–पास खड़े मुसलमान भी दांतों तले अंगुलियाँ दबा स्तम्भित खड़े रहे। दियाला जप जी का पाठ करता हुआ गर्म पानी में शान्त हो गया। पृथ्वी वायु आकाश जल सूर्य, दोनों वीरों की आत्मा की जोति के सामने मंद हुए सहम गये। चारों ओर सन्नाटा छा गया। सामने की कोठरी में खड़े आत्मज्ञानी गुरु तेग़ बहादुर अपने आत्मज्ञानी शिष्यों को धर्म की अग्नि परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ देखकर अलौकिक अवर्णनीय–भावनाओं में ओत प्रोत हो रहे थे !

इसके बाद औरंगज़ेब ने गुरु तेगबहादुर को दरबार में हाज़िर करने का हुक्म दिया। उनके उपस्थित किये जाने पर उन्हें कहा कि इस्लाम स्वीकार करो। मैं तुम्हें अपना पीर बनाऊंगा या

कोई करामात दिखाओ। गुरु जी ने कहा मनुष्य का कर्तव्य परमात्मा की प्रार्थना करना है, करामातें दिखाना नहीं। तुम देखना ही चाहते हो तो लो 'यह कागज का टुकड़ा' और उस पर कुछ लिख दिया और कहा कि इसे मेरी गर्दन पर रखकर तलवार चलाओ। तलवार बेकार रहेगी। ऐसा ही किया गया। दरबार में जल्लाद बुलाया गया। गर्दन पर वह कागज़ का टुकड़ा रखा गया। जलालदीन जल्लाद की तलवार गर्दन पर चली। सिर धड़ से अलग हो गया। कागज़ उठाकर देखा गया—उस पर लिखा था, सिर दिया—सर ना दिया !!!

गुरु जी इस समय इस शब्द का उच्चारण कर रहे थे !—

चित्त चरन कँवल का आसरा, चित चरन कँवल संगि जोडिए।
मन लोचे बुरि आइआं गुर शब्दी इह मन होडिए॥
बांह जिना दी पकडिए सिर दीजे 'सर' न छोडिए।
गुरु तेग बहादुर बोलिया धर पइए धरम न छोडिए॥

दरबारी इस दृश्य को देखकर भयभीत और चकित हो गए। बादशाह बहती खून की धारा को देखकर हैरान हो गया। निर्दोष की रक्त धारा ने उसको और उसके दरबारियों को कँपा दिया।

जनता में त्राहि त्राहि मच गई। इस रक्त धारा ने मुगल साम्राज्य की नींव को हिला दिया। जनता में प्रतिहिंसा की भावना भयंकर रूप में प्रकट होने लगी। यह बलिदान १२ मघर सम्बत १७३२ वि० ११ नबम्बर सन् १६७५ ई० को हुआ था।

जीवन नाम के एक सिक्ख भाई ने गुरूजी का कटा हुआ सिर-हथियाकर-आनन्दपुर पहुँचाया। गुरु गोविन्द राव ने उस भक्त की वीरता से प्रसन्न हो उसको 'रँगरेटे गुरू के बेटे' की पदवी से

विभूषित किया। उनका धड़ भी लखी नाम के लवाणे ने जो दिल्ली में रहता था, अपने घर ले जाकर उसको यथोचित संस्कार के साथ जलाया।

इस बलिदान ने जनता में औरंगज़ेब के अत्याचारी रूप को नग्न रूप में प्रकट किया—गोविन्दराय ने पिता की मृत्यु का बदला लेने का संकल्प किया।

राजर्षि गुरु गोविन्द सिंह

गुरु तेग़ बहादुर की रोमांचकारी मृत्यु से जनता में आतंक छा गया था। सबसे पहले गुरु गोविन्दराय ने इस आतंक को दूर करने के लिये आनन्दपुर में गुरु गद्दी की स्थापना का समारोह रचाया। इस कार्य के लिये इस स्थान को चुनने में गुरु गोविन्दराय ने राजनैतिक दूरदर्शिता से कार्य किया। यहां से दिल्ली और लाहौर दोनों पर आंख रखी जा सकती थी। यहां के आस पास का पहाड़ी इलाका तैयारी के लिये अनुकूल था। इधर अभी तक मुसलमान राजशक्ति का विशेष ज़ोर भी न था। पहाड़ी राजाओं से उन्हें सहायता की भी आशा थी। १७३२ विक्रमी सम्वत् फागुन पांच वदी का दिन नियत किया गया। मसंदों को भेजकर दूर २ के सिक्खों को सूचना दी। गुरु तिलक का समारोह करने के लिये एक विशेष ऊंचा स्थान बनाया गया। इस पर सुनहरी चंदोवे के नीचे सुनहरी सिंहासन रखा गया। आवश्यक जप कीर्तन के बाद भाई राम कौर ने कलगी सिर पर सजाकर गुरु जी के गुरु गद्दी पर आसीन होने की सूचना दी। तदनन्तर मसंदों ने गुरु चरणों में अपनी २ भेंटें अर्पित कीं। कड़ाह प्रसाद उपस्थित जनता में बांटा गया। इसके बाद गुरु जी को 'पादशाही दस' व

दशमेश नाम से कहा जाने लगा। तदनन्तर गुरु गोविन्दराय ने धर्म प्रचार तथा जनता को राजा के अत्याचारों से बचाने के लिये तैय्यारियां करनी शुरू कीं। गुरु हरगोविन्द अपने समय में प्रतिदिन अपने डेरे पर दरबार लगाया करते थे। उनकी मृत्यु के बाद कई वर्षों तक यह प्रथा बन्द रही। गुरु गोविन्दसिंह जी ने फिर से इस प्रथा को जारी किया। प्रतिदिन दरबार लगने लगा। धर्म प्रचार के साथ २ शूरवीर पुरुषों की युद्ध कथाओं की चर्चा भी होती। गुरु जी के पास अपने जितने अस्त्र अस्त्र घोड़े आदि सामान था—सब यथायोग्य सेवकों में बांट दिया। शिष्यों को शस्त्र विद्या के अभ्यास के साथ २ धार्मिक ज्ञान की भी शिक्षा देनी शुरू की। अपने भक्तों तथा शिष्यों के पास संदेश भेजा कि जो कोई शिष्य शस्त्र और घोड़ों की भेंट देगा, वह गुरु जी का विशेष प्रेमी माना जायगा।

गुरु गोबिन्द राय जी संस्कृत हिन्दी फारसी और अरबी के भी विद्वान् थे। विद्वानों और गुणी पुरुषों का मान करते थे। गुरु जी स्वयं कविता भी करते थे। अनेक विषयों की पुस्तकोंके अनुवाद भी कराए। वह अपने शिष्यों को शूरवीर बनाने के साथ साथ विद्वान्और तेजस्वी लेखक भी बनाना चाहते थे। उनके दरबार में बावन कवि थे।

एक दिन गुरु गोविन्द राय ने अपने कुछ सिक्खों को रघुनाथ पंडित के पास संस्कृत पढ़ने के लिये भेजा। उसने यह कहकर कि संस्कृत केवल ब्राह्मण पढ़ सकता है,संस्कृत पढ़ानेसे इनकार किया। गुरुजी को यह उत्तर सुनकर गुस्सा आया उन्होंने कहा अच्छा वह भी समय आएगा जब ब्राह्मण सिक्खों से संस्कृत पढ़ेंगे। तत्काल सोभासिंह, कर्मसिंह, गंडासिंह, वीरसिंह, रामसिंह

नाम के पांच सिक्खों को ब्रह्मचारी के वेश में संस्कृत पढ़ने काशी भेजा। वह सब वहां से संस्कृत में विद्वान् होकर आए और यही पंडित श्रेणी समयान्तर में निर्मले नाम से कहलाए जाने लगी।

गुरूजीके समय समय पर तीन विवाह हुए। श्रीमती जीताजी की कोख से अजीतसिंह और जुझारसिंह हुए। श्रीमती सुन्दरी देवी जी ने जोरावरसिंह और फतहसिंह को जन्म दिया। श्रीमती साहबदेवी जी सबसे छोटी और निःसन्तान थी–उन्हें खालसा पन्थ की माता कहा जाता है।

गुरु जी की योजना से आनन्दपुर में विद्वान् और वीर पुरुष एकत्र होने लगे। गुरु जी ने अर्जुन की भांति-शत्रु पर विजय पाने के लिये कई वर्षों तक विशेष साधना की। इसी उपलक्ष्य में सम्बत् १७४८ चेत सुदी ५ को नैनादेवी में बड़ा भारी यज्ञ रचाया। यज्ञ कराने वाले पंडितों ने इस यज्ञ के सफल होने पर विजयी होने की आशा दिलाई। विधिपूर्वक यज्ञ प्रारम्भ हो गया। इस पर २½ लाख रुपया खर्च किया गया; और १७५६ सम्बत् में बैशाख मास संक्रान्ति को खालसा पंथ सजाया।

नैनादेवी के यज्ञ के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की दन्त कथाएं प्रसिद्ध हैं। आजकल के सिक्ख और हिन्दुओं को पृथक् मानने वाले, अकाली इस यज्ञ के विषय में कहते हैं कि यह यज्ञ गुरु गोविन्द जी ने ब्राह्मणों की पोल खोलने के लिये उनके देवी दर्शन के दावे को झूठा सिद्ध करने के लिये कराया था; और यह लोग तम्बू के अन्दर बकरे के बलिदान की बात को भी मन घड़न्त मानते हैं। परन्तु मुसलमान ऐतिहासिक तथा अन्य ऐतिहासिक नैनादेवी के इस यज्ञ का विशेष रूप से वर्णन करते हैं। ऐसा प्रतीत होता है, कि गुरु गोविन्द राय जी ने आनन्दपुर के, उद्योग पर्व में, स्वाध्याय

करते हुए आर्य जाति के प्राचीन इतिहास तथा साहित्य में समय२ पर किये गये, ऐसे क्षत्र यज्ञों के रोमांचकारी वर्णन पढ़े थे। उनका जनता पर गहरा प्रभाव भी देखा था। आबू पहाड़ पर क्षत्रियों की तैयारी के लिये किये गये यज्ञ का भी वर्णन पढ़ा। सम्भवतया जनता की यज्ञ श्रद्धा को देखकर, यज्ञ भावना द्वारा शक्ति संचय के लिये यह यज्ञ रचाया था। उस समय की प्रचलित प्रथाओं के अनुसार यज्ञों का होना अनहोनी बात न थी। विशेषतया धर्मरक्षा तथा शत्रुदमन के लिये यह आवश्यक समझा जाता था। श्री गुरु गोविन्दराय जी ने अपने दशमेश ग्रन्थ में इसका वर्णन भी किया है। प्रचलित दन्त कथा के अनुसार कहा जाता है कि यज्ञ समाप्त होने पर मनों घी सामग्री की पूर्णाहुति होने पर ज्वाला लपटों के रूप में शक्ति देवी ने दर्शन दिये। गुरु गोविन्दराय ने शक्ति देवी को प्रसन्न करने के लिये अपनी तलवार भेंट की। शक्तिदेवी उस तलवार पर अपना चिह्न अंकित कर अन्तर्धान हो गई। ज्वालाएं शान्त हो गईं। इस पर पंडितों ने कहा यह चिह्न शुभ है। अब तुम्हारा पंथ चमकेगा—तुम विजयी और सफल होगे; तुम्हारे पीछे तुम्हारा खालसा राज होगा। ऋत्विजों ने गुरु को कहा कि इस यज्ञ को पूर्ण करने के लिये पवित्र बलिदान की आवश्यकता है। शक्ति संगठन के लिये बलिदान चाहिए। गुरु जी उपस्थित शिष्य मंडली के सामने हाथ में तलवार लिये आए और कहा कि शक्ति देवी बलिदान चाहती है। है कोई वीर जो धर्म के लिये अपना सिर देना चाहता है !!!

धर्मसिंह नाम का वीर आगे आया। गुरु जी उसे शिविर में ले गये रक्तरंजित तलवार हाथ में लिये फिर बाहर आए। क्रमशः सुखासिंह, दयासिंह, हिम्मतसिंह और मक्खनसिंह ने अपने

आपको पेश किया। क्रमशः सबको शिविर में गुरु जी ले गये। कुछ समय बाद पांचों वीरों के साथ गुरु जी शस्त्र सज्जित हुए बाहर आए और इन पांचों को 'पाहुल' नाम के संस्कार में दीक्षित किया और उन्हें अपने प्रिय शिष्य 'पंच प्यारे' कहके खालसा नाम से घोषित किया। उसी समय देवी की छाप से अङ्कित दोधारी खंडे (तलवार) से एक लोह-पात्र में पानी डाल खांड घोलकर-उन्हें स्वयं जल का आचमन कराया और स्वयं उनसे आचमन लिया। उस जल से पांच वीरों ने गुरु जी का और गुरुजी ने उन पांचों का अभिसिंचन किया और 'वाहगुरु का खालसा', 'वाहगुरु की फतह' मंत्र उचारा। इन पांचों के नामों को सिंह शब्द से अभिषिक्त किया और अपना नाम भी गोविन्दराय से गोविन्दसिंह घोषित किया; और कहा कि खालसा गुरु से और गुरु खालसा से हो एक दूसरे का तःबेदार हो"। उसी समय उपस्थित जनता में से अनेकों ने अमृत-आचमन कर अपने आपको गुरुगोविन्दसिंह की सेना में दीक्षित कर-खालसा पंथ में प्रवेश किया।

गुरूजी ने रहमत नामा में लिखा कि जो मुझे देखना चाहते हैं वह मुझे खालसा में देख सकते हैं। जो सच्चे खालसा बनना चाहते हैं उन्हें हर समय कंघा, कच्छा, कड़ा, केश, और कृपाण धारण करना चाहिए और सदा शक्ति देवी-की-खड्ग की ध्वजा को हाथ में रखना चाहिए। इस वीर वेष की महिमा-स्वयं गुरु गोविन्द सिंह जी ने अपने दशम ग्रन्थ में इस प्रकार अङ्कित की है।

असि ध्वज से प्रार्थना

हमरी करो हाथ दे रच्छा, पूर्ण होइ चित्त की इच्छा॥
तब चरनन मन रहे हमारा, अपना जान करो प्रतिपारा॥
हमरे दुष्ट सबै तुम घावहु, आपु हाथ दै मोहि बचावहु॥

सुखी वसै मोरो परिवारा सेवक सिक्ख सवै करतारा ॥
तुम ही छांडि कोई अवर न ध्याऊँ । जोवर चहों सु तुमते पाऊँ ॥
सेवक सिक्ख हमारे तारियहि, चुनि चुनि शत्रु हमारे मारियहि ॥
आपु हाथ दै मुझै उचारियै, मरण काल का त्रास निवरिये ॥
हूजो सदा हमारे पच्छा, श्री असि धुज्जू करियहु रच्छा ॥
राखि लेहु मुहि राखन हारे, साहिब संत सहाइ प्यारे ॥
दीन बंधु दुष्टन के हंता, तुम हो पुरी चतुर्दश कंता ॥
नमस्कार तिस ही को हमारी, सकल प्रजा जिन आपु सवारी ॥
सेवकन को सब गुन सुख दियो सत्रुन को पल मों बध कियो ॥
कृपा दृष्टि तन जांहि निहारि हो, ताके ताप तनिक महि हरिहो ॥
ऋद्धि सिद्धि धरमों सब होई दुष्ट छाह छ्वै सकै न कोई ॥
एक बार जिन तुमैं संभारा काल फांस ते ताहि उभारा ॥
जिन नर नाम तिहारो कहा, दारिद दुष्ट दोख ते रहा ॥
खड्ग-केतु मैं सरनि तिहारी, आपु हाथ दे लेहु उबारी ॥
सर्व ठौर मो होहु सहाई । दुष्ट दोख ते लेहु बचाई ॥

'पाहुल' संस्कार के बाद सिक्ख अपने आपको राजपूतों की भांति सिंह समझ कर निडर हो विचरने लगे। भारतवर्ष के इतिहास में, राजपूताना के राजपूत, रोहतक हिसार के जाट और पंजाब के सिक्ख अपने नामों के पीछे सिंह शब्द का प्रयोग करते हैं। इस शब्द की ध्वनि ने इन्हें वीर और साहसी बना दिया। गुरु गोविन्द सिंह ने स्वयं पांचों वीर चिह्न धारण किये; और संगठन शक्ति तथा सैन्यशक्ति को बढ़ाने के लिये निम्न-लिखित कार्य किये।

(१) सिक्खों को आदेश दिया कि प्रत्येक चार व्यक्तियों वाले

परिवार को अपने अपने परिवार में से कम से कम दो युवक धर्म युद्ध के लिये भेंट करने चाहिए।

(२) सिक्खों को पांच चिह्न धारण कर हर समय आत्म रक्षा और शत्रु दमन के लिये तैय्यार रहना चाहिए। पंच प्यारों में गुरू के दर्शन करने चाहिए।

(३) मनुष्य मात्र को परमात्मा की सन्तान मानकर अपना भाई समझना चाहिए।

(४) अपने अन्दर किसी प्रकार का जन्मागत भेदभाव (Caste System) नहीं मानना चाहिए। सब मनुष्य बराबर हैं। हिन्दुओं के चार प्रचलित जन्ममूलक वर्णों को मिटाकर उन्हें एक वर्ण में संगठित करना चाहिए। जिस प्रकार पान चूना सुपारी कत्था चारों मिलकर एक लाल रंग बनाते हैं उसी प्रकार से इन चारों वर्णों को एक करने से ही रंग चमकता है।

धीरे २ आनन्दपुर में ८०००० के लगभग सिक्ख इकट्ठे हो गए। गुरु जी ने सतलुज यमुना के बीच में आत्म रक्षा के लिये अनेक किले बनाए। आस पास के पहाड़ी राजाओं से युद्ध भी हुए। इंदौर नालागढ़ के राजाओं को हराया। नाहन के राजा ने गुरु जी का साथ दिया। कुछ समय के लिये गुरु जी पौटों साहब में रहे। फिर आनन्दपुर आ गए। गुरु गोविन्दसिंह की बढ़ती शक्ति को देखकर इनमें से कइयों के दिलों में ईर्ष्या पैदा हो गई।

एक बार एक सिक्ख दक्खन से गुरु जी के लिये एक तलवार, एक सफेद हाथी, एक सफेद बाज, एक सुनहरी तम्बू और एक अरबी घोड़ा भेंट के लिये लाया। पहाड़ी राजाओं (भीमचन्द और हरिचन्द) ने चाहा कि गुरु उन्हें यह चीज़ें दे दें। गुरु ने छल पूर्वक उत्तर दिया कि मुझे स्वीकार है मैं हाथी पर बैठकर हाथ

में बाज लेकर तुम्हारा स्वागत करूंगा। इससे राजा खिज गये। सिक्ख राजाओं को अपशब्द कहने लगे। उस समय गुरु ने उनको पाहुल संस्कार का स्मरण कराते हुए कहा कि अमृत आचमन करने वाले वीर सिक्खों को सदा मीठी बोली ही बोलनी चाहिए। इन पहाड़ी राजाओं के युद्ध में, स्वयं गुरु मैदान में आते थे—इनके हाथों, राजा हरिचन्द मौत के घाट उतरे थे। पौंटाँ साहब से आकर, गुरु गोविन्द ने आनन्दपुर में डेरा लगाया। पहाड़ी राजाओं, भीमचन्द आदि के साथ सुलह की। कांगड़े के हिन्दू राजा ने दिल्ली के बादशाह के प्रतिनिधि को नियत कर देने से इनकार किया। अन्य पहाड़ी राजाओं ने भी बादशाह को कर देना बन्द कर दिया। कर वसूल करने के लिये बादशाही फौजें भेजी गईं परन्तु वह हार कर लौट गईं। कुछेक पहाड़ी राजाओं ने बादशाह औरंगज़ेब के पास अर्ज़ी भेजी कि वह उन्हें "सच्चे बादशाह" से बचाए। औरंगज़ेब ने लाहौर के गवर्नर जबर्दस्तखां और सरहिन्द के नवाब शमसुद्दीनखां को गुरु गोविन्द को गिरफ्तार कर लाने का हुक्म दिया। बादशाही सेना के आने का समाचार सुन कर १७४८ वि० में सिक्ख भारी संख्या में आनन्दपुर में इकट्ठे होने लगे। सिक्ख संख्या में थोड़े थे—बादशाही सेना संख्या में बहुत बड़ी थी। इसलिये सिक्खों ने किले के अंदर से लड़ना निश्चित किया। पांच दिन तक घमासान युद्ध हुआ। कई सिक्ख भी शहीद हुए परन्तु सिक्खों ने भी वैरियों को भारी संख्या में यम के घर पहुँचाया। छठे दिन गुरु गोविन्दसिंह स्वयं किले से बाहर रणांगण में उतरे और शत्रु सेना पर बिजली का सा आक्रमण किया। सरदार अमीरखां प्रसिद्ध बादशाही सेनापति और सौदेखां गुरुजी के हाथों मारे गए। गुरु गोविन्द जी के एक मुसलमान

नौकर ने राजा हरिचन्द को मार दिया। राजा अजमेर चन्द ज़ख्मी हो गया। पहाड़ी राजा तथा बादशाही फौज मैदान छोड़कर भाग गई। इस समाचार से औरंगज़ेब को अत्यन्त क्रोध आया। उसने दिल्ली कश्मीर लाहौर जालंधर के सूबेदारों को अपनी २ सेनाएं लेकर आनन्दपुर की ओर रवाना किया। कई पहाड़ी राजा भी उधर से इनके साथ आनन्दपुर पर हमला करने के लिये आए। इधर इस भारी सेना के मुकाबले में गुरु जी के पास केवल १० हज़ार सिक्ख सिपाही थे। २२ जेठ स० १७६१ वि० को बादशाही सेना ने आनन्दपुर पर हमला किया। शुरू २ में बादशाही फौज ने किले में घुसने की कोशिश की। परन्तु किले के अन्दर के सिंहों की तोपों की मार से वह इसमें सफल न हो सके। लाचार उन्होंने किले को घेर कर अन्दर रसद आनी बन्द की। किले में पर्याप्त सामान था परन्तु शाही फौज के चार महीने के घेरे ने, रसद समाप्त कर दी। मुट्ठी भर चने, वृक्षों की छालें, वृक्षों के पत्ते खाकर सिक्ख लड़ते रहे। किले के अन्दर के लोग युद्ध और भूख से तंग हो गए। दूसरी तरफ़ शाही फौज और पहाड़ी राजा भी लड़ते २ तंग हो गये थे।

किले के सिंह रात को अचानक शाही फौज पर हमला करते और दिन निकलते किले में चले जाते। इस लूटमार तथा रात के आक्रमणों से वैरी भी हैरान हो गया। उधर औरंगज़ेब दक्खन में मराठों से लड़ रहा था। उधर भी रुपया पानी की भांति खर्च हो रहा था। इधर सेना की तनखाहें, कौन कहां से देता—लाचार बादशाही फौज के सेनापति ने गुरु जी को संदेश भेजा कि आप लोग कुछ दिनों के लिये आनन्दपुर छोड़ के किला खाली कर दो—

हम कुछ नहीं करेंगे। कुरान की शपथें भी खाईं। परन्तु गुरु जी ने विश्वास न किया और अपने वीरों से कहा कि धैर्य करो बादशाही फौज थककर स्वयं चली जायगी। परन्तु कुछेक ने युद्ध तथा भूख से तंग होकर आनन्दपुर छोड़ने पर ही ज़ोर दिया और कुछेक गुरु को छोड़कर विदा पत्र भी लिख कर चले गये। कुछेक को गुरु जी ने जाने की स्वयं इजाज़त दी। जिस समय यह लोग सामान लेकर निकले तो बादशाही फौज ने प्रतिज्ञा भंग कर उन पर हमला कर उनका सामान लूट लिया। विश्वासघात का यह व्यवहार देखकर सिक्ख ज़ोर से लड़ने लगे। फिर बादशाही सेना से दो दिनों तक घनघोर युद्ध हुआ। बादशाही फौज ने पहली प्रतिज्ञा तोड़ने के लिये माफ़ी मांगी—और कहा कि किला खाली कर दो—हम कुछ नहीं कहेंगे। गुरु गोविन्दसिंह जी न चाहते हुए भी, सिक्खों की इच्छानुसार १७६१ वि० ७ पौष को प्रातः परिवार तथा सिक्खों के साथ आनन्दपुर के किले से बाहर निकल गये। इस बार फिर बादशाही और पहाड़ी फौज ने वचन भंग कर गुरु जी और उनकी सेना पर हमला कर दिया। किले को आग लगा कर राख कर दिया। गुरु जी कीरतपुर से होकर सरसा नदी के तट पर पहुंचे तो देखा नदी चढ़ी हुई है। सब सामान घोड़े गड्डे—वहीं रुक गये। इतने में बादशाही फ़ौज भी उधर पीछा करती हुई आ पहुंची। यह देखकर गुरु पुत्र अजीत-सिंह ने अपनी टुकड़ी के साथ बादशाही फौज का मुकाबला किया और उसे देर तक रोके रखा। कई सिक्ख नदी पार करते २ डूब गये। बड़ी दिक्कत से स्त्रियों तथा बच्चों को पार किया। जिधर जिसको रास्ता मिला वह उधर निकल गया। भयंकर लड़ाई हुई। सरसा नदी का पानी वीरों के रक्त से लाल हो गया। बहुत सा

सामान नदी में डूब गया। गुरु जी सरसा नदी के बीच में खड़े होकर ५०० सिक्खों के साथ शत्रु से लड़ते रहे। इन ५०० में से थोड़े सिक्ख बचे। शेष लड़ते २ शहीद हुए। माता गुजरी दो छोटे गुरु पुत्रों के साथ गंगु ब्राह्मण के साथ खच्चर पर सामान लादकर उसके गांव चली गई। इसने उनको सरहिन्द के सूबेदार के सुपुर्द किया। माता साहब कौर और माता सुंदरी भाई मनिसिंह के साथ दिल्ली चली गई, वहां भाई जवाहरसिंह के घर में रहीं।

सरहिन्द के गवर्नर वज़ीरखां के दीवान सुच्चानन्द (कलजस राय) ने अगले दिन ज़ोरावरसिंह और फ़तेहसिंह को सूबेदार के सामने पेश किया। नवाब ने उन लड़कों को कहा—देखो तुम्हारे पिता ने देश में कितनी बेचैनी फैलाई है। बादशाही फौजों से मुकाबला करता है। किसी हाकिम को कुछ नहीं गिनता। उसे सीधे रास्ते पर लाने के लिये तुम्हें मृत्यु दण्ड दिया जायगा। परन्तु तुम्हारी मासूमी सुन्दर शकल को देखकर मुझे तुम पर तरस आता है। यदि तुम इस्लाम स्वीकार कर लो तो तुम्हें मृत्यु दण्ड से माफ़ी मिल सकती है। तुम्हारा शाही खानदान से विवाह हो जायगा, तुम संसार के आनन्द लूट सकोगे।

ज़ोराबरसिंह और फतेहसिंह ने इसके उत्तर में कहा कि हमारे पिता अपने कामों के आप जिम्मेवार हैं। आप उनके साथ युद्ध कर सकते हैं। अपने सम्बन्ध में हम यह कहना चाहते हैं कि हम गुरू तेगबहादुर के पोते और गुरू गोविन्दसिंह के पुत्र हैं, हम जीते जी इस्लाम स्वीकार नहीं कर सकते। प्राण जांय परन्तु हम अपने कुल को कलंकित नहीं करेंगे। हमारी कुल की रीति यही है कि धर जाय पर धर्म न जाय, जो कुछ तुम करना चाहते हो करो।

सूबेदार ने उन्हें कुछ दिन की मोहलत दी और अपने आदमियों को कहा कि इन दोनों को समझाओ। कुछ दिन बाद फिर दोनों को पेश किया गया। सूबेदार ने फिर दोनोंसे पूछा कि बताओ कि यदि हम तुम्हें छोड़ दें तो तुम क्या करोगे।

वीर बालकों ने कहा—सिंह इकट्ठे करेंगे, युद्ध सामग्री जुटायेंगे तुम्हारे साथ लड़ेंगे तुम्हें मारेंगे।

नवाब ने पूछा—यदि हार जाओगे तो क्या करोगे?

वीर युवकों ने कहा—फिर सेना इकट्ठी करेंगे तुमसे लड़ेंगे, तुम्हें मारेंगे या खुद मर जायेंगे। इन उत्तरों से नवाब को बहुत गुस्सा आया। वह उन्हें कत्ल का हुक्म देने वाला था कि दरबार में उपस्थित मलेरकोटला के नवाब शेर मुहम्मदखां ने कहा—इन मासूम बच्चों पर क्या रोष! इन पर क्या गुस्सा! यदि बहादुर हो तो इनके पिता से लड़ो। नवाब कुछ शरमाया, परन्तु पास बैठे नवाब के दीवान सुचानन्द (कुलजस) ने कहा—"सप्पां दे बच्चे सप्प होंदे हैं।" सांप का बेटा सांप होता है, इसपर वज़ीर खान ने उन्हें फिर सोचने का मौका दिया। अनेक भांति के प्रलोभन दिये परन्तु वह दोनों धर्म पर दृढ़ रहे। आखिर उन्हें दीवार में चुनवा कर इस्लाम को कलंकित किया।

जब यह समाचार उनकी दादी गुजरी माता जी को मिला वह यह देख कर प्रसन्न हुई कि उसके पोतों ने उसके पति की आन कायम रखी। नवाब सरहिन्द ने माता गुजरी को भी मुसलमान बनने के लिये कहा। उन्होंने भी इन्कार कर दिया। इस पर उनका खाना पीना कम कर उन्हें शारीरिक कष्ट देने शुरू किये। वह भी कुछ दिन बाद इन कष्टों से पीड़ित होकर परलोक सिधार गई। इन बच्चों के बलिदान ने सरहिन्द को सदा

के लिये कलंकित कर दिया । आने वाले समय में सिक्खों ने इसके शासकों को बाल-हत्या का वह दण्ड दिया जिसे कोई नहीं भूल सकता । इस बलिदान ने इस्लाम के विरुद्ध जनता में भारी असन्तोष की आग पैदा कर दी । गुरू तेगबहादुर के बलिदान से पैदा हुई प्रतिहिंसा की भावना को इन गुरू बच्चों के बलिदान ने और भी तीव्र और प्रलय की प्रचण्ड आग का रूप दे दिया ।

चमकौर का चमत्कारी युद्ध

उधर गुरु गोविन्दसिंह अपने दोनों बड़े पुत्रों और भाई दरयासिंह आदि के साथ शत्रु से लड़ते लड़ते सरसा नदी के पार पहुंचे । जब उधर रोपड़ के पास आए तो दो पठानों ने इनको गिरफ्तार करने की कोशिश की । इतने में शत्रु सेना भी नदी पार कर इधर आ चुकी थी । गुरूजी चालीस विश्वास-पात्र सिंहों और बड़े लड़कों के साथ चमकौर के कच्चे किले में पहुंच गये । इनके पीछे शाही सेना भी वहां पहुंच गई । सारी रात दोनों ओर से एक दूसरे पर गोलियां और तीर बरसते रहे । चमकौर किले के चारों ओर मीलों तक शाही सेना डेरा डाले पड़ी थी । चमकौर के (चमकौर साहब स्टेशन दुराहा से २५ मील पर सरहिन्द के पास है) किले में केवलमात्र गुरू जी, उनके दो बड़े लड़के और चालीस सिक्ख थे । फिर भी किसी शत्रु को हिम्मत न हुई कि किले में घुस कर गुरु गोविन्दसिंह को पकड़ता । प्रातः काल होने पर फिर तेज़ी से युद्ध होने लगा । सिंह वीरों की गोलियां और तीर समाप्त होने पर, निश्चय किया गया कि एक-एक

वीर हाथ में तलवार लेकर किले से बाहर निकल कर शत्रु की सेना पर आक्रमण करे; शत्रु को मारता हुआ वीर गति को प्राप्त होवे।

इस निश्चय अनुसार वीर सिक्ख किले से बाहर निकलकर भूखे शेर की भांति शत्रु सेना पर टूटते; उनके चुने हुए वीरों को यम-लोक भेजते और शत्रु से घिरे हुए वीर अभिमन्यु की तरह, लड़ते लड़ते वीर गति को पाते।

इसी प्रसंग में अजीतसिंह और जुझारसिंह जी भी तलवारें तान कर बाहर निकले। लड़ते लड़ते प्यास लगी, जुझारसिंह लौट कर पानी पीने किले में आया तो गुरुजी ने पूछा क्या बात है! वीर कुमार ने कहा प्यास बुझाने के लिये पानी पीने आया हूं।

गुरुजी ने कहा—बेटा! तुम जैसे वीरों की प्यास तलवार की धार पर बहती रक्त की धारा से ही तृप्त होनी चाहिए। वीर पिता का आदेश सिर माथे धर कर, पानी पिये बिना ही तलवार की धार का पानी पीने रणभूमि की ओर मुड़ गया। भूखा और रक्त का प्यासा शेर, जिस प्रकार शिकार पर लपकता है, दोनों वीर भाई तलवार ताने रक्त पान से प्यास बुझाने, शत्रुओं पर टूट पड़े। सामने खड़े शत्रु का सिर धड़ से अलग होता था और उनकी प्यास शान्त होने लगी। प्यास शान्त होने तक पता नहीं कितनों को तलवार के घाट उतारा। अन्त में रक्त नदी में स्नान करते हुए परलोक सिधारे। बादशाही सेना के नाहरखां, महमदखां, दिला-वरखां कसूरी, सम्मदखां लाहौरी, बड़े बड़े पठान वीर सिक्खों की तलवार के घाट उतरे। फिर भी गुरुजी को पकड़ने के लिये कोई आगे नहीं आया। उनके साथ, अन्त में केवल आठ दस

सिक्ख रह गये। उन सबने गुरूजी से प्रार्थना की कि आपने अभी बहुत कुछ करना है। यदि आप भी यहां बलिदान हो गये, तो शत्रु सेना फूली नहीं समाएगी। इसलिए आपका यहां से सुरक्षित चले जाना ही हमारी विजय है।

पुत्रों का बलिदान कर, पुत्रों से प्यारे पंच प्यारे शहीदों को विदा कर स्वयं जीते जी जाना आत्मज्ञानी स्थितप्रज्ञ का ही काम है। दिल पर पत्थर रखकर खालसों की आज्ञा सिर माथे कर, भाई सन्तसिंह को अपना वेश पहना और चार सिक्खों को पंच प्यारों की पदवी देकर नगाड़े बजाते हुए किले में रहने की आज्ञा दी। स्वय आधी रात को भाई दयासिंह, धर्मसिंह और मानसिंह को साथ लेकर शाही सेना के बीच में से 'सिक्खों का गुरु जारहा है' का नारा बोलते हुए शिवा जी की तरह बाहर निकल गये। शत्रु के गोल को फोड़ कर औरंगज़ेब की आशाओं पर तुषार पात कर बाहर आ गये। इधर किले में नगाड़ा और जैकारे गूंज रहे थे। दो तर्फा नारों से शाही सेना घबरा गई। किसी को कुछ न सूझा। प्रातः काल शाही सेना किले में दाखिल हुई भाई सन्तसिंह जी को श्री गुरु गोविन्दसिंह समझ कर उसका सिर काट कर सेनापति के पास भेजा और खुशियां मनाने लगे। इधर गुरुजी सारी रात चल कर खेड़ी गांव में पहुंचे। सारा दिन जंगल में विताया था, रात को फिर पैदल चले और माछीवाड़ा पहुँच कर एक बाग में आराम किया। कठिन पैदल यात्रा में जंगलों की झाड़ झंकार में पकड़े फट गये थे, पैरों में छाले पड़ गये थे रात को वहीं सो गये। अगले दिन बाग के मालिक ग़नीखां और नबी खां, जिनसे गुरुजी घोड़े खरीदा करते थे, वहां आए और गुरुजी की हालत देख कर हैरान हुए।

समाचार पूछ कर गुरुजी से निवेदन किया कि जो आप आज्ञा करें उसके लिये हम तैयार हैं। इतने में भाई दयासिंह, धर्मसिंह, और मानसिंह भी वहां पहुँच गये।

अगले दिन निश्चय किया कि गुरू जी—'उच्च के पीर' नाम से पालकी में बैठें। गनीखां, नवीखां, धर्मसिंह, मानसिंह ने उनकी चारपाई उठाई। सब मुसलमानी नीले वेश में थे—रास्ते में मुसलमान भक्तों ने पीरजी को भोजन करने को कहा, साथ के मुरीदों को भी भोजन कराना चाहा। गुरू जी ने इशारे से कहा कि भोजन में तलवार फेर कर—छक लो। चलते २ मालवे में पहुंच गये। वहां फिर पहले की भांति भक्त इकट्ठे हो गये। गुरू जी ने दोनों पठानों को कीमती भेंटें और हुक्मनामे देकर विदा किया। लुधियाना जिले के वहलोलपुर में अपने उस्ताद पीर मुहम्मद काजी के पास रहे। उसने भी इनकी सहायता की। राय-कोट लुधियाना में आकर उन्हें छोटे पुत्रोंके बलि होने का समाचार मिला। दरबार में यह समाचार सुन कर भक्तों ने शोक प्रकट किया। इस पर गुरू जी ने सब को दिलासा देते हुए कहा—

इन पुत्रन के कारणे वार दिए सुतचार।

चिन्ता की कोई बात नहीं अत्याचारी को अपने कर्मों का फल अवश्य मिलेगा। वह समय भी आवेगा जब सरहिन्द की ईंट से ईंट बजेगी। शिष्यों को आदेश दिया कि इस गुरमार सरहिन्द से आते जाते—इसकी एक २ ईंट सतलुज में डालते जाया करो। मालवा से भटिंडा के जंगलों में गये वहां कुछ समय तक रह कर अपनी सेना सजाई। भक्त वहां फिर इकट्ठे हो गये। यहां अपने ठहरने के लिये दमदमा भी बनाया। गुरू जी ने घोषणा की कि

जो भक्त यहां दमदमा में आएगा वह विद्वान् हो जायगा, उसे सफलता मिलेगी। कहा जाता है कि यहां गुरुमुखी उत्तम ढंग से लिखी जाती थी। यहाँ के लेखक विद्वान् प्रसिद्ध थे—समय २ पर यहां के पुजारियों और ग्रन्थियों से कई विषयों में राय भी ली जाती रही है।

इसी समय सूबेदार सरहिन्द को पता लगा कि गुरु गोविन्दसिंह जीते हैं, और अपनी सेना सजा रहे हैं। उसने उनको मारने के लिये अपनी सेना उनके पीछे मुक्तसर के पास के जंगलों में भेजी।

चालीस सिक्ख आनन्दपुर में गुरु जी को छोड़ कर घर आए थे। तब इनकी माताओं, बहनों और सिंहनियों ने उन्हें फटकार बताई थी। माता भागकौर सिंहनिओं का दल बना कर गुरु की सेवा में जाने लगी। वह चालीस सिख भी उन्हीं की सेना में मिल गये—रास्ते में उन्हें सूबा सरहिन्द की सेना के आक्रमण करने की खबर मिली। इन्होंने इस शत्रु सेना के गुरु जी तक पहुँचने से पहले ही उस पर हमला कर उसे परेशान कर दिया। लड़ते २ जब इन वीरों की गोलियां समाप्त हो गई तो यह तलवार लेकर शत्रु पर टूट पड़े। शत्रु सेना को लौटना पड़ा। गुरु जी युद्ध स्थान से २½ कोस पर खड़े इस युद्ध के दृश्य को देख रहे थे। जब उन्हें पता चला कि चालीस सिंहों ने शत्रु सेना भगा दी है तो वह स्वयं एक ऊँचे स्थान पर खड़े होकर—भागती शत्रु सेना पर तीर फेंकने लगे इससे वह और भी घबरा गई। चारों ओर से घिरी हुई शाही सेना इस जंगल के प्रान्तमें पानी की कमी तथा सिक्खोंकी तलवारों की मार से मैदान छोड़ भागी। शत्रु सेना का सेनापति मुश्किल से जान बचा कर भाग गया। इसके बाद गुरु जी चालीस सिखों के

युद्ध स्थान पर आए । वहां शहीद सिखों के मुँह पूंछे—उन्हें आशीर्वाद दिया। इनाम दिये । भाई महासिंह ज़ख्मी अचेत पड़ा था। उसे अपनी गोदी में लेकर पानी पिला कर होश में लाने लगे ; होश आने पर उसे कहा वर मांग !

उस वीर ने कहा—आनन्दपुर में हम चालीस जो त्याग पत्र दे आए थे, उसका हमने प्रायश्चित्त किया है, आप हमें माफ़ करें; और उस पत्र को फाड़ दें। यह सुन कर गुरु जी की आंखों में प्रेमाश्रु आ गये। उन्होंने उसी समय अपने खीसे में से वह विदाई पत्र निकाल कर उसके सामने फाड़ दिया। इससे उनको शान्ति हुई। माता भागकौर भी आहत हो गई थी । उनकी भी सेवा परिचर्या की। वह भी होश में आकर स्वस्थ हो गईं। कायरों को वीर बनाने वाली ऐसी देवियां ही वीरांगनाएं हैं। इसके बाद गुरु साहब ने उन ४० सिखों की स्मृति में वहां (फिरोजपुर ज़िले में) मुक्तसर नाम का तालाब बना दिया ; यहां हर साल मेला लगता है।

गुरु जी की दक्षिण यात्रा

गुरु जी मालवा के इलाके में ठहरे हुए थे। औरंगजेब इन दिनों दक्खन में था। उसने फर्मान भेजकर गुरु जी को मिलने के लिये दक्खन में बुलाया था। गुरु गोविन्द ने स्वयं न जाकर भाई दयासिंह के हाथ जफ़र नामा भेजा था जिसका संक्षेप में भावार्थ यह है।

हे औरंगज़ेब मैं तुमको ख़ुदा परस्त नहीं मानता क्योंकि तुमने लोगों को दुःख देने वाले कार्य किये हैं।

यदि तू ज़ोरावर है तो तुम अनाथों को दुःखी क्यों करते हो। क्या यह न्याय है कि शपथ पूर्वक वायदे करके उन्हें पूरा न किया जाय !

हे बादशाह याद रख जब तक अकाल पुरुष मेरा मित्र है तब तक तू मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मेरा बाल भी बांका नहीं हो सकता। तेरी बादशाही फौज भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकी। एक धर्म प्रचारक के साथ लड़ाई करके तुझे सिवाय बदनामी के और क्या मिला। बादशाह ! अकाल पुरुष की शक्ति को देख कि चालीस सिक्खों ने तेरी दस लाख सेना के छक्के छुड़ा दिए। हे औरंगज़ेब तूने मुझे दर्शन देने के लिये बुलाया है तेरे पर कौन विश्वास करे तू बुलाकर धोखे से मार देता है। तूने अपने पिता और भाइयों को छल पूर्वक मारा है। मेरे पिता गुरु तेग बहादुर भी तेरे पास मुलाकात करने गये थे। हे औरंगज़ेब यदि तू कुरान की झूठी शपथ खाकर औरों को मार सकता है तो औरों को बचना भी आता है। ऐसे बादशाह का क्या विश्वास जिसके नौकर और अहलकार झूठ बोलते हों। हे औरंगज़ेब दूसरों का खून करने के लिये निःशंक हो तलवार का वार मत कर, याद रख परमात्मा तेरा भी खून लेगा।

यदि तुझे अपनी दौलत फौज और हकूमत का अभिमान है तो हमें अकाल पुरुष का भरोसा है जिसके सामने तेरे जैसे करोड़ों बादशाह सिर झुकाए खड़े हैं।

इस पत्र द्वारा गुरु गोविन्द ने औरंगज़ेब को खरी २ बातें सुनाकर—अपने दूत द्वारा ताड़ना की।

चिट्ठी प्राप्त कर बादशाह ने भाई दयासिंह को प्रसन्न होकर

इनाम दिया ; और भाई दयासिंह द्वारा गुरुजी को कहला भेजा कि आप मुझे मिलो–कोई चिन्ता न करो।

गुरु गोविन्दसिंह जी दक्खन यात्रा के लिये प्रस्थित हुए। परन्तु राजपूताने के बघौर शहर में गुरु जी को समाचार मिला कि बादशाह मर गया है। इसके बाद गुरु जी ने–भ्रातृ युद्ध में मुहम्मद मुअज्जम बहादुर शाह की सहायता की–उसने विजयी होने पर अत्याचारी शासकों को दण्ड दिलाने की आशा दिलाई थी। इस समय औरंगज़ेब के पुत्रों में आगरा धौलपुर के मैदान में–युद्ध हो रहा था। बहादुर शाह की फौज हारने वाली थी कि गुरु गोबिन्दसिंह की सहायता मिलने पर वह जीत गई। गुरुजी ने अपने तीर से तारा आजम को मौत के घाट उतारा। १७०८ ई० सन् की इस विजय पर बादशाह ने गुरु जी का धन्यवाद किया। इसके बाद अपने भाई कामबख्श को हराने के लिये बहादुरशाह दक्खन की ओर गया और अपने साथ गुरु जी को भी ले गया। बादशाह ने हालात की मज़बूरी से अभी एक दम अपराधियों को दण्ड देने में असमर्थता प्रकट की। गुरु जी ने कहा अच्छा–यह काम हम अपने 'बन्दे' से स्वयं करा लेंगे ? इसके बाद गुरु जी दिल्ली से दक्खन को चले। कुछ समय बुरहानपुर ठहर कर छपरा नागपुर अकोला अमरावती होते हुए वि० सम्वत् १७६४ के अन्त में नादेर पहुंचे और वहीं रहने लगे। यहां उन की माधोदास नाम के वैरागी साधु से भेंट हुई। गुरू जी इसकी योग्यता से प्रभावित हुए। इसके अपने अनेक अनुयायी थे। यहां शाही शान से रहता था। दोनों कई दिनों तक इकट्ठे रहे। वह एक दूसरे के मित्र बन गये–गुरू गोबिन्दजी की कुर्बानियों का बन्दे पर असर पड़ा स्वयं उनका शिष्य बनना स्वीकार किया।

उनसे पाहुल दीक्षा ली। गुरू जी ने उसे पंजाब जाने का आदेश किया। सिक्खों को आदेश दिया कि वह बन्दा को अपना नेता और रक्षक समझें। विदा करते समय गुरुजी ने बन्दे को निम्नलिखित आदेश दिये।

(१) योद्धा का जीवन व्यतीत करो। (२) मेरे पिता और पुत्रों की मृत्यु का बदला लो (३) गुरमता के साथ मिलकर काम करना। (४) तूणीर (तरकश) से ५ बाण निकाल कर दिये और कहा कि इन्हें सदा अपने पास रखना। (५) स्त्रियों के पास मत जाना। जब तक इनका पालन करोगे तुम पर कोई मुसीबत नहीं आएगी। बन्दा यह संदेश लेकर पंजाब को प्रस्थित हुआ।

इधर गुरू साहेब के पास एक पठान के दो बच्चे रहते थे। गुरू जी ने इन्हें पुत्रों की तरह पाला था। कभी पहले इनका पिता जब वह मुगलों की सेना में था, गुरू जी के बाण से मारा गया था। मौका देखकर इन दोनों ने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिये जब गुरूजी सो रहे थे उनपर वार कर दिया। गुरूजी ज़ख्मी हो गये। एक दम चिकित्सा की गई। लगते हाथ गुरू जी ने घायल होते हुए भी उन दोनों को तलवार के घाट उतार कर मौत के द्वार भेजा। परन्तु इन गहरे घावों के कारण-गुरू जी का शरीर शिथिल हो गया था। निरन्तर शारीरिक श्रम ने मन और शरीर को जर्जर कर दिया था। एक दिन शिष्यों से कहा अब हमारा अन्त समय आ गया है। गरीबों को दान किया-अन्त्येष्टि की तैय्यारी करने की आज्ञा दी। यह समाचार सुन सिक्ख पूछने लगे अब हमें विजय और मुक्ति कौन दिलाएगा ? मार्ग प्रदर्शन कौन करेगा ? गुरू जी ने कहा चिन्ता की कोई बात नहीं दस नियत गुरू अपना काम कर चुके हैं। अब मैं खालसा को परमात्मा के

सुपुर्द करता हूं।

ग्रन्थ साहब को अपना गुरु मानो। पांच प्यारों में गुरु के दर्शन करो। धोखे से बचो। स्वयं स्नान किया, उत्तम वस्त्र पहने–शस्त्रों से शरीर को सुसज्जित किया। स्वयं परमात्मा का* नाम लेते हुए नादेर में गोदावरी के तट पर विक्रमी सम्बत् १७६५ तदनु० १७०८ ई० में प्राण विसर्जन किये। इस समय इनकी आयु ४८ साल की थी। गुरु गद्दी पर लगभग ३० वष ११ मास आसीन रहे। सिक्खों ने अन्त्येष्टि का समारोह किया–अरथी चिता पर फूल बरसाए। वहां उनकी समाधि बनी। सिक्ख इस स्थान को अविचल कहते हैं–यह नादेर से २½ माल पर है। यहां गुरू गोविन्दसिंह जी की तलवार ढाल आदि सुरक्षित रखे गये हैं। कई पुजारी इनकी पूजा भी करते हैं–कहा जाता है कि यहां गुरु जी की मोहर भी रखी है।

गुरू गोविन्दसिंह ने अपने संकल्प के अनुसार वीर पिता के सामने की गई वीर प्रतिज्ञा के अनुकूल, जनता की अत्याचारियों से रक्षा करते हुए प्राण विसर्जन किये और ऐसी शक्ति पैदा की जिसने समयान्तर में अत्याचारियों को उनके किये पापों का समुचित दण्ड दिया; और मुगल बादशाही की जड़ों को काट दिया।

*मि० लतीफ़ के अनुसार गुरु गोबिन्दसिंह जी ने मरते समय यह सवैया पढ़ा था :—

पाय गहे तुमरे जब ते तब ते कुज अंख तेरी नहि आनिओ।
राम रहीम पुरान कुरान अनेक कहें तब एक न मानिओ॥
सिमरति शासतर वेद सबि बहुभेद कही हम एक न मानिओ।
श्री असपान कृपा तुमरी करसी न, कह्यो सब तोहि पहिचानियो।

[३]
वीरबन्दा

वज्रादपि कठोराणि मृदूनिकुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को नु विज्ञातु मर्हति ॥*

रियासत जम्मू के पुंछ प्रदेश के राजौरी ग्राम निवासी रामदेव राजपूत के घर १३ सुदी सम्वत् १७२७ को लछमनदेव का जन्म हुआ था। एक दिन जंगल में शिकार खेलते हुए गर्भिणी हिरणी के अपने तीर द्वारा मारे जाने पर हृदय में दया और आत्म-ग्लानि का भाव पैदा हुआ, और वैराग की भावना से घर त्याग दिया। जानकीप्रसाद नामी वैष्णव साधु को गुरु बना उसका चेला बन गया। उसने इसको माधोदास नाम दिया। भ्रमण करते हुए दक्षिण देश की ओर गया। वहां गोदावरी के तट पर कुटिया बना कर डेरा लगाया। वहां अपने आश्रम की आन-शान बढ़ा कर जादूगर साधु बन कर रहने लगा। इसके चमत्कारों की चर्चा दूर-दूर तक फैल गई। राजपूत घर में जन्म होने से शस्त्र विद्या और अश्व विद्या में प्रवीण तो था ही, अब योग सिद्धियां प्राप्त कर—वीर जादूगर भी बन गया। शस्त्र और मंत्र की सिद्धि से पूर्ण सिद्ध बन गया।

उज्जैन में गुरु गोविन्दसिंह की दाऊद पंथी गुरु नारायणदास से भेंट हुई। वह रामेश्वर की यात्रा से लौट रहा था। गुरु ने पूछा—उधर क्या देखा। नारायण ने कहा कि और तो सब मिट्टी

* वीर पुरुषों के हृदय फूल से भी ज्यादा कोमल और वज्र से भी अधिक कठोर होते हैं। इनकी गहराई और महिमा को विरले ही समझ सकते हैं।

पत्थर थे किन्तु नादेर में एक वैरागी महन्त है जो अद्वितीय है। जिन्न और भूत इसके नौकर हैं। वे इसके वश में हैं बस वही पुरुष देखने योग्य है।

गुरू जी घूमते हुए उसके मठ में जा निकले। 'अहमदशाह बटाला की पुस्तक, ज़िकर गुरुआं' में दोनों का निम्नलिखित संवाद लिखा है।

माधोदास—आप कौन हैं।

गुरु जी—वही जिसको आप जानते हो।

माधोदास—मुझे क्या पता।

गुरु जी—दिल में विचारो और फिर बताओ।

माधोदास—कुछ सोच कर—क्या आप गुरु गोविन्दसिंह हैं।

गुरु जी—हां—दोनों में परिचय हो गया। गुरु गोविन्द ने पंजाब की अवस्था—उसके सामने रखी। अपनी आप बीती सुनाई। मातृ भूमि के कष्टों को सुनकर वैरागी का हृदय क्षत्र क्रोध से धधक उठा। उसने कहा गुरू जी आज्ञा करो मैं आप का बन्दा हूँ—गुरू जी उसकी शस्त्र और मंत्र सिद्धि से प्रभावित हुए। गुरु जी ने बन्दे को अपने पांच सिक्खों (बाबा विनोदसिंह, कान्हसिंह, बाजसिंह, रामसिंह और विजयसिंह) के साथ भेजा और आदेश दिया पंजाब में सब कार्य इन पांच प्यारों (गुरमता) की सम्मति अनुसार करने। अपने आप को स्वतंत्र बनाने की कोशिश न करनी—'आप का बन्दा बन कर रहूंगा' का वचन देकर बन्दा पंजाब की ओर प्रस्थित हुआ। गुरू जी ने भी पंजाब में अपने आज्ञा पत्र लिख दिये कि सब सिक्ख बन्दे को धर्म युद्ध में सहायता दें, और उसके झंडे के नीचे इकट्ठे हों। बन्दे ने भी घोषणा कर दी कि अत्याचारियों को दण्ड दिया जायगा। लूट का

सामान सब में बराबर बांटा जायगा। गुरु तेगबहादुर और गुरु पुत्रों के मारने वालों को उचित दण्ड दिया जायगा। सिक्ख, धीरे २ बन्दे के झंडे नीचे शस्त्र बद्ध होकर इकट्ठे होने लगे। बन्दा-खालसा वीरों के साथ कैथल के पास पहुंचा तो पता लगा कि पंजाब से दिल्ली की ओर शाही खजाना जा रहा है—बस एक दम धावा बोल दिया। लूट साथियों में बराबर बांट दी। धीरे २ बन्दे की सेना दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी।

इसके बाद समाना की तरफ़ कूच किया। यहां गुरु तेगबहादुर जी का घातक जलालदीन रहता था। रात के पिछले पहर शहर पर हमला कर दिया—शहर में—कतल-आम की आज्ञा फेर दी। किसी को संभलने या भागने का मौका ही नहीं मिला। इस विजय से जनता के हौंसले बढ़ गये। हज़ारों हिन्दू अमृत छक के वीर बन्दे की सेना में भर्ती होने लगे। 'पाहुल' का संस्कार सेना में भर्ती होने का संस्कार बन गया। इसके बाद गुरु पुत्रों के कातिल सामलवेग और बस्सलवेग भी कतल किये गये।

इसके बाद सरहिन्द के सूबेदार वज़ीरखां का कतल करने की घोषणा की गई। हज़ारों सिख इस धर्म युद्ध में शामिल होने के लिये बन्दे के झंडे नीचे आने लगे।

कुंजपुरे पर चढ़ाई की गई। यह स्थान सूबा सरहिन्द वजीरखां की जन्म भूमि थी। वजीरखां ने इसकी रक्षा के लिये ५ सौ सवार भी भेजे—तरह २ का प्रबन्ध किया—परन्तु बन्दे की फौज के हमले से वह भी मैदान छोड़ गये। इस शहर को बिल्कुल मटियामेट और तबाह कर दिया।

हिन्दुओं ने बन्दे के पास आके सूचना दी कि लाहौर का

शासक असमानखां हमें शव जलाने नहीं देता और हमारे सामने गो हत्या करता है।

इसने दशम पादशाह की सहायता करने वाले पीर बुद्धूशाह को कतल कर दिया था। यह सुनते ही बन्दे ने अपना घोड़ा सढ़ौरे की तरफ मोड़ा, खालसा फौज भी पीछे पीछे उधर बढ़ी। वहां के नवाब ने मुसलमानों को इकट्ठा करके मुकाबला किया। दिन भर युद्ध होता रहा। अंधेरा होते २ खालसा हल्ले के साथ शहर में घुस गये। भयंकर मारकाट मचा दी। लाशों के ढेर लग गये। असमानखां को पकड़ कर वृक्ष से बांध कर जीते जी जला दिया; मुखलिसगढ़ का किला बन्दे के आधीन हो गया।

इसके बाद एक दिन वीर बन्दा ने सरहिन्द पर चढ़ाई करने का ऐलान कर दिया। इधर वजीरखां ने भी आत्म रक्षा की तैयारी शुरु की। शाही फौज की सहायता के साथ २ जहादी झंडा खड़ा करके, मुसलमानों को विशेष रूप से उकसाया। उधर सिक्ख, बन्दे के झंडे के नीचे गुरू पुत्रों की हत्या का बदला लेने के लिये प्राणों को हथेली पर रख कर एक दूसरे से आगे बढ़ कर, मैदान में उतरे।

वजीरखां ने सरहिन्द से आगे बढ़ कर 'चपड़ चिड़ी' स्थान पर सिक्ख फौज के साथ मुठभेड़ की। दोनों ओर से जी जान पर खेल कर युद्ध शुरू किया गया। सिक्ख तीरों की और गोलियों की वर्षा कर रहे थे; परन्तु शाही जंजीरदार गोलियों के सामने उनकी कुछ पेश न जाती। जान पर खेल रहे थे—पीछे किसी का पैर नहीं मुड़ता था—रण भूमि पर मृत शरीरों के ढेर लग गये। अन्त में सिक्ख सेना शाही तोपों की मार से घबरा गई। बन्दा वहां से दूर खड़ा युद्ध देख रहा था—सिक्खों के घबराने का

समाचार मिलते ही घोड़े पर सवार हो बन्दे ने अचूक बाण वर्षा शुरू कर दी। बन्दे के बाण बिजली और आग बरसाते थे। इन की मार से तोपें चलाने वाले—शाही तोपची एक २ करके धराशायी होने लगे। युद्ध स्थान पर पहुँच कर हाथ में तलवार ले शत्रु सेना पर टूट पड़ा—मुसलमान उसको देखते ही भूत प्रेत से भयभीत हुए—इधर उधर भागने लगे। सिक्ख सेना भी फिर संभल कर उत्साहित होकर बादशाही फौज पर टूट पड़ी। शाही फौज मैदान छोड़ भागी। वजीरखां का हाथी भागा जा रहा था—वजीरखां हाथी से नीचे गिर पड़ा सिक्खों का कैदी हो गया। बन्दा ने सरहिन्द में प्रवेश किया। खुली मार काट की आज्ञा दी। जो सामने आया कतल किया गया। पठान स्त्रियां और अमीरज़ादियां प्राण रक्षा के लिये गली २ भटकने लगीं। मां पुत्र, लड़की किसी की रक्षा न कर सके। सिक्ख सिपाहियों ने शहर में भयंकर लूट मार मचा दी। चौथे दिन किले में कैद किये गये अपराधी बन्दे के सामने पेश किये गये। एक २ करके सब तलवार के घाट उतारे गये।

इसके बाद दीवान सुचानन्द, जिसने 'सांप के बच्चे सांप होते हैं' कह कर गुरु पुत्रों को मरवाया था—को परिवार सहित मरवा दिया गया। उसकी हवेलियां भूमिसात् कर दीं। आठवें दिन वजीरखां बन्दे के सामने पेश किया गया, उसे जूतों के स्थान पर परिवार समेत बैठाया। इसके बाद वजीरखां के पैरों में रस्सा बांध कर सरहिन्द की गलियों में घुमाया। गली २ में उस पर धिक्कार पड़ती थी। अन्त में उसे जीते जी आग में जला कर पापों का दण्ड दिया। लगते हाथ विश्राम घाती गंगू ब्राह्मण को भी मार कर उसके गांव खेड़ी को बरबाद कर वहां सहोड़ी नाम का गांव

बसाया। इन घटनाओं को सुन कर बादशाह बहादुरशाह क्रोध से काँप उठा। पंजाब के मुख्य २ शहरों के सूबेदार भी बन्दे से थरथर कांपने लगे। दिल्ली में माता सुंदरकौर के पास बंदे से बचाने की प्रार्थना की—परन्तु वह बेबस थीं—उन्होंने कहा मैं क्या करूं वह गुरू जी की आज्ञानुसार दण्ड दे रहा है। गुरू जी के हुक्मनामे से, दिल्ली के समीप सुनहिर और खंडा गांव के बीच सिक्ख सर्दार इकट्ठे हुए थे। इनमें मुख्य २ व्यक्ति यह थे—सरदार धर्मसिंह, फतहसिंह, करमसिंह, चढ़तसिंह आदि मालवे से आए थे। आलासिंह, मानसिंह बहादुर सलौदी के सिक्खों के साथ आए। चौधरी तिलोकसिंह, चौ० रामसिंह ने भी गुप्त रूप से पर्याप्त सहायता की। लगभग २५०० सिक्ख इकट्ठे हो गये। बन्दा बहादुर ने आठ सालों में अत्याचारी शासकों को खतम कर दिया और जो प्रदेश जीतता गया इन सर्दारों को बांटता गया—आप स्वतंत्र विचरता रहा। इस प्रकार बन्दे ने ही इन सर्दारों द्वारा सिक्ख मिसलों की नींव डाली।

सन् १७१४ ई० में वैरागी ने अमृतसर में एक बड़ा भारी दीवान लगाया। सरदारों को जागीरें दीं। अमृतसर नगर को पूर्ण स्वतंत्रता दे दी। नई सेना भर्ती करनी शुरू की। तत्पश्चात् पटियाला गुरुदासपुर पठानकोट के इलाकों पर अधिकार जमाया। गुरदासपुर में एक दुर्ग बनाया जिसमें युद्ध सामग्री खूब इकट्ठी की। पंजाब के अन्य भागों में भी दौरा लगाकर उन्हें अपने राज्य में मिला लिया।

फरुखसीयर ने देखा रणाँगण में वैरागी को जीतना मुश्किल है। उसने हिन्दू मंत्री रामदयाल को माता सुंदरी के पास भेंटें देकर भेजा और कहा कि वैरागी अकारण प्रजा को तंग कर रहा

है, गुरु आज्ञानुसार अपराधियों को दण्ड दिया जा चुका है अब वह स्वयं गुरु बनना चाहता है। बादशाह सिक्खों को जागीरें देने को तैयार है। पत्र लिखकर बन्दे को इन कार्यवाहियों से मना करना चाहिए।

माता के साथ भाई मानसिंह और भाई सदकीसिंह थे। उन्होंने माता को समझाया। बादशाह की चालों से सावधान किया। परन्तु वह न मानीं। उसने बादशाह की इच्छानुसार बन्दे को निम्न भाव का पत्र लिख भेजा "तुम गुरु के सच्चे बन्दे साबित हुए हो, तुम ने पंथ की बड़ी सेवा की है। अब बादशाह जागीर देने को तैय्यार है। लूट मार बन्द कर दो"। वीर वैरागी ने यह पत्र दरबार में सुनाया।

स्त्री की मति उसकी खुरी में होती है। माई तुर्कों के छल को क्या समझ सकती है। क्रोध में वैरागी ने निम्नलिखित उत्तर लिखा। 'आपका पत्र लिखना व्यर्थ है। मैं वैरागी हूं आप सिक्ख हैं। गुरु गोविन्दसिंह मुझे मिले थे। मैंने उनके आदेश से गुरु पुत्रों की हत्या का बदला लिया। मैंने तलवार और तीर कमान के ज़ोर से पंजाब जीता है। लाहौर भी इसी के ज़ोर से जीतूंगा। आप हमें जागीर का लालच देकर मुसलमानों के आधीन करना चाहती हो जब तक गुरु पुत्रों की स्मृति शेष है, हम न टलेंगे। इस पत्र को माता ने अपमान समझा। वन्दा का असली पत्र क्या था यह कहना मुश्किल है। बन्दे ने यह पत्र लिखकर माताओं को बादशाह के सामने अपनी बेबसी प्रकट करने का भी अवसर दिया; परन्तु वह न समझ सकीं। माया जाल में फँस गईं।

बादशाह के मंत्रियों ने इस पत्र द्वारा ख़ालसा वीरों को वीर वैरागी के विरुद्ध भड़काया। माताओं की ओर से सिक्ख

सर्दारों और पंथ को पत्र लिख दिया कि आप में जो गुरु गोविन्दसिंह का सिक्ख है वह वैरागी का साथ न दे—क्योंकि वह अपने आपको सिख नहीं मानता।

ई० स० १७१७ वैशाखी के मेले पर अमृतसर में सिक्ख इकट्ठे हुए। वैरागी भी सिर पर कलगी लगाए, झूलते छत्र के साथ दरबार के नियत स्थान पर बैठ गया। माता के पत्रों के असर से सिक्खों में बन्दा के विरुद्ध तत्खालसा नाम का दल बन गया था। सरदार विनोदसिंह इनका नेता था। बाबा विनोदसिंह और रोहनसिंह ने वैरागी को बांह से पकड़ कर उठा दिया। गड़बड़ मच गई। जो गुरु का सिक्ख है वह इससे अलग हो जाय, इस नारे से कई सिक्ख इसके विरुद्ध हो गये। कइयों ने इसका सामान लूट लिया। परन्तु इससे वैरागी घबराया नहीं। उसने अपनी शक्ति को संगठित करना शुरू किया। बादशाह ने मौका देखकर सेना भेजी। शाही सेना नैनाकोट के समीप आकर रुक गई। इधर वैरागी की सेना भी मुकाबले के लिये आ डटी। उधर 'अल्ला हो अकबर' और इधर 'जय धर्म' के नारे लगने लगे। वीर वैरागी के सामने शाही सेना के पैर उखड़ गये। लाहौर के सूबेदार अस्लमखां को बटाला के पास हराया। बादशाह को हैरानी हुई। वह सोच में पड़ गया कि क्या किया जाय। इधर वैरागी ने सोचा कि विजय के प्रभाव को स्थिर करने के लिये लाहौर को जीतना आवश्यक है। उसने समझा कि जब तक लाहौर पर अधिकार न किया जायगा तब तक स्थिर रूप से शत्रु का दमन नहीं हो सकता।

यह निश्चयकर उसनेलाहौर की ओर अपनी सेनाओं की बागडोर मोड़ी। उधर बादशाह ने मंत्रियों से सलाह की कि क्या किया

जाय। उन्होंने कहा जब तक तत्खालसा को साथ न मिलाया जायगा तब तक बन्दा को जीतना कठिन है।

इस पर बादशाह ने इन शर्तों द्वारा तत्खालसा को फंसाया।

(क) कोई बादशाह सिक्खों की जागीर न छीन सकेगा।

(ख) किसी हिन्दू को ज़बर्दस्ती मुसलमान न बनाया जायगा।

(ग) कोई मुसलमान किसी हिन्दू के सामने गोवध न कर सकेगा।

(घ) शाही राज्य में सिक्ख कभी लूट न करेंगे।

(ङ) कोई सिक्ख वैरागी का साथ न देगा।

(च) यदि कोई शत्रु लाहौर पर चढ़ाई करेगा, तो लाहौर के शासक की सहायता की जायगी। इसी के साथ फरुखसैयर ने अमृतसर में बैठे बिठाए तत्खालसा को १० हज़ार रुपये देकर संधि स्वीकार करा ली।

यह संधि केवल एक माया जाल था। सिक्ख इस में फंस गये। कई सिक्खों को माफियां दी गईं। नानकसिंह, फतहसिंह आदि को लाहौर की सेना में ऊंचे ओहदे मिल गये।

लाहौर के सूबेदार अस्लमखां के पास दस हज़ार सेना थी, परन्तु तत्खालसा ने सहायता देने की प्रतिज्ञा की थी। इसने लाहौर पर वैरागी द्वारा हमले की बात सुनते ही उनको बुला भेजा। ५००० के लगभग खालसा लाहौर के सूबेदार की सहायता के लिये आ गए। हरेक सैनिक को आठ आने और हवालदार को एक रुपया वेतन मिलने लगा। इनका मुखिया मीरसिंह खालसा था। मुसलमान सेना और वैरागी की सेना में खूब मुकाबला हुआ मुसलमान सैनिकों की लाशों से मैदान भरने लगा। लाचार नवाब ने खालसा सेना को बैरागी के मुकाबले में

भेजा। उन्हें देखते ही वैरागी का दिल टूट गया। वर्षों जिनके दाएं बाएं होकर रण में तलवार चलाई थी आज उन पर वैरागी की तलवार न चली। निराश चिन्तित वैरागी गुरुदास पुर वापिस आ गया। सम्वत् १७१६ वि० की इस घटना ने पंजाब के इतिहास के रुख को बदल दिया। लाहौर मुसलमानों के हाथों में ही रहा।

वैरागी ने रणाँगण से लौटते ही खालसा को प्रसन्न करने का यत्न किया। उनको समझाया कि आप लोग धोखे में आए हैं। गुरु गोविन्दसिंह के संदेश को समझो! शत्रु का साथ छोड़ दो। खालसा ने वैरागी की चिट्ठी सुनी। सब चुप रहे किन्तु निहंग सिक्खों ने कहा इसने गुरु का वचन तोड़ दिया है हमारा इसका मेल कैसे। कलगी उतार दे अमृत चख ले। वैरागी ने इसे अपना अपमान समझा। विजय चिन्ह को छोड़ने से इसका रोबदाब कम हो जाता था। लाचार वैरागी ने कर्तव्य पथपर चलना ही उचित समझा। पंजाब में पंजाबियों का राज्य कायम करने के लिये कलानौर पर चढ़ाई की। नवाब फतेहदीन रुपये और घोड़ों की भेंट लेकर आया। अधीनता स्वीकार की। स्याल कोट भी बिना विरोध के जीता, इसी प्रकार वज़ीराबाद, गुजरात के प्रदेश भी जीते—कहीं कोई इसके सामने नहीं ठहर सका। वैरागी की इस सफलता को सुनकर बादशाह चिन्तित हो गया। उसने सोचा यदि वीर वैरागी को न रोका गया तो फिर यह लाहौर पर अधिकार कर लेगा। इस लिये इस भय को दूर करने के लिये उसने १७२० ई० में अब्दुल समन्दखां को तीस हज़ार सेना के साथ दिल्ली से रवाना किया और दूसरे अफसरों को भी अपनी अपनी फौजों के साथ वैरागी के विरुद्ध भेजा।

लाहौर के सूबेदार अब्दुलसमदखां ने दुर्रानी सिपाहियों का साथ तोपख़ाना लेकर लाहौर से प्रस्थान किया। औरंगाबाद के फौजदार पीर अहमदखां के आधीन शाही फौजों के साथ उसे मिल गया। सिक्खों ने गुरदासपुर लोहगढ़ किले में अपना मुख्य स्थान बनाया। किले के चारों ओर खाई खोद कर उसमें अड़ोस पड़ोस की नहरों से पानी भर दिया। दोनों का मुकाबला हुआ, बन्दा ने वीरता के अपूर्व करतब दिखाए परन्तु शाही सेना की संख्या के सामने देर तक न टिक सके। शाही फौज को सिक्खों के सख्त मुकाबले में काफी नुकसान उठाने पड़े। सिक्ख कदम कदम पर धकेले जाकर लोहगढ़ में रुके। यहां सुरक्षा और युद्ध का सब सामान था। शाही सेना ने काफ़ी दिनों तक घेरा डाला। बाहर से याता-यात बन्द कर दिया गया। सामान तथा रसद समाप्त हो गई। आख़िर घिरे हुए सिक्ख भूख प्यास से तंग आकर घोड़ों और गधों को मार कर खाने लगे। इन तकलीफ़ों से तंग आकर बन्दे के विश्वासपात्र भी उसे छोड़ने लगे। यह लोग जंगलों तथा उजड़े गांवों में सिर छिपाने लगे परन्तु शाही सेना ने ढूँढ ढूँड कर इन्हें यमलोक भेजा।

बन्दा ने भूखा मरने और आत्म समर्पण में से, आत्मसमर्पण करना स्वीकार किया।

बन्दे ने अपने साथियों समेत आत्मसमर्पण कर दिया। सब को जंजीरों और बेड़ियों में जकड़ा गया। लाहौर भेजा गया। कइयों के हाथ पांव बांध कर शाही सेना के सुपुर्द किया। नवाब के आदेश पर उनके सिर काट कर उन्हें रावी दरया में फेंक दिया।

इसके बाद अब्दुलसमदखां ने बन्दा के साथियों के साथ लाहौर में प्रवेश किया। उन सबको लंगड़े जीर्णशीर्ण भूखे गधों

और ऊंटों पर सवार कराया। सिर पर कागज़ की टोपियां रखीं। इस दशा में उन्हें लाहौर की गलियों में घुमाया, जनता ने उनका मज़ाक किया और उन्हें अपशब्द कहे। इस अरसे में वज़ीरखां की मां ने अपने पुत्र की मौत का बदला लेने के लिये बाजसिंह (यह बन्दे का प्रारम्भ से साथी था) पर भारी पत्थर फेंककर उसे मार दिया। शेष को हाथीखाने में रखा। अगले दिन प्रात:काल सेनापति ने उन कैदियों को अपने पुत्र जकरियाखां और कमरुद्दीनखां के कड़े पहरे में रखा। ७०० कैदी दिल्ली भेजे गये। बन्दे को लोहे के जंगले में बन्द किया गया।

वैरागी के साथ ७०० कैदियों को काज़ी की अदालत में पेश किया गया। काज़ी ने कैदियों से कहा कि यदि तुम इस्लाम स्वीकार कर लो तो तुम को प्राण रक्षा दी जा सकती है। वीर कैदियों ने इसे अपना अपमान समझा। और कहा प्राण लेने देने वाला परमात्मा ही है, तुम कौन हो ! हमने अपने कर्तव्य का पालन करते हुए अत्याचारियों का अन्त किया है। तुम जो चाहो सो करो। इस पर सबको प्राण दण्ड दिया गया। प्रतिदिन १०० कैदियों को कोतवाली के सामने लाकर तलवार के घाट उतारा जाता था। सात दिन तक इसी प्रकार १०० कैदी रोज़ाना बलिदान हुए। इन कैदियों ने लापरवाही और शहीदों की तरह मौत का स्वागत किया। एक १६ वर्ष के युवक कैदी की मां ने जल्लाद से विनती कर अपने पुत्र को छुड़ा लिया, उस की बारी आई जल्लादों ने उसे छोड़ दिया। वीर युवक ने पूछा मुझे क्यों छोड़ दिया उन्होंने कहा तुम्हारी माता ने तुम्हारे लिये प्राण भिक्षा मांगी है। उस वीर ने माता से कहा ! मां तू मुझे स्वर्ग की सीढ़ी से उतार कर नरक की नाली में मत डाल। मुझे

इस वैतरनी-रक्त नदी में स्नान करने दे। इन वीरों ने आनन्द पूर्वक मौत का अभिनन्दन किया। कई वीर एक दूसरे से आगे बढ़ कर मौत का आलिंगन करने को अधीर होते थे। मुसलमान ऐतिहासिक। मि० लतीफ ने इन वीरों की वीरता का वर्णन इसप्रकार किया है।

They met their doom with utmost indifferences. Nay ! They even clamoured for priority of martyrdom. इन वीरों ने लापर्वाही से मौत का स्वागत किया—यहीं नहीं अपितु परस्पर शहादत का अमृत पीने के लिये एक दूसरे से आगे बढ़कर उत्सुकता प्रकट करने लगे।

अन्तिम दिन वैरागी को दरबार में लाया गया। लोहे के पिंजरे में से उसे खींचकर निकाला गया। दरबारी मुसलमान उसे देखकर भयचकित हो रहे थे। उसके चारों तरफ़ भालों पर उसके ७०० साथियों के सिर लटकाए गये—एक भाले पर उसकी प्यारी बिल्ली का सिर भी लटकाया गया। काजी ने प्राण दण्ड की आज्ञा सुनाई। बादशाह ने पूछा—तुम कैसी मौत मरना चाहते हो। दरबारियों में से एक ने पूछा तुमने इतने ज्ञानी विद्वान् होते हुए ऐसे नारकी अत्याचार क्यों किए। बन्दे ने निर्लेप निर्मोही ज्ञानी की भांति उत्तर दिया। बादशाह ! तुम जिस तरह मारना चाहते हो मारो मेरे लिये मृत्यु कोई चीज़ नहीं ! मेरे गुरू ने मुझे—मृत्यु से न डरने का आदेश देकर भेजा था। मैं परमात्मा के हाथ में पापियों अत्याचारियों को दण्ड देने का साधन था। मुझे सन्तोष है कि मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया है। निरीह बच्चों पर जुल्म करने वालों, निशस्त्र जनता पर अत्याचार करने वालों—को समाप्त करके संसार से बिदा हो रहा हूं। आज मेरे लिये जीवन मृत्यु

बराबर है। मुझे सन्तोष है कि गुरु तेगबहादुर के कातिल-गुरु पुत्रों के प्राण हर-मेरे हाथों नारकी दण्ड पा चुके हैं। जिस राजशक्ति के आधीन यह पाप हुए थे उसकी जड़ें हिल चुकी हैं; अब वह अन्तिम सांसों पर है। बादशाह तू जैसे चाहे कर। बादशाह ने उसके छोटे बच्चे को उसकी जांघों पर रखा और बन्दे को आज्ञा दी कि छुरे से इसका बध करो। निर्दोष बाल हत्या से वैरागी को कलंकित करना चाहा-वैरागी ने इनकार किया। इस पर जल्लाद ने बादशाह की आज्ञा से उस बालक के टुकड़े कर उसको वैरागी की छाती पर दे पटका। वैरागी चुपचाप देखता रहा। इसके बाद उसे जंगले से बाहर निकाला गया-लाल लाल तपती तपती लोहे की सींकचों से उसके शरीर को दागना शुरू किया। लाल चिमटों से उसके शरीर को नोचना शुरू किया-नोच २ कर उसके मांस को अलग किया उसका शरीर केवल अस्थि पञ्जर रह गया। इस दारुण कष्ट से भी उसके मुँह से आह तक न निकली। नजीबुद्दौला ने पूछा-इतने कष्ट सहकर भी तुम प्रसन्न हो! वैरागी ने कहा यह सुख दुःख शरार के धर्म हैं इन का आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं-मैं आत्मा हूं-शरीर छूट रहा है इसने आज नहीं, कभी न कभी तो छूटना ही है-इसके बाद उसके शेष अस्थि पिंजर को हाथी के पैरों तले रुंदवा कर समाप्त किया। वैरागी ने १७६० ई० में सच्चे निष्काम सेवक का उदाहरण संसार के सामने रख कर ७० वर्ष की आयु में अपनी लीला संवरण की।

× × × ×

वैरागी को समाप्त कर दिल्ली लाहौर के मुसलमानों ने सिक्खों को नायकहीन समझकर-उन्हें समाप्त करने की योजनाएं बनानी शुरू की। दिल्ली लाहौर दोनों स्थानों से सिक्खों के सर्वनाश के लिये दमन-चक्र चलने लगे। अब सिक्खों को वैरागी की कीमत

और दूर-दर्शिता का अनुभव हुआ। वैरागी के सिवाय कोई ऐसा शक्ति-शाली व्यक्ति न था जो सिहों को नियंत्रण में रखता और दुश्मनों को कदम कदम पर मुंह की मार देता।

इसी समय १७८२ में अमृतसर में दीवाली मनाई गई। वैरागी और तत्खालसा इकट्ठे हुए। भक्तों ने भेंटें चढ़ाईं! इसका बटबारा कैसे हो। लक्ष्मी की चमक–ने दोनों पक्षों को अंधा कर दिया दोनों तलवारें लेकर एक दूसरे को समाप्त करने पर तुल गये–भाग्यवश वृद्ध बाबा मणिसिंह वहीं था। वह बोला–सुनो सँभलो! गुरु गोविन्दसिंह के संदेश को याद करो। शत्रु ने हम में फूट पैदा कर दी है। गुरमता के संदेश को सुनो एक होकर शत्रु का मुकाबला करो, नहीं तो शत्रु के अत्याचारों से मिट जाओगे। उपस्थित जनता ने बाबा जी से कहा, आप जो करें हमें स्वीकार है।

बाबा जी ने कागज के दो टुकड़ों पर–वाह गुरू की फतह और दर्शनी फतह लिखकर दोनों को स्वर्ण मंदिर के पास की सीढ़ी के पानी में छोड़ दिया–कहा यदि दोनों तैरते रहे तो दोनों में चढ़ावा बराबर बटे। जो कागज पहले डूबेगा–उसका कोई अधिकार न रहेगा। तत्खालसा का कागज तैरता रहा। बन्दे का कागज डूब गया। बन्दे के अनुयाइयों में से अधिकांश तत्खालसा में मिल गये। घर की फूट–गुरमता–की सलाह से इस प्रकार शान्त हुई। बाबा मणिसिंह ने–अपनी दूरदर्शिता से–आपस में लड़ते हुए सिक्ख भाइयों को फिर से एक कर दिया।

फरुकसीयर की चालें बेकार हुईं। खालसा फिर एक झंडे के नीचे इकट्ठा हो गया और वाह गुरू की फतह के नारे से पंजाब को गुंजा दिया।

भाई परमानन्द जी और मि० लतीफ की पुस्तकों के आधार से।

(१)

वीरटोलियां अमृतसर से लाहौर की ओर

एक बार गुरुनानक को प्यास लगी। उन्होंने बाबा बुढ्ढा को (जो पास के गांव में अपने पशु चरा रहा था) पास के तालाब से एक वर्तन में पानी लाने को कहा था। बुढ्ढा ने कहा कि वह तालाब सूखा है। नानक ने कहा जाओ और देखो तालाब सूखा नहीं है। बाबा बुढ्ढा वहां गया और उसने आश्चर्य के साथ देखा, कि तालाब में पानी भरा हुआ है, यद्यपि प्रातःकाल वहां पानी की बूंद भी न थी। इस पर बुढ्ढा नानक के लिये पानी लाया और उनका शिष्य बन गया। यही स्थान समयान्तर में अमृतसर नाम से प्रसिद्ध हुआ।

गुरु रामदास एक बार लाहौर अकबर को मिले। उसने प्रसन्न होकर गुरु रामदास को एक वर्तुलाकार भूमि का टुकड़ा भेंट दिया। लोग इसे 'चक्कर रामदास' कहने लगे। यहां रामदास ने एक पुराने तालाब का जीर्णोद्धार कराकर इसका नाम अमृतसर रखा। इसी तालाब के मध्य में उसने एक मन्दिर बनाया। इसे हर मन्दिर कहा जाने लगा। इस तालाब के चारों ओर साधुओं की कुटिया और छोटे २ मन्दिर भी बनाए गये। उनमें समय २ पर गुरु के सिक्ख और अनुयाई आकर रहते थे। गुरु स्वयं भी गोंदवाल से आकर रहते थे। धीरे २ यह स्थान 'गुरु की चक' से, अमृतसर कहलाने लगे।

इसी अमृतसर में ही आदि ग्रन्थ की रचना की गई। जब गुरु ग्रन्थ साहब के हरेक शब्द और श्लोक का स्थान नियत कर उसमें आवश्यक शुद्धि कर ली गई; तो लिखने के लिये अमृतसर का स्थान चुना गया। उन दिनों अमृतसर एक साधारण सा गाँव था। आजकल जहां रामसर है, वहाँ उन दिनों बेरियां और किक्करों का घना झुर्मुट झुंड था। यहाँ एक छोटा सा छप्पड़ (तालाब भी था) गुरु अर्जुनदेव जी बाबा बुड्ढा और भाई गुरुदास को लेकर यह स्थान देखने आए। उन्हें यह एकान्त छाया वाला स्थान पसन्द आया। छप्पड़ को साफ़ कराया। एक स्थान चुनकर वहां अपने लिये तम्बू लगा के उसके सामने कनातें लगा कर, सेहन बना दिया। कुछ दूरी पर भाई गुरुदास के रहने के लिये तम्बू था—और वहीं दूसरे सेवादार टहल करने वाले सिक्खों के रहने के लिये प्रबन्ध किया गया।

इस रायसर से मतलब दरबार साहब वाले सर से ही हो सकता है। उसके एक तरफ 'मंज़ीसाहिब' था। यह मंजीसाहब उन दिनों गुरुद्वारा और धर्मशाला का काम देता था। निश्चय किया गया कि कोई भगत गुरु जी को मिलने राससर न आए। गुरु जी स्वयं ही भक्तों को दर्शन देने तीसरे पहर मंजीसाहब जाते थे। और सायंकाल होने तक रायसर वापिस आ जाते थे। गुरु ग्रन्थ साहब की लिखाई का काम दोपहर होता था। तदनन्तर मंजीसाहब जाते थे। समय बीतने पर लिखाई का काम समाप्त होने पर खुशियां मनाई गई, और कड़ाह प्रसाद भक्तों में बांटा गया। इस असल ग्रन्थ साहब की कथा अमृतसर में होती रही। यह आदि ग्रन्थ गुरुओं के साथ पालकी में रखकर जहां वह जाते थे, साथ ले जाया जाता था। नवें गुरु तेगबहादुर तक यह क्रम जारी रहा।

तदनन्तर सतलज में आदि ग्रन्थ के जल प्रवाह के बाद गुरु अर्जुन देवजी के सामने गुरुदास द्वारा लिखित प्रति विलुप्त हो गई। इस इस समय की साहित्यिक और प्रान्तीय भाषा का स्वरूप इस आदि ग्रन्थ में मिलता है।

समय समय पर हरेक सिक्ख अमृतसर आकर अपनी भेंटें अर्पित करता था। गुरु हरगोविंद के समय भी इसकी वृद्धि हुई। उनकी एक मुसलमान शिष्या की स्मृति में यहां कौलसर भी बनाया गया। भक्तों की टोलियों के लिये अमृतसर तीर्थ स्थान बन गया। इसकी दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति होने लगी। गुरू तेगवहादुर भी यहां आए। बन्दा वैरागी भी वैसाखी और दिवाली को यहां आकर 'गुरमता' में उपस्थित होते थे। गुरू गोविंदसिंह के बाद गुरमता और ग्रन्थ साहब ने गुरुओं का स्थान लिया और इनका मुख्य स्थान अमृतसर बन गया। अमृतसर में ही मुख्य २ सिख सर्दार इकट्ठे होकर अपना कार्य-क्रम बनाते थे। वहीं से मिसल नाम की वीर टोलियां संदेश लेकर कार्यक्षेत्र में उतरती थीं। अमृतसर सिक्खों की धार्मिक राजधानी बन गया। सिक्खों के बड़े २ नेता यहां अपना मुख्य स्थान बनाते। महाराजा रणजीतसिंह यहाँ वैसाखी दिवाली पर भेंट चढ़ाते थे। कहा जाता है कि कोहनूर हीरे की भेंट भी चढ़ाने लगे थे। सिक्खों के विरोधी दुर्रानी भी इसके महत्व को समझ कर, सिक्खों का दमन तथा सर्वनाश करने के लिये इसी शहर पर हमला करता था। सिक्ख वीर टोलियां इसकी रक्षा करती, और यहां से पंजावके विविध स्थानों पर विजय यात्रा के लिये कूच करतीं। यहीं से लाहौर पर आक्रमण होने की तैयारियां होती थीं। गुरु गोविंदसिंह ने पंजाब के सिक्खों को बन्दावैरागी के, साथ मिलकर

गुरु तथा गुरु पुत्रों की हिंसा का बदला लेने के लिये हुक्मनामे भेजे थे। बन्दे ने इनके साथ मिलकर पंजाब के दौरे भीकिये। इन दौरों में विजित प्रदेशों पर वीर सिक्खों को तैनात कर स्वयं वैरागी पहाड़ों पर चला जाता था। विविध प्रदेशों के यह सिक्ख शासक ही समयान्तर में वीर टोलियों (मिसलों) के नेता बने इनके अपने नाम से, या अपने गांवों के नाम से इन वीर टोलियों के नाम पड़े। बन्दे की मृत्यु के बाद दिल्ली की बादशाहत घरेलू झगड़ों में उलझ कर कमज़ोर हो गई थी। उसे हथियाने के लिये मराठे और अफग़ान कोशिश कर रहे थे। दिल्ली वालों को फुर्सत न थी कि पंजाब के मामले में हस्ताक्षेप करते—उधर अफगागिस्तान के दुर्रानी–अब्दाली-दिल्ली को हथियाने, मराठों को पराजित करने के लिये अपने अनुकूल लाहौर में सूबेदार नियत करते थे। यह लाहौर के सूबेदार अपनी सूबेदारी को पक्का तथा सुरक्षित करने के लिये कभी दिल्लीके बादशाह का साथ देते, कभी अफ़गानिस्तान के अब्दाली का; कभी अदीनाबेग जैसे सूबेदार दोनों दिल्ली,और अफ़गानिस्तान को चकमा देने के लिये, सिक्खों और मराठों का आश्रय ढूँढते। उनके सहारे अपनी शक्ति को कायम करते। सिक्ख सर्दार मौका देख कर कभी अब्दाली पर हमला करते कभी पंजाब के शासक पर; और कभी दिल्ली की की शाही सेनाओं पर। उनका लक्ष्य यह था की लाहौर पर—सिक्खोंके गुरमता के सर्दारों का अधिकार हो। १७६१ ई०कीपानी पत की लड़ाई में अब्दाली की पराजय ने भी सिक्खों को पंजाबमें शक्तिशाली बनने में काफी सहायता दी। नादिरशाह के आक्रमण के समय भी इन वीर टोलियों ने उसकी सेनाओं को लूटने में संकोच नहीं किया। अब्दाली तैमूर जमानशाह सबकी सेनाओं

से इन टोलियों ने दो २ हाथकर उन्हें अनुभव करा दिया कि अब यहां तुम नहीं टिक सकते। वन्दावैरागी के नेतृत्व में इन टोलियों ने गुरिल्ला ढंग से छलयुद्ध करनेका हुनर भी सीखा था—मौका देखकर हमला करते थे, मौका देखकर छिप जाते थे। हार कर भी हमला करने से न टलते थे। वन्दावैरागी के वलिदान से लेकर—रणजीतसिंह के महाराजा बनने तक यह टोलियां पंजाब में विचरती रहीं। इन टोलियों के अनेक वीरों ने आत्म बलिदान द्वारा अत्याचारियों के विरुद्ध जनता में भारी असन्तोष पैदा कर दिया था। इन वीरों ने जनता के सामने वीरता का निम्न-लिखित आदर्श रखा और अपने असली जीवन से इसका पालन किया।

सूरा सो पहिचानिए, जु लरै दीन के हेत।
पुरजा पुरजा कटि मरै, कबहू न छोडै खेत ॥(गुरुग्रन्थ साहब)

इन वीर टोलियों का संक्षिप्त परिचय देने के बाद इन टोलियों के प्रसिद्ध वीरों का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया जाता है। इन्हीं दिनों बालक वीर हकीकत ने भी अपना बलिदान दिया था—उसकी समाधि आज भी लाहौर में चमत्कारी वीरता का स्मरण कराती है।

---

[२]

वीर टोलियों की नामावलि

१. भंगी मिसल—इसके प्रवर्तक सर्दार झज्जासिंह (सुखा-भंग पीने का अभ्यासी था) ने गुरू गोविन्दसिंह से पाहुल ली थी। इनका मुख्य स्थान अमृतसर था। गुजरात चन्योट और लाहौर के

तीसरे भाग पर इनका अधिकार रहा। महाराजा रणजीतसिंह ने गुलाबसिंह और गुरदत्तासिंह को निकाल कर इस मिसल को समाप्त किया—इन्हीं के नाम से—अजायब घर के सामने की तोप का नाम भंगियों की तोप पड़ा था। इन्होंने यह तोप अफगानिस्तान के बादशाह जमानशाह के प्रतिनिधियों से छीनी थी।

२. रामगढ़िया मिसल – का मुख्य सर्दार जस्सासिंह ठोका भगवाना था। अमृतसर के रायरौनी का रामगढ़ नाम इसने रखा। इसीसे यह मिसल रामगढ़िया कहलाई मौजा एचोमल में पंजघरिया गुरदयाल ने कपूरसिंह से पाहुल ली थी। इसके आधीन ३००० सिपाही तैनात रहते थे। जोधासिंह के समय महाराजा रणजीतसिंह ने इसे समाप्त किया।

३. कन्हैया मिसल—इसका मुख्य प्रवर्तक जयसिंह था। मौजा कान्ह का रहने वाला था। इसी से मिसल का नाम कन्हैय्या पड़ा, इसने नवाब कपूरसिंह फैजुल्लापुरिया से पाहुल ली थी। इस मिसल के सरदार जैसिंह ने अपनी पोती मिहताब कुंवर का रणजीतसिंह से विवाह किया था।

४. नकिया—हीरासिंह—जाट गोत्रसिंधु प्रवर्तक था। मौजा भड़वाल इलाका 'नका' में रहता था। इसी से इसका नाम नकिया पड़ा।

५. आहलूवालिया:—इसका प्रवर्तक भागू नाम का दुकानदार हुआ। कपूरसिंह फैजलापुर से पाहुल लिया था। लाहौर से पूर्व दक्षिण 'आलू' मौजा में रहता था। भागसिंह की बहन के लड़के जस्सासिंह को कपूरसिंह ने सर्दारी दी। कपूर्थला के महाराजा इसी मिसल के हैं। यह राजा, महाराजा रणजीतसिंह के दोस्त रहे।

६. डल्लेवाल की मिसल—इसका मुखिया गुलाबाखतरी था। दुकान का काम करता था। मौजा डल्लेवाल में रहता था। पाहुल लेकर सिक्ख बन गया। नाम गुलाबसिंह रखा। कई वर्ष तक राज्य किया। आखिर सरदार रणजीतसिंह ने खज़ाना छीन कर इसे समाप्त किया।

७. निशान वालों की मिसल—मुखिया संगतसिंह मेहरसिंह कौम जाट था। इसके आधीन १० हज़ार सवार नौकर थे। अम्बाला, मेरठ तक आक्रमण किया था। अपने साथ एक ऊंचा निशान रखते थे। संगतसिंह के मरने पर मेहरसिंह सरदार बना। उसके मरने पर उसका सारा सामान महाराजा रणजीतसिंह के आधीन हो गया। जब अंग्रेज़ों को और महाराजा रणजीतसिंह के बीच सतलुज हद बनी तब यह इलाका उसमें शामिल हो गया था।

८. फ़ैज़ुल्लापुरियों की मिसल—इसका प्रवर्तक कपूरचन्द था। जालंधर द्वाबा में फ़ैज़ुल्लापुर कस्बा सिंधुपुरी का रहने वाला था। पाहुल लेकर सिक्ख बना था। अपने को नवाब कहता था। लगभग १००० जाट, खतरी, सिक्ख बनाए। गुरु गोविन्दसिंह के कहने पर इसने अनेक मुसलमान कतल किये। इसके आधीन २५०० सवार रहते थे। इसने दिल्ली तक धावा किया था। इसके सवार धनी और बलवान् थे। कपूरचन्द के मरने पर खुशालसिंह नेता बना। सरकार अंग्रेज़ी ने इस वंश को कुछ इलाका मुफ़्त दिया था।

९. करोड़ी सिखों की मिसल—मुखिया प्रवर्तक करोड़मल सिक्ख बनने पर करोड़सिंह कहलाया। इसके आधीन १२०००

सवार रहते थे। इसके मरने पर बघेलसिंह सरदार बना। महाराजा रणजीतसिंह ने इसका इलाका छीन लिया था।

१०. शहीद व नागियों की मिसल—इसका प्रवर्तक सिक्ख गुरबख्शसिंह और कर्मसिंह थे। २००० सवार इनके आधीन रहते थे। इनके बुजुर्गों को मुसलमानों ने कत्ल किया था। इसी लिये इन्हें शहीद कहते थे।

११. फुलकियों की मिसल—इसका प्रवर्तक फूल जाट कौम का था। गोत्रसिंधु था। मुगल वंश के निर्बल होने पर इसने आस पास का इलाका और दौलत खूब लूटी। अपने नाम से फूल नाम का गांव बसाया था। पटियाला, जींद, नाभा की रियासत के प्रवर्तक तथा राजा इसी की सन्तान हैं।

१२. सुकरचकियां की मिसल—नोधी पाहुल लेकर नोधासिंह बना। चड़तसिंह संस्थापक सुकर चक गांव में रहता था इसी लिये इसका नाम सुकरचकिया पड़ा। बन्दे के पास आने वाले सर्दारों में यह भी था। इसी के वंशज महाराजा रणजीतसिंह ने सब मिसलों को बाहुबल और नीति बल से अपने आधीन कर फिर से लाहौर को पंजावियों का लाहौर बनाया था।

इन मिसलों के मुखिया—अपनी टोलियों में सब से ज्यादा प्रभावशाली और शक्तिशाली होते थे। अपने आधीन अधिक से अधिक सैनिकों को रखना, उन द्वारा अधिक से अधिक प्रदेशों का जीतना ही उनकी प्रसिद्धि का कारण होता था। निर्बल सेनापतियों के वीर जब दूसरे—सेनापतियों को बढ़ता हुआ देखते थे तो उनके आधीन होकर काम करने लग जाते थे। इन टोलियों के नेताओं और अनुयाइयों में सिक्ख धर्म की समानता के सिवाय कोई

और खून विरादरीय स्थान की एकता और समानता नहीं होती थी। इनका परस्पर निश्चय था कि लूट का जो माल मिलेगा वह सब में बराबर बांट दिया जायगा। धर्म प्रचार और विदेशियों तथा विधर्मियों के सम्बन्ध में सह मिसलें और उनके नेता अमृतसर की 'गुरमता' का निश्चय मानते थे। अपनी २ मिसल के अन्तरीय प्रबन्ध में हरेक स्वतंत्र था। जब कभी किसी बात पर इन मिसलों में या इनके नेताओं में मतभेद हो जाता था तो अमृतसर की गुरमता में खालसा के बहुमत के अनुसार चुने गये आध्यात्मिक नेता की सम्मति अनुसार निर्णय किया जाता था, कई बार खालसा के अध्यात्मिक गुरु ने इनके मतभेद दूर करने के सफल यत्न भी किये। इनमें समय २ पर पवित्र रोटी भी बांटी जाती थी। सब लोक अमृतसर के अकाल तख्त और "बाबा ग्रन्थ" के सामने सिर झुकाते थे और समय २ पर अपनी भेंटे भी अर्पित करते थे।

अकाली खालसा 'वाह गुरू जी का खालसा' 'वाह गुरू जी का फतह' का नारा लगाते थे। अमृतसर में धार्मिक समारोहों वैसाखी तथा दिवाली के समय 'बाबा ग्रन्थ' का पाठ होता था—वीर रस सने भक्ति के गीत भी गाए जाते थे। यह सब सेनापति अपने २ अनुयाइयों को प्रसन्न करने की कोशिश करते थे जिससे अधिक से अधिक संख्या में उनकी टोली में वीर सम्मिलित हों। यह लोग अपने सब युद्ध गुरु गोविन्द के नाम पर करते थे। इनके दीवानी और फौजदारी मामलों का फैसला पंचायतों द्वारा होता था। कई बार मिसलों के सर्दार ही इनका फैसला कर देते थे यदि अपराधी रिहा हो जाता था तो सर्दारों को 'शुकराना' देता था। यदि दण्ड मिलता था तो जुर्माना' देता था। यदि अपराध संगीन होता था तो 'तहखाना' की सजा दी जाती थी। फांसी नहीं दी

जाती थी। घातक हत्यारे को मृत व्यक्ति के सम्बन्धियों को सुपुर्द किया जाता था—वह उसको अंगच्छेद या अन्य दण्ड स्वयं दे लेते थे। जमींदारों की भूमि के सीमाबन्दी की झगड़ों में कई बार कतल हो जाते थे। सिक्ख लगान गेहूं की मालकी शकल में देते थे। ½ हिस्सा सर्कार का होता था। ½ खेती करने वाले किसान या मालिक का। नानक पुत्रों को कर माफ़ रहता था। यह लोग स्वभाव से शान्त होते थे और इधर उधर ऊंठों घोड़ों पर सामान ले जाते थे।

वर्षा की मौसम के बाद अमृतसर में प्रति वर्ष दिवाली के अवसर पर 'गुरमता' का अधिवेशन होता था। यहीं विजय यात्रा और राज्य विस्तार की योजनाएं बनती थीं। यह सर्दार अपने आधीन प्रदेशों से 'राखी'* नाम का कर लेते थे। यह सर्दार अपनी २ बारी पर अमृतसर में गुरमता के सामने अपना हिस्सा भेंट के रूप में देते थे। इसके द्वारा गुरमता का धर्म प्रचार तथा संगतों का काम चलता था।

खालसा के पंजाब में शासन अधिकार प्राप्त करने पर अधिकांश मुसलमानों को शासन के कार्यों से हटा कर उन्हें छोटे कामों में विशेषतया खेतीबाड़ी के काम में भी किसान का पेशा स्वीकार करने पर बाधित किया जाता था, इनके व्यवहार से तंग होकर मुसलमानों के कई उच्च घराने सतलुज पार हिन्दुस्तान में चले गये।

---

* मि० लतीफी ने हिस्टरी आफ़ पंजाब में इसके विषय में पृ० २८७ पर इस प्रकार लिखा है।

A sort of Black mail or Tribute called the 'Rakhi' literally 'Protection money' was levied

[३]

इनके घोड़े इनके घर हैं

१७३८ ई० में नादिरशाह ने पंजाब में प्रवेश किया । अटक को पार कर पंजाब में प्रवेश कर लाहौर तक पहुंचते हुए रास्ते में आने वाले शहरों को लूटते हुए रावी दरिया पार किया। यहां लाहौर के सूबेदार ज़करियाखां और नादिरशाह में युद्ध हुआ। ज़करियाखां हार गया। दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह को हरा कर वापिस आते हुए लाहौर के ज़करियाखां से एक करोड़ रुपया वसूल किया। उसने शहर के अमीरों से इकट्ठा करके दिया। नादिरशाह सेना सहित लौट रहा था। उसके लौटते ही सिक्ख प्रबल होने लगे । माझा के जंगलों में से निकल कर अमृतसर के हर मन्दिर में इकट्ठे होने लगे । नादिरशाह की लौटती हुई सेना को भी लूटा । नादिरशाह ने ज़करियाखां से पूछा—ये कौन लोग हैं । लूटते हैं, लूट का माल छोड़ कर भाग जाते हैं, यह कहां रहते हैं । ज़करियाखां ने कहा यह सिक्ख लोग हैं, खालसा हैं, इनके घर "इनके घोड़ों की काठियाँ ही हैं।" नादिरशाह ने हुक्म दिया कि इनका दमन करना चाहिए। रावी नदी के समीप डालीवाल स्थान पर सिक्ख किला बना कर संगठित होने लगे थे । इतने में नादिरशाह के मरने की खबर आई। प्राय: हरेक सिक्ख घुड़ सवार होता था।

upon the inhabitants of the subdued tracts of country and in this manner a regular form of Goverment was introducd.

आधीन प्रदेशों में 'राखी' नाम का रक्षाकर नागरिकों से लिया जाता था। इसके द्वारा गवर्मेण्ट का कार्य चलाया जाता था।

ज़करियाखां के विषय में कहा जाता है कि यह लाहौर का लोकप्रिय गवर्नर था। इसके समय की एक दन्त कथा प्रसिद्ध है कि लाहौर में एक मुसलमान ने अपने मुहल्ले की एक हिन्दू स्त्री से प्रेमोपचार द्वारा उसे फंसाना चाहा परन्तु वह न मानी। उस मुसलमान ने उसके घर में मुसलमानी गहने कपड़े रखकर शोर मचाया कि इसका मेरे साथ सम्बन्ध है। ज़करियाखां को जब यह पता चला तो उसने स्वयं फ़क़ीर का वेश बना कर गुप्त रूप से ठीक ठीक बात का पता लगा कर उस मुसलमान को प्राण दण्ड दिया।

[४]

भाई तारासिंह का शहीद गंज

ज़करियाखां के पुत्र याहियाखां के दीवान जसपतराय को उसकी सिक्ख घातक नीति के कारण सिक्खों ने एमनाबाद से लाहौर आते हुए मार दिया था। इस पर सूबेदार ने जसपतराय के भाई लखपतराय दीवान को सेना के साथ इनका दमन करने के लिए भेजा। यह लोग एमनाबाद आने जाने वालों से 'राखी' नाम का कर वसूल करते थे। लखपतराय ने भाई के खून का बदला लेने के लिये १००० सिक्खों को बेड़ियों में जकड़ कर, गधों पर चढ़ा कर लाहौर के बाज़ारों में घुमाया। इसके बाद इन सब को सूबेदार की आज्ञा से दिल्ली दरवाजे के बाहर नखासखाना (घोड़ों की मंडी में ले गया)। वहां इन सिक्खों का एक के बाद एक का सिर धड़ से अलग किया। इनकी हड्डियां यहीं दफ़नाई गईं।

इस घटना की याद में सिक्ख इसे शहीदगंज कहते हैं।

जहां फांसी दी गई थी; सिर धड़ से अलग किये गये थे, वहां समाध बनी हुई है। इन वीरों में भाई तारासिंह मुख्य था। यह गुरू गोबिन्दसिंह का साथी था। इसकी स्मृति में मन्दिर बनाया गया था। भाई तारासिंह को सिख धर्म छोड़ने और केश कटाने पर क्षमा करने को कहा। उसने कहा यह नहीं हो सकता। १७४६ ई० में उसका सिर काट दिया गया। भाई तारासिंह ने कहा बालों का और सिर का अकाट्य सम्बन्ध है। सिर का जीवन के साथ अटूट सम्बन्ध है। इसलिये मैं प्रसन्नता पूर्वक सिर देने को तैयार हूं। याहियाखां ने शाही फ़रमान निकाल कर गुरू गोबिन्द का नाम लेने वालों के सिरों के लिये इनाम घोषित किये; सिख गुरिल्ला पद्धति से फिर पहाड़ों में चले गये।

---

[५]

लाहौर में खालसा का प्रवेश

इधर याहियाखां और उनके छोटे भाई शाहनवाज़खां में लाहौर की सूबेदारी के लिये झगड़े शुरू हुए। शाहनवाज़खां ने मुलतान में अपने दीवान कौडामल की सहायता से याहियाखां और उसके दीवान लखपतराय को बेड़ियां डाल कर कैद किया; अपने को दिल्ली से स्वतन्त्र घोषित किया। याहियाखां बांस की पिटारी में बन्द होकर छावड़ी के कपड़े में छिप कर सामान ले जाने के धोखे में बाहर निकल गया।

दिल्ली दरबार में कमरुद्दीनखां याहियाखां का पक्षपाती था। इन दिनों दीवान कौडामल ने याहियाखां और दीवान लखपत राय के अत्याचारों से सिक्खों को बचाने के लिये शाहनवाज़खां

द्वारा कई रियायतें कराई। दीवान कौडामल की सेवाओं से प्रसन्न होकर उसे महाराजा कौडामल की उपाधि दी गई।

प्रो० गंडासिंह सिक्ख ऐतिहासिक ने 'महाराजा कौडामल'—पुस्तक १९४१ में प्रकाशित की। इसमें कौडामल की सिक्ख पंथ के प्रति की गई सेवाओं का ज़िकर करते हुए लिखा है कि अब पंथ ने महाराजा कौडामल को महाराजा मिट्ठामल की उपाधि दी है।

पञ्जाब के सूबेदार मीरमन्नू ने महाराजा कौडामल की सहायता से अब्दाली का मुकाबला किया। महाराजा कौडामल हाथी पर चढ़ कर अब्दाली से लड़ रहा था। १७५२ ई० में उस का हाथी रेतीली ज़मीन में धंस गया। साथ ही वह भी धंस कर मारा गया। मीर मन्नू अब्दाली के सामने पेश हुआ। अब्दाली ने पूछा—तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार करूं। मीर-मन्नू ने कहा—यदि तुम व्यापारी हो तो मुझे बेच दो, यदि जल्लाद हो तो सिर काट दो। यदि राजा हो तो राजाओं का सा व्यवहार करो। अब्दाली ने मीर मन्नू को माफ़ कर पञ्जाब का गवर्नर बनाया। इन्हीं दिनों दीनानगर बसाने वाले अदीनाबेग जस्सासिंह कलाल की सहायता से सिक्खों को रियायतें देकर अपनी शक्ति बढ़ा कर लाहौर का गवर्नर बन गया।

अदीनाबेग ने जस्सासिंह ठोके को अमृतसर में रामरौनी का किला फिर बनाने दिया। तैमूरखां के वज़ीर जहानखां ने शमशेरखां तालाब पर बटाला को लूटा। अदीनाबेग फिर पहाड़ों में सिक्खों के साथ चला गया। तैमूरशाह और जहानखां वज़ीर ने सिक्खों का फिर दमन शुरू किया। अमृत-सर के रामरौनी किले को मिट्टी में मिला दिया। अमृतसर के

तालाब को मट्टी से भर दिया । पूजा स्थान भ्रष्ट कर दिये। इन अत्याचारों से खालसा उत्तेजित हो उठा । तलवारें तानकर धर्म रक्षा के लिये मैदान में उतर आए। लाहौर के अड़ोस पड़ोस के प्रदेशों को तहस नहस किया। जहानखान तैमूर का वज़ीर उनके मुकाबले में आया । सिक्खों ने भारी संख्या में इकट्ठे होकर लाहौर के शाही किले का घेरा डालकर उसका यातायात रोक दिया। आस पास के प्रदेशों से 'राखी' कर वसूल करना शुरू किया। इस पर तैमूरशाह ने भारी तैयारी कर उनका मुकाबला करने का निश्चय किया, पठानों और सिक्खों में भारी घमासान युद्ध हुआ। दोनों पक्ष सब कुछ कुर्बान करने की भावना से लड़ने लगे। सिक्खों की अचूक गोलियों से कई अफ़ग़ान सरदार मारे गये। जहानखां का घोड़ा ज़ख्मी हो गया । वह मुशकिल से मैदान से भाग निकला। अफ़ग़ान सेनाभी मैदान छोड़कर भागी। इस प्रकार खालसा को प्रथम प्रमाणित विजय प्राप्त हुई। इसी समय अदीनाबेग ने जालन्धर के अफ़ग़ान सरदार सरफराज़खां को हरा दिया। इसी समय तैमूर लाहौर छोड़कर रात को यहांसे भाग कर १७५८ ई० में अफ़गानिस्तान चला गया।

[६]

वीर हकीकत का बलिदान

पंजाब के सूबेदार खांनबहादुर जकरिया खां का शासन काल था. उसके दो दीवान लखपतराय और जसपतराय एमनाबाद के रहने वाले थे। दिल्ली में बादशाह मुहम्मदशाह का राज्य था। उन दिनों की बात है स्यालकोट शहर में, भागमल नाम का साहूकार रहता था। उसकी कौरां नाम की स्त्री थी।

प्रतीक्षा के बाद उनके घर धर्मी हकीकत नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। उन्होंने उसे लाड़-प्यार से पाला। वहीं की मसजिद में शहर के सभी लड़कों के साथ पढ़ने बैठाया। उस मदरसे में धोबी तेली, जुलाहे, कुम्हार, मोची, शेख, डोगरे, मुगल पठान, वणिए भावड़े, छीवे खतरी और मुसलमान इकट्ठे पढ़ते थे। हकीकत भी वहीं पढ़ने लगा। १० साल की आयु में बटाले में उसकी शादी हो गई। शादी से लौट कर भेंट—लेकर धर्मी हकीकत मसजिद में फिर पढ़ने लगा। १२ साल की उमर होने पर एक दिन मदरसे में पढ़ते हुए साथ के मुसलमान लड़कों से कहा सुनी हो गई। मदरसे का मुल्ला कुछ समय के लिये बाहर गया था। लड़के शोर गुल करने लगे—हकीकत ने मना किया, इस पर मुसलमान लड़के उसे तंग करने लगे और उसकी इष्टदेवी-दुर्गा शक्ति आदि को अपशब्द कहने लगे। धर्मी हकीकतराय उनको सुनकर उत्तेजित हो उठा। उसने भी बीबी फातिमा को कुछ अपशब्द कह दिये। इतने में मुल्ला वहां आ गया। मुसलमान लड़कोंने हकीकत की शिकायत की कि इसने बीबी फातिमा को गाली दी है। मुल्ला ने हकीकत से सही हालात पूछे। उसने ठीक २ बात सुना दी। मुल्ला आपे से बाहर होकर, हकीकत को थप्पड़ मारने लगा—और लातें मार कर बेहोश कर दिया। हकीकत ने अन्याय की दुहाई दी और कहा कि जिन्होंने पहले देवी देवता को गाली दी उन्हें कुछ नहीं कहा; पक्षपात कर मुझे ही मारता है। मुल्लाने हकीकत को काजी के सामने पेश किया। काज़ी ने उसे कुरान की शरह का नाम लेकर कैद में डाल दिया। पैरों में बेड़ियां डाल दीं। रात को कोड़े भी लगाए। यह खबर स्यालकोट भागमल के पास पहुँची। इधर काजी ने हकीकत को कहा इस्लाम स्वीकार करो; नहीं तो

बीबीफातमा को गाली देने पर कतल ही सजा है। हकीकत की मां कौरां भी काजी के पास पहुँची, दुहाई मचाई, मिन्नत की काजी ने कहा यह मामला सूबे के सामने पेश होगा। सूबेदार ने हकीकत का बयान सुनकर काजी को सलाह दी कि हकीकत को छोड़ दे; परन्तु काजी न माना। उन दिनों मुल्ला काजिओं का ज़ोर था। सूबे की कुछ न चली। हकीकत की मां ने दीवान जसपतराय के पास लाहौर तक फ़रियाद की। परन्तु कुछ न चली। काजी ने कतल का दिन नियत कर, उसे लाहौर भिजवा दिया। अन्तिम समय माता कौर ने भी पुत्र मोह वश हकीकत को इस्लाम धर्म स्वीकार कर आत्म रक्षा करने को कहा। हकीकत ने सच्चे धर्मी की भांति मां को समझाया और कहा। कि पुत्र मोह के कारण मुझे धर्म से मत गिराओ। और कहा—

"तारूसिंह महातमा गुरु मेरा, जिने दिता गिआन कमाल माता।
मरजी रबदी नाल इन्सान मरदा, लोकी आखदे आगया काल माता॥
मिलखी शरह दी तेग न असर करदी,साडेकोल है धर्मदी ढाल माता॥"

इसके बाद हकीकत की नवविवाहित स्त्री ने भी विनती की। इस्लाम स्वीकार कर जान बचा लो और मुझे विधवा होने से बचाओ। धर्मी हकीकत ने कहा:—

"आगे कई विधवा एथे बैठिआं ने,जपीं रामदा नाम घबरावना नहीं।
जांदी वार मैं तैनूं हिदायत करना,—मेरी गलनूं मनो भुलावना नहीं॥
पूजा करीं तू इक परमात्मादी, भैड़ा गीत कोई मुखसे गावना नहीं॥"

हकीकत ने स्त्री की भी बात नहीं मानी। पंचमी के नियत दिन कातल ने दरबार के सामने—हुक्म होते ही—

नाल गुस्से दे खिच के तेग मारी, दित्ता धड़ तो सीस उतार साईं।
बाल बाल विचों राम राम निकले, ऐसा राम दे नाल प्यार साईं॥

काजी शरह अन्दर गोते खान बैठें,बेड़ा धर्म दा होगया पार साईं।
जिन धर्म तो सीस कुरबान कीते-सदा जींवदे विच संसार साईं॥
मिलखी राम अखीर जहान उत्ते नेकी रह जाँदी यादगार साईं॥"

इस मौत का समाचार लाहौर शहर में फैल गया। सारे शहर में एकदम हड़ताल हो गई। रावी के किनारे चंदन की चिता बनाकर उसका संस्कार किया गया; और वहीं रावी नदी के किनारे पर वीर की समाधि बनाई गई। निर्दोष वीर बालक की मौत की खबर-पंजाब के सूबेदार और बादशाह तक पहुंची-बादशाह ने काजी को दण्ड देना चाहा-परन्तु-किसी की कुछ न चली। वसन्त पंचमी के दिन हुए-वीर हकीकत के इस बलिदान ने हिन्दू जाति में असन्तोष की आग पैदा कर दी। तब से अब तक हर साल लाहौर में अनेकों वीर वसन्त पंचमी के दिन उसकी समाधि पर श्रद्धा भेंट चढ़ाकर बरसी मनाते हैं। जिस बादशाह और सूबे के राजकाल में यह अन्याय हुआ-वह अन्याय की नारकी आग में भस्म हो चुके हैं जिस हिन्दू जाति की कमजोरी के कारण मुल्लां को-अन्याय करने का साहस हुआ-वह हिन्दू जाति गहरी नींद से जाग उठी है; अब जाति के नवयुवकों में निर्भय होकर आत्म रक्षा करने की चिनगारी सुलग रही है।

वीर हकीकत का बलिदान—अलौकिक दिव्य बलिदान है। मारू बाजों की गूंज में, तलवार को हाथ में लिये मरना आसान है। परन्तु माता स्त्री सम्बन्धियों के पुत्र मोह द्वारा धर्मच्युत होने की प्रेरणा करने पर भी, धर्म पथ न छोड़ना-हकीकत का ही काम था।

---

[७]

लाहौर खालसा के हाथों में

सिक्ख विजयी सरदारों ने जस्सासिंह कलाल के नेतृत्व में लाहौर पर अधिकार कर लिया। और खालसा के राज्य कायम होने की घोषणा भी कर दी। मुग़लों की टकसाल में निम्न अंक से अंकित सिक्का भी जारी किया।

'जस्सासिंह कलाल द्वारा विजित प्रदेश में खालसा द्वारा बनाया गया।'।

सिक्खों ने मौका देख कर अदीनाबेग के एजेण्ट ख्वाजा मिर्ज़ा को भी लाहौर से निकाल दिया। इस पर अदीनाबेग ने मराठा सेनापति को एक लाख रुपया देकर और पचास हज़ार रुपया हर रोज़ सेना पड़ाव के लिये देना तय कर पंजाब में बुलाया। सरहिन्द में मराठों और अफ़गानों का मुकाबला हुआ। अफ़ग़ान हार गये। मौका देख कर सिक्खों ने सरहिन्द को फिर लूटा। अदीनाबेग के साथ मराठा सरदार लाहौर पहुँचे। अफ़ग़ान सेनापति को मैदान छोड़ना पड़ा। १७५८ ई० के अन्त में लाहौर कुछ समय के लिये मराठों के हाथ में आ गया। मराठों ने अदीनाबेग को पंजाब का गवर्नर बनाया। मराठा सरदार पातील १० हज़ार सिपाहियों के साथ तैमूरशाह का पीछा करता हुआ अटक तक पहुँचा। शाम जी मराठे को मुलतान का गवर्नर बनाया। अदीनाबेग ने मराठों से ७५ लाख रुपया सालाना देने की शर्त पर पञ्जाब की गवर्नरी ली। बटाला को अपनी राजधानी बनाया। मुलतान और लाहौर के पृथक २ शासक नियत किये। माम्फा के सिक्खों ने इधर उधर विद्रोह करना शुरू किया। अदीनाबेग

इस विद्रोह को शान्त ही कर रहा था कि रामरौनी में जयसिंह कन्हैया और जस्सासिंह रामगढ़िया के नेतृत्व में सिक्खों ने विद्रोह कर दिया। इसी समय १७५८ ई० में युद्ध आरम्भ के ११वें दिन बटाला में पेट दर्द के कारण पीड़ित हो अदीनाबेग मर गया। इसकी मौत पर मराठा सरदार शाम जी को मराठा सरदार जनको ने लाहौर का शासक नियत किया।

इधर अदीनाबेग के मरते ही सिक्ख स्वच्छन्द होकर विचरने लगे। उन्होंने अमृतसर के तालाब को मुसलमानों से मज़दूरी करा कर फिर से भरवाया और अमृतसर को फिर से बसाया। तैमूर शाह की इस हार का हाल सुनकर, अब्दाली ने फिर पञ्जाब तथा भारत पर हमला किया; लाहौर और मुलतान में फिर अपने सरदार नियत किये। स्वयं दिल्ली के विश्वासघाती नजीब उद्दौला के साथ मिलकर मराठों पर आक्रमण करने के लिये पानीपत के मैदान में पहुँचा।

दिल्ली दरबार की निर्बलता—और मराठा अफ़गान संघर्ष ने सिक्खों को, उनकी वीर टोलियों मिसलों को—शक्तिशाली बनने का खुला अवसर दिया।

जस्सासिंह ने लाहौर पर अधिकार किया परन्तु वह देर तक अधिकार कायम न रख सका। इस बीच में मराठों और अदीनाबेग उसे लेने की कोशिश करते रहे। बीचर में अफगानिस्तान के तैमूर आदि उसपर अधिकार जमाने के यत्न में रहे। इसी बीच में मौका देखकर भंगी मिसल के स० लहनासिंह, शोभासिंह और गूजरसिंह नाम के सर्दारों ने लाहौर पर अधिकार कर लिया, इस प्रकार इन वीर टोलियों ने अमृतसर और लाहौर को केन्द्र बना कर खालसा की राज शक्ति का विस्तार किया।

महाराजा रणजीतसिंह का सिंहनाद

सरदार महासिंह सुकर चकिया अमृतसर 'गुरमता' में लब्ध प्रतिष्ठ था। गुरमता ने उसे 'जमजमा' भंगियों की तोप इसकी सेवाओं के पुरस्कार रूपमें दी थी। उसने रामदासपुर में २२सिक्ख सर्दारों को मुलाकात करने के लिये बुलाया उनसे नजराने लेकर उन्हें रिहा किया। रसूल नगर में पीर मुहम्मदखां के पास रखी हुई गंडासिंह वाली बड़ी तोप लेने गया। उसने देने से इनकार किया तीन महीने तक किले का घेरा डाला पीर महमूदखां को क़ैद कर तोप ली और शहर लूटा। इसी समय १७८१ ई० में गुज़रांवाला से समाचार आया कि माई देसा के घर पुत्र उत्पन्न हुआ। रण जीतने की खुशी में उसपुत्र का नाम 'रणजीतसिंह' रखा। रसूल नगर का नाम रामनगर* और अलिपुर का नाम अकालगढ़ रखा। अपने मित्र स० दलसिंह को दोनों का शासन भार सौंपा।

१७८८ ई० में सर्दार गूज़रसिंह भंगी मर गया। उसका बेटा साहबसिंह उसके स्थान पर गद्दी नशीन हुआ। अपने बाप की जायदाद का कब्जा लेने लाहौर गया। साहबसिंह महासिंह का

---

* विदेशी आक्रान्ता विजित प्रदेशों के नाम बदल देते हैं। सिकन्दर ने एलैक्जैण्ड्रा, महमूद ने लाहौर का नाम महमूदपुरा और अजवर्धन का नाम पाक पटन रखा गया। सिक्ख भी ऐसा करते थे। आनन्दपुर आदि नए शहर भी बसाते थे। पंजाबके शहरों के नामों के पूर्वेतिहास भी मनोरंजक हैं। इस पर भी विचार करना चाहिए इससेकई ऐतिहासिक बातें पता लग सकती हैं।

बहनोई था। महासिंह ने साहबसिंह के छोटे भाई फतहसिंह का पक्ष लेकर सोधरा किले पर आक्रमण कर दिया। साहबसिंह किले के भीतर से लड़ता रहा। इसी समय महासिंह लड़ाई लड़ते२ बीमार हो गया। जीने की उम्मीद न रही। इस लड़ाई में १२ साल का युवक रणजीतसिंह भी साथ उपस्थित था। उसे लड़ाई जारी रखने की आज्ञा दे और मिसल की गद्दीनशीनी की पगड़ी देकर स० दलसिंह को उसका शिक्षक नियत कर महासिंह चला गया। गुजरांवाला जाकर १७९२ ई० में उसका देहान्त हो गया।

इस समय रणजीतसिंह की माता माई मालविन और महासिंह का दीवान लखपतराय नौशहरा का छत्री उसके संरक्षक के रूप में जायदाद के प्रबन्ध का काम करते रहे। रणजीतसिंह की सास गुरुबख्शसिंह कन्हैय्या की विधवा सदाकौर भी उसको परामर्श और सहायता देती रही। सदाकौर ने रणजीतसिंह को सहायता देकर अपनी कन्हैया मिस्ल का नेतृत्व अपने हाथों में रखने में पर्याप्त सफलता पाई।

रणजीतसिंह ने दलसिंह को अपना प्रधान मंत्री बनाकर लखपतराय को कटास भेजकर उससे छुटकारा पाकर स्वतंत्रता प्राप्त की; और अपनी माता को भी राज्य कार्य से पृथक् कर दिया। धीरे २ सारा काम अपने हाथ में संभाल लिया।

इन्हीं दिनों एक बार रणजीतसिंह शिकार खेल रहा था। उसे एकान्त में देखकर हशमतखां नाम के पठान ने तलवार से उस पर हमला कर दिया। रणजीतसिंह चतुराई से बच गया और तत्काल लगते हाथ उस पर ऐसा वार किया कि उसका सिर धड़ से अलग हो गया; तदनन्तर उसकी जायदाद छीन ली।

लाहौर के कुछेक सिक्ख सर्दारों ने शाहज़मां के वज़ीर

शाह वलीखां को मार दिया। शाहज़मा उन को दण्ड देने लाहौर आया। सिक्ख सर्दार भाग गये। शाहजमा चार मास तक वहां रहा। विद्रोही सरदार न पकड़े गये-५वें महीने शाहजमा काबुल चला गया। लौटते हुए उसकी १० तोपें चनाव नदी में डूब गईं। जाते हुए रणजीतसिंह को कह गया कि यदि यह तोपें काबुल भेज दोगे तो तुम्हें पंजाब का प्रदेश दे दिया जायगा। रणजीतसिंह ने ८ तोपें निकलवाकर भिजवा दीं। इस पर शाहजमां ने सम्मान सूचक खिल्लतें रणजीतसिंह को भेज दीं। इसी समय लाहौर के अत्याचारी शासकों से तंग आकर लाहौर निवासियों ने रणजीतसिंह को लाहौर निमंत्रित किया। यह घटना इस प्रकार से हुई:-

इस समय लाहौर में लहनासिंह का पुत्र चेतसिंह, गूजरसिंह का पुत्र मेहरसिंह और शोभासिंह का पुत्र सुखासिंह शहर को तीन विभागों में बांट कर शासन कर रहे थे।

यह तीनों व्यभिचारी शराबी और अत्याचारी थे। लाहौर के प्रसिद्ध नागरिक चौधरियों, मियां आशक मुहम्मद, मियां मोहकमदीन, हाकिमराय और भाई गुरबख्शसिंह ने महाराजा रणजीतसिंह को लाहौर में आकर शासन करने का निमंत्रण दिया; और उन्हें हर प्रकार की सहायता देने का वचन दिया। रणजीतसिंह ने रामनगर निवासी काजी अब्दुल रहमान को भेजकर असली हालात मालूम किये; और उन लोगों से इस बात का प्रबन्ध कराया कि उसके लाहौर आने पर वह लोग चार दीवारी के एक दर्वाजे के खोलने का प्रबन्ध कर दें। शत्रु के संदेह को सुप्त रखने के लिये रणजीतसिंह बटाला से अपनी सास सदाकौर के साथ पहले अमृतसर गया। वहां से कई अकाली तथा

*मज़हबी सिक्खों को भी अपने साथ लिया।

अमृतसर स्नान कर लाहौर की ओर सेना के साथ प्रस्थान किया। ५००० सेनानी साथ थे। रणजीतसिंह स्वयं पंजाब पब्लिक लाइब्रेरी के पास नवाब वजीरखां की बारादरी में ठहरा। अपनी सेना को अनारकली बाज़ार के पोस्ट आफिस में टिकाया।

तीनों सर्दार रणजीतसिंह का विरोध करने की तैय्यारी में लग गये—इन्होंने चार दीवारी के सब बड़े दरवाजे ईंटें चुनवा कर बन्द कर दिये थे। लाहौरी रोशनाई और दिल्ली दरवाज़े केवल जनता के यातायात के लिये खुले थे। रणजीतसिंह को सूचना मिली कि खिजरी दरवाजे और यक्की दरवाजे के मध्य भाग की दीवार में दराड़ कराई गई है। रणजीतसिंह ने इसका उपयोग न कर लाहौर के तीनों खुले दरवाजों में से किसी एक से अन्दर जाने का निश्चय किया। रणजीतसिंह १७९९ ई०को नियत दिन प्रातः ८ बजे लाहौरी दर्वाजे के रास्ते शहर में घुसा। रणजीतसिंह के साथ १००० सैनिक थे। शहर का दरवाजा खोल दिया गया। सेना दीवारों पर चढ़कर शहर में घुस गई। चेतसिंह को खबर दी गई

The Mazhabi Sikhs—Those Mohamdans, who had embraced the religion of the Govind.

जिन मुसलमानों ने सिक्ख धर्म स्वीकार किया वह मजहबी सिख थे। हिन्दू जाट सिक्ख बने। मुसलमान सिक्ख बने इस विषय में कोई ब्यौरा नहीं मिलता। यह उपरिलिखित उद्धरण मि० लतीफ की हिस्टरी आफ पंजाब २६१ पृ० से है। सिक्ख गुरु मुसलमानों को शिष्य भक्त बनाते थे-परन्तु सिक्ख धर्म में दीक्षित करते थे इस विषय में कोई प्रमाण नहीं मिलता। आज भी अधिकांश सिक्ख हिन्दुओं से आते हैं मुसलमानों से नहीं के बराबर। में दोनों भेद भाव की गहरी खाई अब भी है।

कि आक्रान्ता दिल्ली दर्वाजे से आ रहे हैं; वह उधर उनका मुकाबला करने सेना के साथ गया। वहां पहुंचने पर पता चला कि रणजीतसिंह लाहौरी दर्वाजे से अन्दर घुस आया है। चेतसिंह इस खबर को सुनते ही आत्म रक्षा के लिये हजूरी बाग वाले दरवाजे से किले में घुस गया और वहां रणजीतसिंह का मुकाबला करने की तैय्यारी करने लगा। किले के द्वार रक्षक दरवाज़ा बन्द कर रहे थे-रणजीतसिंह के घुड़सवारों की गोली से ज़ख्मी होकर गिर पड़े। शेष दो सर्दार रणजीतसिंह का लाहौर प्रवेश सुनते ही भाग गये। रणजीतसिंह और चेतसिंह में २० घंटों तक गोलियों की मार का युद्ध होता रहा। किले में सामान कम होने से चेतसिंह ने आत्म समर्पण कर दिया रणजीतसिंह ने चेतसिंह से सन्मानपूर्वक व्यवहार किया। सिपाहियों को सख्त आज्ञा दी कि नगर में कोई लूट मार न करे। इन्हीं दिनों शहर के लोगों ने डरकर दुकानें भी बन्द कर दी थीं। रणजीतसिंह ने आश्वासन देकर कारोबार चालू कराया। यही नहीं, शहर के कारीगरों को किले की तोपें तथा अन्य शस्त्रादि मरम्मत के लिये अच्छे दामों पर दिये। रणजीतसिंह के व्यवहार से लोगों को सदियों बाद सन्तोष और शान्ति मिली; लाहौर निवासियों को महाराजा रणजीतसिंह ने अपने शासन काल में अन्दर बाहर के आक्रमणों से मुक्त रखा।

जम्मू आदि स्थानों को आधीन कर भसैन स्थान पर इकट्ठे विरोधी सर्दारों को हराया था। कहा जाता है कि इन दिनों ८० वर्ष के एक वृद्ध ने रणजीतसिंह को गुप्त कोष बताया था। जिससे कई लाख रुपया उसे मिला। इससे सेना सजाई और १८०१ ई० में शत्रुओं को हराकर रणजीतसिंह लाहौर वापिस आए; और

आते ही दरबार कर महाराजा की पदवी धारण की; और घोषणा की कि आगे से सबको उन्हें सरकारी चिट्ठी पत्री में 'सरकार' कहना चाहिए। सब एकत्रित दरबारियों के सामने कुल-पुरोहित ने मस्तक पर तिलक लगाया। उपस्थित उलमाओं और प्रसिद्ध कवियों ने समारोह के सन्मान में कविताएं पढ़ीं। कई दिनों तक चहल पहल और रौनक रही। इसी समय लाहौर में टकसाल खोली गई। "देग व तेग व फ़तह व जीत बदिरंग या फ़तहअज नानक गुरु गोविन्दसिंह" की छाप से अंकित सिक्के बनाए गये, और महाराजा के सामने पेश किये। महाराजा ने वह नए सिक्के दान में बांट दिए। दीवानी फ़ौजदारी मामलों के लिये पुरानी प्रचलित प्रथा को ही अपनाया। लाहौर शहर का प्रबन्ध मुहल्लों के चौधरियों द्वारा किया। इमामबख्श को शहर कोतवाल बनाया। नूरउद्दीन को शाही हकीम बनाया, अजीजउद्दीन को अपना मंत्री बनाया। दीवान मोतीराम को १ लाख रुपया देकर लाहौर शहर की मरम्मत तथा चारों ओर गहरी खाई बनाने के लिये हुक्म दिया।

सन् १८०२ ई० में महाराजा ने तरन तारन की यात्रा की, और वहां सरदार फतहसिंह आहलूवालिया से पगड़ी बदलकर मित्रता की। इन्हीं दिनों महाराजा ने अमृतसर भंगीमिस्ल के सर्दारों तथा विधवारानी सुखो को कहला भेजा कि वह 'जमजमा' तोप जो उनके पिता महासिंह की है, भिजवा दें। संतोषजनक उत्तर न मिलने पर अमृतसर पर चढ़ाई कर दी। स० फतहसिंह भी साथ था। रानी शहर के दरवाजे बन्दकर बुर्ज पर चढ़ गई। महाराजा ने लोहगढ़ दरवाज़े से और फतहसिंह ने हाल दरवाजे से आक्रमण कर दिया। विकट लड़ाई के बाद अमृतसर पर महा-

राजा का अधिकार हो गया। सिपाहियों को लूट मार नहीं करने दी। स्वयं हरि मन्दिर में बहुत सा दान पुण्य किया। इस प्रकार सिक्खों की धार्मिक नगरी पर भी महाराजा का अधिकार हो गया। इसके बाद से महाराजा अपने आप को "खालसा जी" भी कहलाने लगे। अपने आप को खालसा जी कहला कर यह प्रकट करना चाहते थे कि वह सारी सिक्ख जाति के राजा हैं।

मालवा और सरहिंद की ओर के सिक्ख सर्दार तथा सिक्ख मिसलें महाराजा के इस व्यवहार से भयभीत होकर आत्म रक्षा की चिन्ता करने लगीं। महाराजा रणजीतसिंह ने महाराजा बनने के बाद अपनी सारी शक्ति, पंजाब के एक छत्री राजा बनने में लगाई। स्वतंत्र सिक्ख मिसलों, और सर्दारों के साथ २ पठान अफ़गान सर्दारों को भी शक्तिहीन करने की कोशिश की। इसके लिये स० फतहसिंह अहलूवालिया और अपनी सास सदा कौर से उसे पर्याप्त सहायता मिली। महाराजा रणजीतसिंह के शासन काल को हम इस दृष्टि से निम्न विभागों में बांट सकते हैं।

१८०१—१८०८ ई० तक– इस काल में एक तरफ़ अंगरेज़ अप्रत्यक्ष रूप से महाराजा रणजीतसिंह के साथ संधि चर्चाओं में शतरंजी चालें खेल रहे थे। उधर के सिक्ख सर्दारों की रक्षा का नाम लेकर वह रणजीतसिंह को दिल्ली की ओर नहीं आने देना चाहते थे। क्योंकि इधर दिल्ली की तरफ़ आने पर रणजीतसिंह को मराठों, तथा अन्य अंगरेज़ों के विरुद्ध देसी नरेशों से, मिल जाने की संभावना हो सकती थी।

१८०८ ई० मार्च को पटियाला के समाना स्थान में, पटियाला जींद नाभा के महाराजाओं ने इकट्ठे होकर अंगरेज़ों से रणजीतसिंह के विरुद्ध आत्म रक्षा के लिये सहायता लेने के लिये

इन रियासतों तथा इधर के अन्य सर्दारों का प्रतिनिधि मंडल दिल्ली स्थित रैजिडण्ट मि० सैटन के पास भेजा। १ अप्रैल को इन्होंने अपना आवेदन पत्र भी पेश किया। अंगरेज़ों ने गोल माल उत्तर दिया। न सहायता का वचन दिया और नाहीं बिल्कुल निराश किया। अप्रत्यक्ष रूप से इन्हें पैतृक अधिकारों की रक्षा की आशा दिलाई।

जब रणजीतसिंह को इस डेपुटेशन भेजने की बात पता लगी, उसने इन सब सर्दारों को अमृतसर बुलाकर इनके भयों को दूर करने की कोशिश की। इसी समय लार्डकार्नवालिस के उत्तराधिकारी नए वायसराय ने अंगरेज़ों की तटस्थ नीति को छोड़कर, युरोप में रूस नैपोलियन की संधि के कारण टर्की तथा परशिया के विरोधी पक्ष में सम्मिलित होने की संभावना से पंजाब प्रान्त और अफ़गानिस्तान में हस्ताक्षेप करने की नीति स्वीकार की। इसके अनुसार अंगरेज़ों ने मि० एलफ़िन्स्टन को काबुल में, सर जो न माल्कम को परशिया तेहरान में, और मि० मैटकाफ को लाहौर दरबार में भेजा।

मि० मैटकाफ़ लाहौर की तरफ बढ़ रहा था, ज्योंही वह लाहौर के पास पहुंचा त्योंही महाराजा उसको मिले बिना ही, कसूर की ओर चले गये। वह नहीं चाहते थे कि ब्रिटिश राजदूत लाहौर और अमृतसर देख सके; साथ ही वह संधि चर्चा से पहले सतलज के पार के प्रदेश के अधिक से अधिक भाग को अपने आधीन करना चाहते थे। ११ सितम्बर को कसूर पहुंचकर मि० मैटकाफ ने ब्रिटिश सरकार की ओर से ३ हाथी दो घोड़े बग्गी शाल आदि भेंटें पेश कीं। फतहसिंह आहलूवालिया ने कसूर से कुछ दूर आगे बढ़कर मि० मैटकाफ़ का स्वागत किया। महाराज और

राजदूत में कई भेंटें हुई। महाराजा ने सतलज के पार के प्रदेशों की चर्चा ही नहीं की और प्रारम्भ में इस बात को नहीं माना। नेपोलियन के संभावित आक्रमण के प्रति उपेक्षा प्रकट की। अभी बात हो हो रही थी कि महाराजा ने फकीर अजीजुद्दीन को मि० मैटकाफ से बात करने के लिये नियत किया और स्वयं सतलज पार के प्रदेशों पर फिर आक्रमण कर दिया। अंगरेज़ राजदूत नाराज़ तो हुआ, परन्तु धैर्य रखा कुछ नहीं किया।

इसके बाद १८०६ ई० से लेकर १८२० ई० तक महाराजा रणजीतसिंह ने कसूर, मुलतान अटक गुजरात और कश्मीर के प्रदेशों को अपने आधीन किया। लगते हाथ कांगड़ा के पर्वतीय प्रदेशों में भी अपने सेनापति भेजकर उन्हें अपना करद बनाया। इन प्रदेशों तथा जालंधर का हाकिम दीवान महकमचंद खत्तरी को नियत किया। पठानकोट जसरौटा चम्बा के राजाओं से भी नजराने लिये। कसूर और मुलतान के प्रदेशों को जीतने के लिये महाराजा को ५ बार युद्ध करने पड़े।

इसके बाद १८१६ ई० में कुंवर खड़गसिंह को, विधिपूर्वक सब सर्दारों को बुलाकर युवराज बनाया दान किया कांगड़ा में सौ मनधी से यज्ञ कराकर माधोपुर से लाहौर की शाहजहानी नहर की एक शाख को अमृतसर लाने का हुक्म दिया।

मि० मैटकाफ ने पटियाला के साहबसिंह आदि को अप्रत्यक्ष रूप से रणजीतसिंह के विरुद्ध उत्तेजित किया। इन्होंने भी रणजीतसिंह से आत्मरक्षा की आशा में–अंग्रेजों पर विश्वास प्रकट किया। साहबसिंह ने तो अपनी चाबियां ही उसके हाथ सौंपकर अति विश्वास प्रकट किया और उस राजदूत ने सतलुज को महाराजा रणजीतसिंह की राज्य सीमा बनाने की आशा भी दिलाई।

इधर महाराजा ने ब्रिटिश दूत को पंजाब में आते देखकर अम्बाला शहर पर हमला कर उसे अपने एक कर्मचारी गंडासिंह को ५००० पदाति तथा घुड़सवार सेना के साथ, सौंप दिया। इसके बाद सानीवाल चांदपुर बहरामपुर आदि के साथ लगते प्रदेशों को भी अपने आधीन किया। रहीमाबाद आदि अन्य प्रदेश जीत कर फतहसिंह आहलूवालिया को दे दिये। इधर विजय यात्रा से लौटते हुए महाराजा ने "बाबा साहबसिंह वेदी की मध्यस्थता से पटियाला के महाराजा साहबसिंह से, वेदी के डेरे में मुलाकात की। इसने दोनों में मित्रता की संधि करा दी। दोनों ने पगड़ी बदली। इसके बाद महाजाजा-फतहसिंह आहलूवलिया के साथ अमृतसर की ओर प्रस्थित हुआ। ४ दिसम्बर १८०६ को वहां मि० मैटकाफ से भेंट हुई।

इस संधि में निम्नलिखित शर्तें तय हुईं १. ब्रिटिश सरकार तथा लाहौर दरबार में स्थिर मित्रता की नीति रहे। दोनों एक दूसरे के प्रति सन्मान पूर्वक रहें। सतलज के उत्तर प्रदेश में, राजा प्रजा के मामले में अंग्रेजी सरकार कोई हस्तक्षेप न करे न किसी को महाराजा रणजीतसिंह के विरुद्ध सहायता दे। इसी प्रकार से सतलज के उस पार के राजाओं के मामले में (अपने प्रदेशों को छोड़कर) महाराजा रणजीतसिंह किसी प्रकार का आक्रमण और हस्तक्षेप न करें। इधर के किसी नये राज्य पर वह अपना अधिकार न स्थापित करे।

दोनों में से यदि कोई इन शर्तों का उल्लंघन करेगा तो संधि रद्द समझी जायगी—

सतलज की संधि के बाद अंग्रेज़ महाराजा रणजीतसिंह को खुश करने की कोशिश करते रहे। मि० मैटकाफ ने शिकायत की

है कि महाराजा रणजीतसिंह ने उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया वह मिलने के लिये आता था वह आगे विजय यात्रा पर—दौरे पर चले जाते थे। असली बात यह है कि राजनीति में न कोई किसी का दोस्त है और न कोई किसी का शत्रु है। संस्कृत के राजनीति शास्त्र के "नहिकश्चित्कस्यचिन्मित्रं नहिकश्चित् कस्यचित् रिपुः। व्यवहारेणैव जायन्ते मित्रोदासीन शत्रवः", के अनुसार—व्यवहार-स्वार्थ की हो दृष्टि से दोस्त दुश्मन और तटस्थ बनते हैं।

अंग्रेज़ जाति के स्वभाव के विषय में एक सूक्ष्मदर्शी ऐतिहासिक ने लिखा है। कि—If you kick it. (British lion) it licks you; if you lick it, it kicks you: 'यदि तुम अंग्रेज़ी शेर को फटकारो और धुत्कारोगे तो यह तुम से प्यार करेगा और तुम्हें चाटेगा और यदि तुम इसे प्यार करोगे—इसकी खुशामद करोगे तो यह तुम्हें ठुकरायेगा।' महाराजा रणजीतसिंह सूक्ष्मदर्शी थे उन्होंने दीवान मेहकमचन्द के परामर्श तथा स्वयं भी यही उचित समझा कि अंग्रेज़ों की परवाह नहीं करनी चाहिए। इन्हें लापर्वाही से टालना चाहिए तभी यह ठीक रहते हैं। महाराजा की इस नीति के कारण ही इस सतलुज की संधि में हम देखते हैं कि दोनों समबल रहे हैं। यह संधि दोनों के पक्ष में हैं जो बलवान् होगा वह इससे फायदा उठा लेगा। अतएव महाराजा रणजीतसिंह के जीवन काल में उनके शक्ति शाली होने तक अंग्रेज़ इससे लाभ न उठा सके और रणजीतसिंह स्वतंत्र रहे। अंग्रेज़ तरह २ से उनकी खुशामद करते रहे। असली बात यह थी कि इस समय पंजाब तथा संसार की राजनैतिक स्थिति ही ऐसी थी कि न तो अंग्रेज़ रणजीतसिंह

से लड़ सकते थे और न रणजीतसिंह अंग्रेज़ों से लड़ सकता था। अंग्रेज़ों को भय था कि यदि वह रणजीतसिंह से लड़ेंगे तो वह नैपोलियन टीपू सुलतान तथा मध्य एशिया के प्रोरशियन तथा प्रोफ्रेञ्च राष्ट्रों से, मिलकर इन्हें भारत से भी निकाल देने में, होलकर आदि भारतीय असंतुष्ट राजाओं के सहायक बन जायेंगे। रणजीतसिंह यह सोचता था कि यदि मैं अंग्रेज़ों से लड़ूंगा तो अंग्रेज़ सतलज के तटवर्ती सिक्ख सर्दारों तथा छोटी मोटी रियासतों के साथ मिलकर और पंजाब के कसूर बहावलपुर और मुलतान के मुसलमान शासकों से मिलकर उसकी शक्ति को कम करेंगे। यही नहीं यथाशक्ति पहाड़ी हिन्दू राजाओं को भी साथ मिलाकर पंजाब में उसके एक छत्री राज को तहसनहस करेंगे। दोनों के समबल संघर्ष में पंजाब के छोटे २ शासकों का मिट जाना स्वाभाविक था। अंग्रेज़ों ने सतलुज के उस पार के पटियाला और सिक्ख सर्दारों को तपदिक की बीमारी की भांति धीरे २ रक्त शून्य और शक्ति शून्य कर दिया। सतलज पार के राजा समझते थे थे कि अंग्रेज़ तपदिक हैं महाराजा रणजीतसिंह हैज़ा है। उन राजाओं के लिये दोनों मुसीबत हैं—लाचारी हालत में उन्होंने तपदिक की बीमारी के प्रतिनिधि अंग्रेज़ों को चुना—इन अंग्रेज़ों ने उनका रक्त शोषण कर इन्हें सन् ५७ के विद्रोह में तथा आगे पीछे अपना टूल बनाया और अभी तक यह प्रदेश उसी नीति पर चल रहे हैं।

इधर महाराजा रणजीतसिंह ने इस सन्धि का पूरा २ फायदा उठा कर सतलज के इधर के प्रदेशों में अपना पूर्ण अधिकार स्थापित किया। समय २ पर कसूर, बहावलपुर, नूरपुर, मुलतान के शासकों ने महाराजा के विरुद्ध अंग्रेज़ों से सहायता और आश्रय मांगा। अंग्रेज़ों ने अपने अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक स्वार्थ की दृष्टि से

उन्हें कोई सहायता नहीं दी। परिणाम यह हुआ कि १८०६ ई० के बाद १८३६ ई० तक रणजीतसिंह ने पंजाब में कसूर, मुलतान, बहावलपुर, गुजरात, वजीराबाद, पाकपटन, कश्मीर, पेशावर, जमरूद के स्वतंत्र अफगान और पंजाबी शासकों में से कइयों को बिल्कुल समाप्त कर दिया कइयों को अपना करद बनाया। उन्होंने इसी मुख्य उद्देश्य से इन तीस सालों में अपनी सेनाओं का संचालन किया—

इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार से है:—

कसूर :—अफ़गानों का शहर माना जाता था। इन दिनों यहां का सूबेदार निजामउद्दीन खां था। महाराजा रणजीतसिंह को पता चला कि निजामुद्दीन भी उनके विरुद्ध विद्रोही सरदारों से मिल कर लाहौर पर आक्रमण कर चुका है—इन्होंने उसे दण्ड देने के लिये उस पर आक्रमण किया। उसने अपने पुत्रों के साथ मिलकर मुकाबला किया। कई दिनों के संघर्ष के बाद उसे आत्म-समर्पण करना पड़ा। अपने भाई क़ुतुबुद्दीन को समय २ पर लाहौर महाराजा की सहायता के लिये भेजना स्वीकार किया, कसूर महाराजा का करद बन गया। कुछ समय बाद निजामउद्दीन को उसके साले क़ुतुबुद्दीन ने मार दिया और स्वयं कसूर का स्वतंत्र शासक बन बैठा। महाराजा ने कसूर पर हमला किया—क़ुतुबुद्दीन ने अफ़गानों तथा मुसलमानों को इस्लाम के नाम पर इकट्ठा किया परन्तु महाराजा रणजीतसिंह के सामने उसे हथियार डालने पड़े और अधीनता स्वीकार कर हर्जाना दिया।

मुलतान :—प्राचीनता की दृष्टि से मुलतान, पंजाब के सब शहरों से प्राचीन है। संस्कृत में इसका नाम मूलस्थान मूलत्राण भी मिलता है। पौराणिक दन्त कथाओं के अनुसार यह असुरों के राजा हिरण्यकशिपु की राजधानी था। प्रह्लाद के बलिदान के

कारण इसका नाम प्रह्लादपुरी भी था। यहां सूर्य का मंदिर भी प्रसिद्ध था। अफ़गानिस्तान तथा सिंध की ओर से आने वाले आक्रान्ता मुलतान पर हमला कर—इसे आधार बनाकर आगे बढ़ते रहे हैं। तैमूरलंग ने भी इस पर अधिकार करना आवश्यक समझा था। किसी समय यह शहर अति समृद्ध तथा उपजाऊ भी था। आर्य हिन्दू धर्म की सभ्यता की दृष्टि से यह महत्व पूर्ण स्थान था। आज भी पंजाब के अन्य शहरों की अपेक्षा मुलतान के भक्त प्रसिद्ध हैं। मुसलमान फकीरों तथा दर्वेशों ने भी इसे अपना मुख्य स्थान बनाया था। मुसलमान फकीर की स्मृति में बहलाकहक नामक स्थान प्रसिद्ध है। राजनैतिक तथा आर्थिक दृष्टि से पंजाब के शासकों के लिये मुलतान का शहर महत्व पूर्ण स्थान रहा है। बहावलपुर और कसूर के शासकों ने कई बार मुलतान के अफ़गान शासकों के साथ मिलकर महाराजा रणजीतसिंह के विरुद्ध विद्रोह किये—महाराजा को इसको अपने आधीन करने के लिये पांच बार आक्रमण करने पड़े। नियत सालाना कर भी मिलता रहा। परन्तु महाराजा की प्रबल इच्छा थी कि मुलतान को अपने राज्य में मिला लें। १८१७ ई० में दीवान मोतीराम भवानीदास, और हरिसिंह नलुआ को मुलतान की विजय के लिये भेजा। मुलतान के शासक मुज़फ्फरखां ने भी वीरता पूर्वक मुकाबला किया। परन्तु सिख सेना को हारकर लौटना पड़ा। महाराजा ने लौटी हुई सेना को फटकार सुनाई। अगले साल फिर २५ हज़ार पंजाबी सिपाही मिश्र दीवानचन्द के साथ मुलतान पर हमला करने के लिये भेजे गये। मुज़फ्फरखां ने इस्लाम के नाम पर मुसलमानों को धर्म युद्ध के नाम पर इकट्ठा किया। महाराजा ने इसी मौके पर झंग स्याल के अहमदखां को रिहाकर अमृतसर में जागीर देकर मुसलमानों को शान्त

करना चाहा। सिख सेना ने किले पर हमला किया। दीवान मोतीराम ने घेरा डाल दिया। 'जमजमा' तोप से भी काम लिया गया। तोपों की गोलों की मार से दीवार में छेक हो गये। मुज़फ्फरखां जी जान से लड़ा—परन्तु उसके साथियों में से कइयों ने आत्मसमर्पण कर दिया। उसके २००० सिपाहियों में से केवल २०० शेष रह गये। साधुसिंह नाम के सर्दार ने इन २०० पर अपने साथियों समेत अचानक हमला कर इनको हाथों हाथ की लड़ाई में कतल कर दिया। मुज़फ्फरखां ने अपने पुत्रों को हरे शहीदी कपड़े पहनाए और खिजरी दरवाजे पर सिखों का मुकाबला किया। वह अकेला लड़ता २ बहावलहक के मकबरे तक आ पहुँचा—यहां पर सिखों ने इन पर गोलियां चलाईं, मुज़फ्फरखां अपने पुत्रों के साथ वीरगति को प्राप्त हुआ। सारा सामान ज़प्त कर लिया गया। बहुत सी मुसलमान स्त्रियें भय-भीत होकर हौज में डूब मरीं। मुलतान की लूट से महाराजा को लगभग ५ लाख रुपया मिला। मुलतान का प्रबन्ध करने के लिये महाराजा रणजीतसिंह ने दीवान सावनमल को नियत किया। इसके सुप्रबन्ध से मुलतान निवासी अत्यन्त प्रसन्न हुए। आज तक भी लोग इसको याद करते हैं। इसी का पुत्र दीवान मूलराज था।

काश्मीर विजय—काश्मीर का प्रदेश इतिहास प्रसिद्ध है। इसका प्राचीन इतिहास संस्कृत की राजतरंगिणी पुस्तक में अंकित है। मध्यकाल में इसमें इस्लाम का प्रचार होने से यहां मुसलमानों का अधिकार हो गया था। मुगल बादशाहों ने इसको खूब सजाया और बढ़ाया। बादशाह शाहजहां इसे स्वर्ग कहता था। महाराजा रणजीतसिंह के समय अफ़गानिस्तान का प्रतिनिधि अज़ीमखां यहां

का शासक था, यह प्रदेश अफ़गानिस्तान के आधीन था। यह बात महाराजा रणजीतसिंह को अखरती थी। उन्होंने काश्मीर विजय के लिये कई बार आक्रमण किए। परन्तु दुर्गम घाटियों तथा पहाड़ी रास्तों की कठिनता के कारण उन्हें प्रारम्भ में सफलता न मिली। परन्तु १८१८ ई० में काश्मीर के नए सूबेदार जबरखां का वजीर वीरवर उससे नाराज़ होकर महाराजा रणजीतसिंह के पास लाहौर आया। उसने महाराजा को काश्मीर विजय के सब उपाय तथा वहां के गुप्त मार्गों का परिचय कराया। इस बार महाराजा ने काश्मीर पर हमला करने वाली अपनी सेना के तीन भाग किये। एक भाग का सेनापति मिश्र दीवानचन्द, दूसरी का कुंवर खड्गसिंह और तीसरी सेना की टुकड़ी के संचालक महाराजा स्वयं बने। १८१९ ई० मार्च को दीवानचन्द ने राजौरी पहुंच कर सैनिकों को हुक्म दिया कि अज़ीमखां को गिरफ्तार करो—वह तो भाग गया। परन्तु उसके बेटे रहीमउल्लाखां ने राजौरी का प्रदेश दीवानचन्द के सुपुर्द कर दिया। इसके बाद पुञ्छ के शासक जबर्दस्तखां को अपने आधीन किया। पीर पंचाल पर दीवानचन्द ने सेना के तीन भाग किये। १९ जून को सरायगली में १२ हजार सिख सेना जमा हुई—५ जुलाई को शोपिन स्थान पर पठानों और सिखों की लड़ाई हुई, पठान मारे गये। शेष भाग गये। जबरखां जख्मी हो गया। मुश्किल से बचा। काश्मीर पर महाराजा का अधिकार हो गया। महाराजा विजयी होकर लाहौर गये। लाहौर अमृतसर में विजयोत्सव मनाए गए। दीवान मोतीराम को काश्मीर का सूबेदार नियत किया। बीरवर को ५३ लाख में काश्मीर का ठेका दे दिया। दीवान मोतीराम के बनारस जाने पर स० हरिसिंह

नलुवा को काश्मीर का सूवेदार नियत लिया। साहस और वहादुरी के लिये स० हरिसिंह प्रसिद्ध था। इसने यहां का सुप्रवन्ध किया। भय और प्रलोभन के कारण मुसलमान बने हुओं को हिंदू बनने के लिये उत्साहित किया। इसके सुप्रवन्ध से प्रसन्न होकर महाराजा ने इसे कश्मीर में अपने नाम का सिक्का चलाने की आज्ञा दी। तव से काश्मीर लाहौर दरवार के आधीन रहा। परन्तु अंगरेज़ों ने कुंवर दिलीपसिंह के समय में, लाहौर दरवार से फौज का खर्च वसूल करने के लिये राजा गुलावसिंह को काश्मीर प्रदेश वेच दिया और उससे अपना खर्च पूरा किया। जम्मू पहले ही महाराजा रणजीतसिंह के आधीन था। इसके वाद यथावसर महाराज गिलगित लद्दाख आदि जीतने के लिये भी अपने सर्दारों को भेजते रहे और इन स्थानों को अपने प्रभाव क्षेत्र में रखा।

हजारा, पेशावर, जमरूद और अफ़गानिस्तान

इसके वाद महाराजा रणजीतसिंह ने अपनी सेनाओं का रुख हजारा पेशावर जमरूद और अफ़गानिस्तान की ओर मोड़ा। पंजाव में शान्ति स्थापित करने के लिये, आएदिन पंजाव में, अफगान पठानों के सम्बन्धी स्थानीय शासकों द्वारा होने वाले विद्रोहों को शान्त करने के लिये; पेशावर जमरूद और अफ़गानिस्तान के राजतंत्र को अपने आधीन रखना आवश्यक था। इसलिये महाराजा रणजीतसिंह ने अपने योग्य अनुभवी सर्दारों को इस काम के लिये भेजा। फ्रांसीसी सर्दारों की भी इसके लिये सहायता ली महाराजा स्वयं भी अटक तक पहुंचे और स्वयं घोड़े पर अटक पारकर अफ़गानों को पराजित किया।

कावुल का अमीर दोस्तमुहम्मद चाहता था कि पेशावर कावुल के अधीन रहे। परन्तु महाराजा रणजीतसिंह पेशावर

को सर्वथा अपने आधीन करना चाहते थे जिससे पेशावर के विद्रोही अफ़गानिस्तान से मिलकर पंजाब पर हमला न करें। स० हरिसिंह युसफज़ई का सूबेदार थे। महाराजा ने उन्हें आज्ञा दी कि कुंवर नौनिहालसिंह के साथ मिलकर पेशावर पर अधिकार कर लो। १८३४ ई० में सिक्ख सेना ने पेशावर पर चढ़ाई कर दी। पेशावर के शासक सुलतान महमूद ने अपना परिवार-काबुल भेज दिया। सिक्ख फौज के हल्ले को देखकर स्वयं किला खाली कर पहाड़ों में भाग गया। पेशावर पर सिक्खों का अधिकार हो गया-इस मौके पर काबुल के अमीर-दोस्त महम्मद ने अंग्रेजों से मदद मांगी उन्होंने रणजीतसिंह के विरुद्ध मदद देने से इनकार कर दिया। दोस्त महम्मद सेना लेकर पेशावर की ओर प्रस्थित हुआ। ईद की कुर्बानी कर-अली बाग पर फतह के लिये खुदा से दुआ की। रास्ते में अनेकों पठान भी उसके साथ हो गए। सिक्ख सेना के कुछेक मुसलमान सिपाही भी उसके साथ हो गये।

इधर महाराजा रणजीतसिंह लगातार अपनी सेना पेशावर भेज रहे थे। सेनाव्यूह बनाने के लिये दोस्त महम्मद से संधि चर्चा भी शुरू की। अथ व्यूह में सेना को पांच भागों में विभक्त किया-दोस्त मुहम्मद चारों ओर से सिक्ख सेना से घिर गया। लाचार मौका देखकर वह भाग निकला! किला महाराजा के आधीन हो गया, इसके बाद पेशावर के किले की मरम्मत कराई।

१८३७ ई० में स० हरिसिंह ने पेशावर से आगे बढ़कर 'जमरूद' पर अधिकार कर लिया। इस पर अमीर दोस्त मुहम्मद नें अपने वज़ीर को ५ बेटों के साथ मुकाबले के लिये भेजा। इधर सिक्ख सेना थी उधर अफ़गान; कुछ समय अफगान जीते परन्तु

१८३७ अप्रैल को स० हरिसिंह ने उन पर ऐसा आक्रमण किया कि उन्हें भागना पड़ा। अफगानों की १४ तोपें छीन लीं सिक्ख सेना जमरूद से आगे बढ़ रही थीं कि अचानक अफगान शमसुद्दीन की नई फौज के कारण सिक्ख रुक गये। अफगान हट गये—सिक्ख सेना आश्रय के लिये जमरूद में लौटी। स० हरिसिंह इस युद्ध में लड़ते २ गोली की चोट से मारे गये। महाराजा को इस समाचार से अत्यन्त दुःख हुआ। राजा ध्यानसिंह को जमरूद १५ हजार सिक्ख सेना के साथ भेजा—किले की मरम्मत कराई—अफगानों को डराया। स० हरिसिंह महाराजा का बाल सखा था। गुजरांवाला में इनका जन्म हुआ था। धीरे २ अपने गुणों के कारण महाराजा के दर्बार में सेनापति सर्दार बन गया।

इसने ही युसफजई के पठानों को जीता था; अटक के मैदान में इनके दांत खट्टे किये। इनका अधिकांश समय पठानों की लड़ाइयों में ही बीता था। अफरीदियों को काबू में रखा। हजारा के खूँखार कबीलों को कुचला—खैबर की घाटी को पार कर अफगानों को इतना भयभीत किया कि वे उसके नाम से थर थर कांपते थे। वह पठानों को बुजदिल समझता था। काबुल इत्यादि में बच्चों को डराने के लिये अब भी उसका नाम लेते हैं।

अफगान स्त्रियें बच्चों को चुप कराने के लिये—"सुफ़दा वाशिद् हरी आयद" बच्चे चुप हो जाओ हरि आता है, कहकर डराती हैं।" इस प्रकार महाराजा ने अफगानिस्तान को भयभीत कर—खैबर तक अपनी विजय पताका लहराई।

इन्हीं दिनों बहावी फिर्के के एक अहमद जिहादी ने—पेशावर तथा भारत के कई भागों में मुसलमानों को दीन के नाम पर इकट्ठा कर विद्रोह करना चाहा—परन्तु महाराजा रणजीतसिंह ने

उसका भी दमन किया।

अफगानिस्तान की गद्दी के झगड़ों के कारण-शाहशुजा भाइयों के खिलाफ़ महाराजा रणजीतसिंह के पास आया। महाराजा ने-उससे कोहनूर का हीरा लेकर-उसकी सहायता की और अन्तिम दिनों में-अंग्रेजों के साथ मिलकर उसे काबुल की गद्दी पर भी बैठाया। यह कहना कई अंश में ठीक है कि इन दिनों अफ़गानिस्तान की गद्दी-महाराजा रणजीतसिंह के इशारे पर-थी। वह जिसके पक्ष में होते थे वही अफगानिस्तान का अमीर बन जाता था। महाराजा रणांगण में विजय पर विजय पा रहे थे। अंगरेज उनके बढ़ते प्रभाव को देखकर, अन्दर २ चिन्तित हो रहे थे। संधि चर्चाओं तथा गुप्त मंत्रणाओं द्वारा उन्होंने सिंध के अमीरों के साथ मिल कर महाराजा की शक्ति को कम करने की कोशिश भी की परन्तु उन्हें सफलता न हुई। यही नहीं रोपड़ फिरोजपुर में अंगरेज़ों ने अपने वायसरायों तथा प्रधान सेनापतियों की महाराजा से शानदार मुलाकातें भी कराईं और उनके साथ अधिक से अधिक घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करने का यत्न किया। महाराजा भी लाहौर दरबार की शान के मुताबिक जवाबी मुलाकातें करते थे। दोनों एक दूसरे को प्रसन्न करने की-मित्र बनकर एक दूसरे पर अपना प्रभाव जमाने की कोशिश करते थे। इन मुलाकातों के वर्णन मनोरंजक हैं।

अन्तिम मुलाकात १८३८ ई० ३० नवम्बर को लार्ड आकलैण्ड के साथ महाराजा ने की। दोनों ने अपना वैभव प्रदर्शन किया।

इसके बाद शाहशुजा को काबुल की राजगद्दी पर बैठाने के लिये अंगरेजों की सेना के साथ सिख सेना भी गई। कुंवर निहालसिंह भी पेशावर में शाहशुजा के साथ मिल गया। उधर

दोस्त मुहम्मद काबुल से भाग गया। १८३९ की ८ मई को शाह-शुजा अफगानिस्तान की गद्दी पर बैठ गया। इन्हीं दिनों महाराजा बीमार हो गये—ज़बान बन्द हो गई। कई इलाज किये। अपने सर्दारों को बुलाया। अपने बड़े लड़के स० खड़गसिंह को राजतिलक दिया। राजा ध्यानसिंह को प्रधान मंत्री बनाया। महाराजा ने राजा ध्यानसिंह के सिर पर हाथ रखकर—उसे राज्य का ध्यान रखने का आदेश दिया। इस अवसर पर २२ लाख रुपया दान किया—ज्वालामुखी में बड़ा हवन भी कराया। १८३९ ई० २० जून को गुरुवार ६ घड़ी दिन रहे—अन्तिम श्वास लिये और सदा के लिये इस दुनिया से उठ गये। महाराजा की शान के अनुसार अरथी-सजाई गई—चिता में अरथी रखी गई, चार स्त्रियां सती भी होगई।

हजारों आदमी शमशान में अरथी के साथ गये—इधर—चिनगारी लगी, चिता भस्म हो गई—उधर आसमान में बदली होकर कुछ बूंदें भी बरसीं !!!

× × ×

महाराजा रणजीत सिंह का आदर्श

राष्ट्रीय कार्यों की दृष्टि से हम महाराजा रणजीत सिंह को आदर्श पंजाबी (Madel Panjabee) कह सकते हैं। वह बिदेशियोंके साथ भी पंजाबी बोलते थे। युरोपियन लोगों के लिये इनकी नौकरी करते हुए पंजाबी वेष-भूषा पहनना अवश्यक था। गो मांस परि-त्याग और दाढ़ी रखना भी उनके लिए ज़रूरी था। स्वयं सदा पंजाबी वेश में रहते थे। उनके सब राजनैतिक कार्यों का उद्देश्य पंजाब को उन्नत सुरक्षित और विदेशियों के सामने गौरव-युक्त स्वरूप में पेश करना था। वह पंजाबी मात्र को मज़हबी-

साम्प्रदायिक भेद भावों की उपेक्षा कर योग्यता की दृष्टि से काम पर नियत करते थे। सिक्ख हिन्दू-मुसलमान हरिसिंह नलुवा-मोतीराम दीवान, मियां नूरदीन और फकीरउद्दीन उनके विश्वासपात्र अन्तरंग सेनापति और मंत्री थे। पंजाब की एक छत्री एकता को नष्ट करने वालों को दण्ड देते हुए, उनकी जायदादों तथा ढाई चावल की खिचड़ी की हंडियां को पंजाब की देगतेग में मिलाने के लिये, उन्होंने सिक्ख मिसलों के सर्दारों—मिसल भंगी कन्हैया—के साथ २ कांगड़ा कोट के हिन्दू राजाओं और कसूर, मुलतान के अफगान पठानों निजामउद्दीन आदि के साथ, एकसा व्यवहार कर उन्हें अपना करद बनाया। मौका लगते उनकी अलग स्थिति को खतम किया। जिससे वह समय पाकर सतलुज के पड़ोसी सिक्ख सर्दारों की भाँति अंग्रेज़ों के कठपुतली न बन जांये। सेना संचालन में इलाहीबक्श तथा पेशावर के किले में कई बार मुसलमानों को रक्षा भार देकर उन्हें पंजाबी बनने का, पंजाब की रक्षा के लिये कार्य करने का अवसर दिया। यही नहीं अपने व्यक्तिगत पारिवारिक जीवन में—जहाँ उन्होंने सिक्ख और हिन्दू-स्त्रियों के साथ विवाह किये, वहाँ मुसलमान-गुलबदन और मोरां को भी अपने अन्तःपुर में स्थान दिया। महाराजा रणजीतसिंह आदर्श पंजाबी की भाँति आनन्दी और वीर पुरुष थे।

पारिवारिक और व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में दान पुण्य करते हुए वह मंदिरों और गुरुद्वारों को दान देते हुए मसजिदों और मुसलमानों को भी दान देते थे। उनके सरदार हरिसिंह आदि भी ऐसा ही व्यवहार करते थे।

उन दिनों की प्रचलित सामाजिक प्रथा के अनुसार उन्होंने बहुविवाह किये। यह बहुविवाह भी अनेक दृष्टियों से उनके

राजनैतिक उद्देश्य को पूरा करने के लिये ही हुए थे। इन विवाह-सम्बन्धों द्वारा उन्होंने कई मिस्लों को अपने पक्ष में किया था। बटाला की सदाकौर के, सास दामाम सम्बन्ध से उन्हें पंजाब में एक तंत्र राज्य कायम करने में काफी सहायता मिली थी। बहु-विवाह के आवश्यक दुष्परिणाम भी उन्हें सहने पड़े। उनकी मृत्यु के बाद इन रानियों के पुत्रों में परस्पर संघर्ष-ईर्ष्या के भावों ने उनके किये कराए काम को मटियामेट कर दिया। उनके व्यक्तिगत रंग ढंग का विवरण हम युरोपियन यात्री के शब्दों में नीचे उद्धृत करते हैं:—

१८३१ ई० के मार्च मास में, फ्रांसीसी चित्रकार मि० जैक-मॉट लाहौर आए थे—उन्होंने शालामार के फव्वारों का वर्णन करते हुए लिखा है कि महाराज प्रत्येक बात को जानना चाहते थे। उनको जिज्ञासा का शौक इतना तीव्र था–कि दूसरे की लापर-वाही को दूर कर देता था। उन्होंने मुझ से युरोप के विविध देशों के सम्बन्ध में प्रश्न किये। राजनीति के साथ धर्म-ईश्वर जीव आदि के सम्बन्ध में भी बातें पूछते थे। उसने लिखा है कि महाराज में और नैपोलियन बोनापार्ट में अनेक समानताएँ थीं।

बैरन ह्यूगल ने महाराजा का चित्र खींचा था। आज कल के उपलभ्यमान अधिकांश चित्र उसी के आधार पर हैं। उसके लेखानुसार महाराजा का कद नाटा और डौल-डौल सुदृढ़ और मोटा था। बाँयी आँख चेचक में बचपन में ही जाती रही थी। दाहिनी आँख तेज़ और चमकीली थी। उनका रंग गेहुंआ था। चेहरे पर शीतला के चिह्न थे। नाक छोटी सीधी और कुछ मोटी थी, दाढ़ी सफेद और कुछ काली मिली थी। सिर बड़ा सुडौल और गर्दन मोटी और दृढ़ थी; जिससे सिर आसानी से इधर

उधर न हिल सकता था। बाहु टांग मज़बूत और दृढ़; हाथ छोटे छोटे और सुन्दर थे। यदि किसी का हाथ पकड़ते थे तो घण्टों इसी तरह खड़े पकड़ कर उसकी अंगुलियाँ दबाया करते थे। कुर्सी पर चौकड़ी मार कर बैठते थे; एक हाथ घुटने पर तो दूसरे हाथ से दाढ़ी को छूते रहते थे। किन्तु घोड़े पर सवार होते ही चेहरा तेजस्वी रंग में चमकता था। वृद्धावस्था में अर्धाङ्ग होने पर भी उद्दण्ड से उद्दण्ड घोड़े को काबू में रखते थे। लड़ाई के दिनों में घोड़े की पीठ पर ही भोजन करते थे। चौबीस घण्टे घोड़े की पीठ पर न थकते थे। तलवार बरछी के इलावा लड़ाई में अपने पास तीर कमान भी रखते थे। बड़े २ पठान और सरदार हरिसिंह नलुआ और फूलासिंह अकाली जैसे वीर भी उनके सामने आँख न उठा सकते थे। शिकार के प्रेमी और घोड़ों के बहुत शौकीन थे। अधिकतर वे जाफ़रानी रंग के कपड़े पहनते थे विशेष अवसरों पर आभूषण हीरे जवाहरात के साथ २ वसन्ती वेश पहनते और अधिकतर महाराजा सिर पर कश्मीरी ढंग की पेचदार भी बांधते थे।

अंग्रेज़ों के राजदूत मैटकाफ ने भी उनके साथ की मुलाकात का वर्णन करते हुए उनकी संधि चर्चा करने की कुशलता की सराहना की है।

महाराजा पढ़े लिखे न थे परन्तु शासन तन्त्र में अत्यन्त प्रवीण थे, अपने समय में वीरों के लिये आदर्श थे। सारा राज कार्य फारसी, हिन्दी और पंजाबी में होता था। अपनी आज्ञाएं लिखा कर स्वयं सुनते थे। बड़ी सतर्कता सावधानी से कारोबार पर आँख रखते थे।

महाराजा रणजीत सिंह के गुण-दोष विवेचन के सम्बन्ध में, कई प्रकार के विचार प्रकट किये जाते हैं परन्तु इस बात

से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि वह अपने समय के सफल शासक थे। उन्होंने अपने शासन काल में पंजाव को एक छत्री राज्य बनाया, इसे अन्तः कलह और विदेशी आक्रमणों से मुक्त रख कर पंजाबी सेनाओं को जमरूद तक भेजा। अपने जीवन काल में अंग्रेज़ों को और अफ़गानों को पंजाब में नहीं आने दिया।

समय समय पर पंजाव में शासन तथा आक्रमण करने वाले अनेक विजेताओं:-सिकन्दर पोरस सुलतान महमूद अकबर शिवाजी और नैपोलियन के साथ इनका मुकावला किया जा सकता है। सिकन्दर की भाँति हर समय युद्ध के लिये तैयार रहते थे; कभी नहीं थकते थे, और पोरस की भाँति विदेशियों की रोकथाम करते थे। एक बार मुलतान पर आक्रमण करते समय सेना ने आराम करना चाहा महाराज ने कहा 'बादशाह आराम नहीं किया करते उन्हें हर समय लड़ाई के लिये तैयार रहना चाहिये'। सुलतान महमूद की भांति भयंकर खतरे के मौके पर भी स्वयं आगे आने में संकोच नहीं करते थे। घोड़े पर अटक के दरया को स्वयं सबसे पहले पार किया था। शिवाजी की भाँति योग्य व्यक्तियों को चुनकर परख कर उनसे काम लेने में सिद्ध हस्त थे। स० हरिसिंह नलुआ इलाही बख्श तथा फ्रांसीसी सेनापतियों से महाराज ही काम ले सकते थे। नैपोलियन की भाँति साधारण स्थिति से ऊपर उठकर समकालीन बादशाहों को हर समय चिन्तित तथा परेशान रखा। इनके जीते जी अगरेज़ चैन की नींद न सोए; हर समय सतर्क और चौकन्ने रहते थे,और महाराज को खुश रखने की कोशिश में रहते थे।

महाराजा रणजीतसिंह बादशाह अकबर के साथ ९० प्रतिशत बातों में मिलते-जुलते थे। दोंनों अशिक्षित होते हुए भी

बहुश्रुत थे। दोनों ने अपने पिता के कर्मचारियों से मुक्ति पाने में साहस से काम लिया। दोनों शस्त्र विद्या के धनी थे। मुसलमान होते हुए हिन्दुओं से काम लेने में, और हिन्दू सिक्ख होते हुए मुसलमानों से काम लेने में, दोनों सफल थे। अकबर ने हिन्दू स्त्रियों से विवाह कर राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति में उन्हें सहायक बनाना चाहा, उसी प्रकार महाराज ने भी वैवाहिक सम्बन्धों द्वारा राजनैतिक स्वार्थ सिद्ध करने में इनका प्रयोग किया। अपने दरबार में विदेशियों को रखकर इनसे अधिक से अधिक लाभ उठाने में दोनों चतुर थे। दोनों अपने सेनापतियों से बढ़चढ़ कर शत्रु से लोहा लेने में साहसी और निर्भय थे।

महाराजा रणजीतसिंह बिखरी हुई शक्तियों को संगठित कर, विरोधी शक्तियों को छिन्नभिन्न करने में सिद्ध हस्त थे। मुट्ठी भर पञ्जाबियों की सहायता से साधन सम्पन्न विरोधी—स्वदेशी विदेशी शक्तियों की भारी संख्या को शक्ति हीन कर अपनी राज सीमा उत्तर में हिन्दुकुश अफ़गानिस्तान तक पहुँचाई। इनके सिंहनाद से अफ़गानिस्तान और ख़ैबर की घाटियां आज भी गूंज रही हैं। मृत्यु के समय इनके कोष में कोहनूर हीरे के अतिरिक्त १२ करोड़ रुपया था। इनका सैन्यबल, जो जान पर खेलने वाला, नये से नये तात्कालिक युद्ध सम्बन्धी आविष्कारों और सेना संचालन के ढंगों से सुसज्जित था और इस पञ्जाबी सेना से अंगरेज़ और अफ़गान थर थर काँपते थे।

रणजीतसिंह अपने समय के राष्ट्रनिर्माता सेनापतियों में अग्रगण्य और महायोजक थे। इनका क्रान्तिकारी वीर चरित आकर्षक और अनुकरणीय है।

आपस में उलझे हैं शेर

अजब तेरी कुदरत, अजब तेरा खेल।
मकड़ी के जाले में उलझे हैं शेर ॥

महाराजा रणजीतसिंह के देहान्त के बाद, उनके उत्तराधिकारियों में परस्पर ईर्ष्या द्वेष और अविश्वास के ताने बाने बुने जाने लगे। शक्तिशाली सर्दार महाराजा के किसी एक पुत्र को आगे रख कर अपनी दलबन्दी करते, उत्तराधिकारी शक्ति शाली सर्दारों में से किसी एक को अपनाकर, राजगद्दी और अधिकार प्राप्ति की कोशिश करते। खालसा फौज हरेक से कीमत मांग कर अपनी सत्ता को सब से ऊपर रखती। कोई ऐसा व्यक्ति न था जो सब को नियंत्रण में रख कर उन्हें योग्य स्थानों पर नियुक्त करता। महाराजा खड्गसिंह शक्तिशाली थे। पिता के अनेक गुण उनमें थे परन्तु शराब और अफ़ीम के व्यसनों तथा अपने पुत्र नौनिहालसिंह के षड्यंत्रकारी समर्थकों ने इन्हें कुछ न करने दिया। ब्रिटिशसिंह और अफगान खूंखार चीते को अपने सिंहनाद से कम्पित करने वाला पंजाब केसरी शान्त हो चुका था। उसके सिंहासन की शोभा और तेज षड़यंत्र कारियों के ताने बानों से मंद हो रहा था। महाराजा खड्गसिंह राजसिंहासन पर बैठे। महाराजा रणजीतसिंह के शेरसिंह, तारासिंह, पिशोरासिंह, कश्मीरासिंह, मुलतानासिंह, दिलीपसिंह लड़के थे।

शुरु में ही महाराजा खड्गसिंह और राजा ध्यानसिंह में मनमुटाव हो गया। म० खड्गसिंह ने चेतसिंह को मंत्री बनाया स्वयं

महाराजा अफ़ीम और शराब के नशे में चूर हो भोग विलास में पड़ गये। राजा ध्यानसिंह ने खड्गसिंह को ठीक रास्ते पर लाने के स्थान पर उनके पुत्र महाराजा नौनिहालसिंह से मिल कर उनके विरुद्ध षड्यंत्र रचने शुरु किये। अंग्रेज़ कर्नल वोडन खड्गसिंह के पक्ष में थे। ध्यानसिंह ने यह बात फैलाई कि महाराजा खड्ग-सिंह अंग्रेज़ों को अपना कर उन्हें धीरे २ राज काम में मौका दे रहे हैं।

शेरसिंह अपने आप को महाराजा का ज्येष्ठ पुत्र कह कर अंग्रेज़ों से मिल कर राज्य प्राप्त करने की धुन में था। राजा ध्यानसिंह ने चेतसिंह मंत्री को मरवा कर महाराजा खड्गसिंह को किले में बन्द कर १८३६ में उनके लड़के नौनिहालसिंह को २१-२२ वर्ष की उमर में महाराजा बना दिया। १८४० सन् ५ नवम्बर को बीमारी से महाराजा खड्गसिंह का देहान्त हो गया। राजा ध्यानसिंह और महाराजा नौनिहालसिंह मिल कर राज्य शासन करने लगे। अंग्रेज़ी राजदूत कर्नल वीड को बदलवा कर उसके स्थान पर क्लार्क को राजदूत बनवाया।

राजकुमार नौनिहालसिंह पिता का अन्त्येष्टि कर किले में जा रहे थे कि दरवाजे की शहतीर उनके ऊपर गिर पड़ी। मूर्छितावस्था में ध्यानसिंह उन्हें अपने पास लेगये, उनकी मृत्यु का समाचार तीन चार दिन तक गुप्त रखा—महाराजा की मां चांदकौर को भी राजकाज संभालने को कहा। इसी समय शेरसिंह भी गद्दी लेने फौज लेकर लाहौर आ गया। ध्यानसिंह और अंग्रेज़ों ने शेरसिंह को महाराजा बना दिया। दूसरी तरफ़ महारानी चांदकौर ने सरदार अतरसिंह सिंधानवाले को लाहौर बुला कर स्वयं राजगद्दी लेने के लिये घोषित किया कि नौनिहालसिंह की स्त्री गर्भवती है। कई सिक्ख

महारानी के पक्ष में भी थे। राजा ध्यानसिंह ने महारानी को पंजाब की महाराणी और शेरसिंह को राज सभा का प्रधान मंत्री नियत किया और स्वयं मंत्री बन गया। महारानी ने सिंधानवाले अतरसिंह को अपना निजी मंत्री बनाया। एक तरफ़ शेरसिंह अंग्रेज़ों और ध्यानसिंह से मिलकर सेना सहित किले पर आया और दूसरी तरफ़ महारानी अतरसिंह से मिलकर षड्यंत्रों में लग गई। राजा ध्यानसिंह ने लाहौर के सिक्ख सर्दारों को अपने साथ मिला कर लाहौर पर हमला कर दिया। शेरसिंह ने किले पर अधिकार कर लिया, १८ जनवरी १८४१ को शेरसिंह महाराजा बना। इन्हीं दिनों सिक्ख सेना ने नीलसिंह को जो अंग्रेज़ी सेना पंजाब में ला रहा था, मार दिया। खालसा अंग्रेजों के खिलाफ़ था। इधर महाराजा शेरसिंह ऐश आराम में पड़ गया। नौनिहालसिंह की मां चांदकौर से चादर डाल कर विवाह करना चाहा; उसने न माना। इस पर दासियों द्वारा उसे मरवा दिया। राजा ध्यानसिंह ने इन दासियों का नाक कान कटवा कर उन्हें रावी पार किया। अंगरेज़ों की सिफारिश पर महाराजा ने सिंधानवालों को फिर लाहौर बुला लिया, राजा ध्यानसिंह इससे खिज गये और वह कुंवर दिलीपसिंह से प्यार करने लगे। सिंधानवाले राजा ध्यानसिंह और महाराजा शेरसिंह दोनों से जलते थे। उन्होंने महाराजा शेरसिंह को ध्यान-सिंह की चिट्ठी दिखा कर कहा कि वह तुम्हें मरवा कर कुंवर दिलीपसिंह को महाराजा बनाना चाहता है। दोनों में परस्पर अविश्वास और द्वेष पैदा किया और सिंधानवाले अजीतसिंह ने— शेरसिंह को मारने का हुक्म रुपये के लालच में राजा ध्यानसिंह से ले लिया। एक दिन ध्यानसिंह, दीनानाथ के साथ महाराजा के साथ कुश्ती के पहलवानों को इनाम देने बारहदरी गये। इनाम देकर

महाराजा सुस्ता रहे थे। सिंधान वाले अजीतसिंह ने एक बन्दूक की तारीफ की शेरसिंह ने देखने को हाथ बढ़ाया कि झट उसने गोली दाग दी। शेरसिंह ने 'यह दग़ा' कहा और वहीं मर गए। महाराजा शेरसिंह के साथी बुधसिंह ने तलवार से अजीतसिंह के दो साथियों को मार दिया, स्वयं भी पैर फिसलने से गिर कर मारा गया। इन हत्यारों ने वहीं बाग में पूजा पाठ में लगे महाराजा शेरसिंह के पुत्र प्रतापसिंह को भी मार दिया। शहर में सनसनी फैल गई। कातिल ध्यानसिंह को मिले—पूछा—अब कौन राजा बनेगा—उसने कहा कुंवर दिलीपसिंह—यह सुनते ही अजीतसिंह और उसके साथी गुरमुखसिंह ने ध्यानसिंह पर भी गोली चला उसे भी खतम किया। और सिंधानवालिया ने अजीतसिंह को मंत्री और दिलीपसिंह को महाराजा बनाया। इधर ध्यानसिंह के लड़के हीरासिंह ने पेशावर में यह समाचार सुना और अपने आप को खालसा के समर्पित किया। महाराजा शेरसिंह और ध्यानसिंह के कातिलों के खिलाफ़ खालसा को प्रलोभन तथा उत्तेजना देकर अपने साथ मिला कर चालीस हज़ार सिख खालसा के साथ लाहौर किले पर धावा बोल दिया। कातिल अजीतसिंह का सिर काटा गया। लहनासिंह को तहखानों में से निकाल कर मार दिया। अतरसिंह भाग कर अंगरेज़ सरकार से मिल गये। इधर हीरासिंह ने कुंवर दिलीपसिंह को महाराजा बनाया और स्वयं मंत्री की हैसियत से काम संभाला।

इस समय कुंवर दिलीपसिंह की अवस्था ५ साल की थी। राजा हीरासिंह महाराजा रणजीतसिंह के विशेष प्रिय तथा दत्तक पुत्र जैसे थे। खालसा पर भी उनका प्रभाव था। उसने सिंधानवालिया को दण्ड देने का भी निश्चय किया। लाहौर दरबार में

जम्मू के पहाड़ी डोगरा और सिंधानवालिया के दो पक्ष बन गये। महाराजा रणजीतसिंह के पुत्र कुंवर दिलीपसिंह इनके कठपुतली बन गये। दोनों अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये एक दूसरे के खिलाफ षड्यंत्र रचकर-एक दूसरे को बदनाम कर खालसा को अपने साथ रखने की कोशिश करते। खालसा जिसके पक्ष में होता, उस का प्रतिद्वन्दी अंगरेजों की सहायता प्राप्त करता। इस प्रकार से राजदरबार-षड्यंत्र कारियों की रंग स्थली बन गया। लाहौर दरबार का प्रभाव कम होने लगा। मुलतान कश्मीर आदि के सूबेदार स्वतंत्र होने लगे। राजकर कम होने लगा। इधर महारानी ज़िन्दा राजमाता के रूप में कुंवर दिलीपसिंह की संरक्षिका बनीं। राजा हीरासिंह-प्रधान मंत्री बने। शासन तंत्र संभलने लगा। परन्तु राजा हीरासिंह के विरुद्ध महारानी ज़िन्दा का भाई जवाहरसिंह और राजा सुचेतसिंह-हो गये थे। इन्होंने खालसा फौज को कहा कि राजाहीरासिंह-कुंवर दिलीप को तंग करता है यदि आप लोग महाराज की रक्षा न करोगे तो मैं उसे अंगरेज़ों के पास ले जाऊंगा। खालसा भड़क उठे। हीरासिंह ने इस बात से फायदा उठाकर खालसा को जवाहरसिंह और सुचेतसिंह के खिलाफ भड़काया कि यह अंगरेजों के साथ मिले हुए हैं। राजा हीरासिंह ने जवाहरसिंह को कैद कर लिया-और सुचेतसिंह की सेना को निःशस्त्र करके किले से निकाल दिया। वह-गुलाबसिंह के साथ जम्मू चला गया। इसी समय राजा हीरासिंह के सलाहकार पंडित जल्ला ने शेरसिंह के पुत्र सहदेव को कुंवर दिलीपसिंह के स्थान पर महाराजा बनाने की चर्चा छेड़ी। उधर गुलाबसिंह ने जम्मू में यह अफवाह फैलाई कि सिंधान वाले अतरसिंह महाराजा रणजीतसिंह के पुत्र पिशौरासिंह और कश्मीरासिंह से

मिलकर राज्य पर अधिकार करना चाहते थे। राजा हीरासिंह ने दोनों के दमन के लिये लाहौर से सेना भेजी—खालसा ने राजा हीरासिंह को कैद कर लिया—राजा हीरासिंह ने राजा जल्ला को राज-कार्य से हटाने और पिशोरासिंह और कशमीरासिंह की रक्षा का निश्चय दिलाया। उधर गुलाबसिंह ने जम्मू में दोनों राजकुमारों से रुपये लेकर उन्हें छोड़ दिया। खालसा-फौज-हीरासिंह और गुलाबसिंह दोनों से असन्तुष्ट थी—उसने राजा सुचेतसिंह को जम्मू से मंत्री बनने के लिये बुलाया। इधर राजा हीरासिंह को यह पता लगा; उधर सुचेतसिंह-१८४३ को २८ मार्च को थोड़ी सी सेना के साथ शहदरा आया। राजा हीरासिंह ने खालसाओं के सामने आत्म समर्पण कर और सोने का एक २ कड़ा हरेक सिपाही को देने का लालच देकर अपने पक्षमें किया। सुचेतसिंह को खालसा की ओरसे लौटने का संदेश भेजा गया परन्तु वह न लौटा। अन्त में ताया सुचेतसिंह और भतीजे हीरासिंह में—युद्ध हुआ। सुचेत सिंह और उसके ४०० साथी हीरासिंह की १४ हज़ार सेना से खूब लड़े—सुचेतसिंह मारा गया—उसकी लाश ढुंढवा कर हीरासिंह ने सन्मान पूर्वक उसकी अन्त्येष्टि की। अंगरेज़ों ने सुचेतसिंह निःसन्तान की सम्पत्ति पर अपना हक बताया परन्तु खालसा तथा हीरासिंह ने इसे नहीं माना, और उसपर लाहौर दरबार का कब्जा होगया। अंगरेजी इलाके की सम्पत्ति अंगरेजों ने लेली। इस समय महारानी ज़िन्दा के भाई जवाहरसिंह ने अपने आपको बेबस पाया। वह यहां से अमृतसर चला गया और बाबा पुरोहितों तथा अन्यों से मिलकर राजा हीरासिंह के विरुद्ध षड्यंत्र करने लगा। जवाहरसिंह ने इस काम में ध्यानसिंह के प्रिय पात्र और हीरा-सिंह के मित्र लालसिंह को भी शामिल कर लिया। इन्हीं दिनों

माझा के एक व्यक्ति बाबा वीरसिंह ने १५०० सवार इकट्ठे कर, कहना शुरू किया कि पंजाब की हकूमत गुरु गोविन्दसिंह की है, दिलीपसिंह नाबालिग है हीरासिंह अयोग्य है। खालसा को अपना प्रतिनिधि राजा बनाना चाहिए; साथ ही सिंधानवालों के पक्ष में प्रचार शुरू किया। कुँवर कश्मीरासिंह और पिशौरासिंह भी गुलाब सिंह और हीरासिंह के षडयंत्रोंसे तंग होकर इनसे मिल गये। दरबार ने इनको दण्ड देने के लिये सेना भेजी। लड़ाई में वीरसिंह अतरसिंह और कुँवर कश्मीरासिंह मारे गये। पिशौरासिंह लाहौर आगया हीरासिंह ने उसे मीठी बातोंसे अपना लिया। उसे कश्मीरासिंह की मौत का भी पता न दिया। अब धीरे२ हीरासिंह के विरुद्ध—वातावरण गर्म होने लगा। पंडित जल्ला—राजनीति तथा—अंगरेजों की चालों को समझता था—उन्हें रोकता भी था—परन्तु अपने रूखे स्वभाव से सिख सर्दारों को चिढ़ा देता था। कभी २ महारानी की भी निन्दा करता था। अफ़वाह फैल गई कि जल्ला और हीरासिंह महारानी जिन्दा को कई तरह से तंग करते हैं। खालसासे डरकर दोनों लाहौर से भागने की तैयारी में थे, खालसा ने दोनों को कैद कर लिया—जल्ला का सिर कुत्तों को खिला दिया—राजा गुलाबसिंह के लड़के सोहनसिंह का सिर मोरी दरवाजे पर—और हीरासिंह का लाहौरी दरवाजे पर लटका दिया।

अब महारानी जिन्दा के भाई जवाहर सिंह को खालसा ने मन्त्री बनाया। खालसा फौज जम्मू राजकर वसूल करने गई। कई वर्षों का कर शेष था। गुलाबसिंह ने तीन लाख रुपया—खालसा में बांटा और छुट्टी पाई, लाहौर आया। महारानी की खुशामद की। महारानी ने ६ लाख रुपया जुर्माना कर उसे जम्मू भेज दिया—वहाँ उसने पिशौरासिंह को जवाहरसिंह के विरुद्ध

भड़काया। पिशौरासिंह को खालसा से, जवाहरसिंह के खिलाफ मदद न मिली—वह वहाँ से अटक गया। पठानों की मदद से अटक पर अधिकार कर अपने को पंजाब का महाराजा घोषित किया। लाहौर दरबार ने पिशौरासिंह के खिलाफ खालसा को भेजा उन्होंने महाराजा रणजीतसिंह के पुत्र के विरुद्ध लड़ने से इनकार कर दिया। तब जवाहरसिंह ने चरतसिंह अटारी वाले को दमन के लिये भेजा। यह युद्ध में पिशौरा सिंह को न जीत सकते थे। किला खाली करने पर रानी जिन्दा से जागीर दिलाने के लालच में उसे फँसाया। वह किले से बाहर निकला—कैद कर लिया और वहीं पिशौरासिंह का प्राणान्त कर दिया। लाहौर जब यह खबर पहुँची—खालसा उत्तेजित हो उठा। जवाहरसिंह खुश हो गया। उसने खालसा को शान्त करना चाहा—लाचार रानी के कहने से कुंवर दिलीपसिंह के साथ हाथी पर सवार होकर खालसा के पास गया। खालसा ने उसे देखकर, बिगुल बजाया। कुंवर दिलीपसिंह को उससे छीन लिया और पिशौरासिंह को मरवाने के अपराध में वहीं संगीनों से उसे छेद-कर मार डाला। १८४५ई० २१ सितम्बर को महारानी जिन्दा भाई की मौत से दुःखी होकर रोने लगी। खालसा ने जवाहिरसिंह के कातिल उसे सौंपे। कुछ डोगरे भी पकड़े गये, इन सबको शहर से बाहर निकाल दिया और रानी को शान्त करने की कोशिश की। जवाहरसिंह की मौत से पंजाब में अराजकता और अशान्ति फैल गई। कोई मंत्री बनने को तैयार न होता था। महारानी ज़िन्दा राज्य संरक्षिका नियत हुई, दीवान दीनानाथ भाई रामसिंह और मिश्र लालसिंह के परामर्श से राज कार्य करने लगी। रानी ने मंत्रिपद के लिये ५ नामों की पर्चियां डल-

माझा के एक व्यक्ति बाबा वीरसिंह ने १५०० सवार इकट्ठे कर, कहना शुरू किया कि पंजाब की हकूमत गुरु गोविन्दसिंह की है, दिलीपसिंह नाबालिग है हीरासिंह अयोग्य है। खालसा को अपना प्रतिनिधि राजा बनाना चाहिए; साथ ही सिंधानवालों के पक्ष में प्रचार शुरू किया। कुँवर कश्मीरासिंह और पिशौरासिंह भी गुलाब सिंह और हीरासिंह के षडयंत्रोंसे तंग होकर इनसे मिल गये। दरबार ने इनको दण्ड देने के लिये सेना भेजी। लड़ाई में वीरसिंह अतरसिंह और कुँवर कश्मीरासिंह मारे गये। पिशौरासिंह लाहौर आगया हीरासिंह ने उसे मीठी बातोंसे अपना लिया। उसे कश्मीरासिंह की मौत का भी पता न दिया। अब धीरे २ हीरासिंह के विरुद्ध–वातावरण गर्म होने लगा। पंडित जल्ला–राजनीति तथा–अंगरेजों की चालों को समझता था–उन्हें रोकता भी था–परन्तु अपने रूखे स्वभाव से सिख सर्दारों को चिड़ा देता था। कभी २ महारानी की भी निन्दा करता था। अफवाह फैल गई कि जल्ला और हीरासिंह महारानी जिन्दा को कई तरह से तंग करते हैं। खालसासे डरकर दोनों लाहौर से भागने की तैयारी में थे,खालसा ने दोनों को कैद कर लिया–जल्ला का सिर कुत्तों को खिला दिया–राजा गुलाबसिंह के लड़के सोहनसिंह का सिर मोरी दर्वाजे पर–और हीरासिंह का लाहौरी दरवाजे पर लटका दिया।

अब महारानी जिन्दा के भाई जवाहर सिंह को खालसा ने मन्त्री बनाया। खालसा फौज जम्मू राजकर वसूल करने गई। कई वर्षों का कर शेष था। गुलाबसिंह ने तीन लाख रुपया–खालसा में बांटा और छुट्टी पाई, लाहौर आया। महारानी की खुशामद की। महारानी ने ६ लाख रुपया जुर्माना कर उसे जम्मू भेज दिया—वहाँ उसने पिशौरासिंह को जवाहरसिंह के विरुद्ध

भड़काया। पिशौरासिंह को खालसा से, जवाहरसिंह के खिलाफ़ मदद न मिली—वह वहाँ से अटक गया। पठानों की मदद से अटक पर अधिकार कर अपने को पंजाब का महाराजा घोषित किया। लाहौर दरबार ने पिशौरासिंह के खिलाफ़ खालसा को भेजा उन्होंने महाराजा रणजीतसिंह के पुत्र के विरुद्ध लड़ने से इनकार कर दिया। तब जवाहरसिंह ने चरतसिंह अटारी वाले को दमन के लिये भेजा। यह युद्ध में पिशौरा सिंह को न जीत सकते थे। क़िला खाली करने पर रानी ज़िन्दा से जागीर दिलाने के लालच में उसे फँसाया। वह क़िले से बाहर निकला—क़ैद कर लिया और वहीं पिशौरासिंह का प्राणान्त कर दिया। लाहौर जब यह खबर पहुँची—खालसा उत्तेजित हो उठा। जवाहरसिंह खुश हो गया। उसने खालसा को शान्त करना चाहा—लाचार रानी के कहने से कुंवर दिलीपसिंह के साथ हाथी पर सवार होकर खालसा के पास गया। खालसा ने उसे देखकर, बिगुल बजाया। कुंवर दिलीपसिंह को उससे छीन लिया और पिशौरासिंह को मरवाने के अपराध में वहीं संगीनों से उसे छेद-कर मार डाला। १८४५ई० २१ सितम्बर को महारानी जिन्दा भाई की मौत से दुःखी होकर रोने लगी। खालसा ने जवाहिरसिंह के कातिल उसे सौंपे। कुछ डोगरे भी पकड़े गये, इन सबको शहर से बाहर निकाल दिया और रानी को शान्त करने की कोशिश की। जवाहरसिंह की मौत से पंजाब में अराजकता और अशान्ति फैल गई। कोई मंत्री बनने को तैयार न होता था। महारानी जिन्दा राज्य संरक्षिका नियत हुई, दीवान दीनानाथ भाई रामसिंह और मिश्र लालसिंह के परामर्श से राज कार्य करने लगी। रानी ने मंत्रिपद के लिये ५ नामों की पर्चियां डल-

थाई, पर्ची लालसिंह के नाम निकली। उसने लालसिंह को राजा की पदवी देकर दीवान बनाया और तेजसिंह को सेनापति—परन्तु खालसा ने इसे न माना।

संघर्ष शुरू हुआ—रानी जिन्दा, लालसिंह और तेजसिंह एक तरफ़, खालसा की सेना दूसरी तरफ़—कुंवर दिलीपसिंह बीच में—हरेक शक्तिशाली उसे अपना खिलौना बनाकर अपनी ताकत बढ़ाने की कोशिश करने लगा। महारानी जिंदा खालसा से स्वतंत्र होना चाहती थी, उसकी शक्ति को कम करना चाहती, और अपने मंत्री, लालसिंह और तेजसिंह की शक्ति बढ़ाना चाहती थी। इन दोनों ने खालसा की शक्ति को कम करने के लिये अंगरेज़ों के इशारे पर खालसा को उत्तेजित कर, अंगरेज़ों से लड़ा दिया। खालसा खूब लड़ा, परन्तु रानी जिंदा की अदूरदर्शिता और लालसिंह और तेजसिंह के विश्वास घात के कारण अंगरेज़ जीत गये।* कई

*सिक्ख अलीवाल युद्ध की पराजय से सिक्ख हताश हो रहे थे। इतने में बूढ़े सरदार श्यामसिंह अटारी वाले की नसों में खून जोश मारने लगा, उन्होंने वार घोषणा कर गुरु गोविन्दसिंह की आत्मा को प्रसन्न करने के लिये तलवार हाथ में लेकर रण भेरी बजाई, खालसा उनके साथ आगे बढ़ा। सफ़ेद दाढ़ी, सफ़ेद अंगरखा, सफ़ेद पगड़ी के साथ हाथ में तलवार लिये सफ़ेद घोड़ी पर 'वाह गुरु की फ़तह' के नारे के साथ २ रणांगण में कूद पड़े, अंगरेज़ी सेना पर टूट पड़े। अंगरेज़ी सेना के अनेक वीर धराशायी किये। जब देखा शत्रु संख्या में ज्यादः है सर्वनाश सामने उपस्थित है, सिख वीरों ने अंगरेज़ी ५०वीं रेजिमेण्ट पर आक्रमण किया। वेग से हवा में तलवार घुमाते हुए अंगरेज़ों की गोलियों की बौछार से सात गोलियां शरीर में पार हो गईं; किन्तु अन्तिम दम तक लड़ते २ अंगरेज़ों की लाशों पर सदा के लिये सो गये।

सर्दार भी अंगरेज़ों के साथ मिल गये। मौका देख कर गुलाबसिंह आदि ने अंगरेज़ों से मिलकर खालसा की सेना को शक्तिहीन बनाने की भी कोशिश की।

‡अंगरेज़ों ने हरेक से अपना मतलब पूरा किया जब तक खालसा फौज की शक्ति कम नहीं हुई; तब तक खालसा विरोधी गुट को सहायता देते रहे, उकसाते रहे सर्दारों को फँसाते रहे। जब खालसा फौज युद्धों में हार गई, तो उन सर्दारों को जवाब दे दिया। अतरसिंह, चरतसिंह, शेरसिंह जो अंगरेज़ों के भक्त थे, उन्हें भी अपना मतलब सिद्ध होने पर जवाब दे दिया। इन असन्तुष्ट सिक्ख सर्दारों ने ही चिलियान वाला और गुजरात के युद्धों में अंगरेज़ों के विरुद्ध हथियार उठाए। राजा तेजसिंह आदि स्वार्थी सिक्ख सर्दारों की अभिसंधि के कारण लाहौर दरवार के विरोधी होने; और दीवान मूलराज और शेरसिंह में परस्पर मेल न हो सकने से; सिक्ख इस युद्ध में हार गये। इस पराजय के बाद आत्मसमर्पण कर शेरसिंह ने अंगरेज़ सेनापति गिलबर्ट के दांई ओर खड़े होकर यह घोषणा की :—

‡सन् १८४३ ई० को ब्रिटिश फ्रेण्ड आफ इंडिया नाम की लंदन की पत्रिका ने लिखा था, हमें जवर्दस्त संदेह है कि कम्पनी ने रिश्वतें दे देकर इन उपद्रवों को खड़ा कराया और उन्हें भड़काया है, एक अर्थलोलुप कम्पनी जिसके पास किराए की सेना है बिना लूट मार के नहीं रह सकती। चूंकि इस समय जरूरी तौर पर इंगलिस्तान की तमाम शक्ति इन उपद्रवों की जड़ में हैं इस लिये हमें विल्कुल साफ दिखाई दे रहा है कि लाहौर का शहर लूटा जायगा और वहां के राज के टुकड़े २ किये जायेंगे।

We see too clearly, that Backed as it necessarily now is by all resources of Britain, Lahoro will be sacked, and the Kingdom rent in pieces.

"अंग्रेजों के अनेक अत्याचारों से तंग आकर देश रक्षा के लिये हमने युद्ध किया था। अब शस्त्र समाप्त होने पर, आत्म समर्पण करते हैं। हमने जो कुछ किया है उसके लिये हमें पश्चात्ताप नहीं। हमने जो कुछ अब किया है शक्ति होने पर कल भी वही करेंगे"। पास खड़े प्रत्येक सिख की आँखों से आँसू बह रहे थे।

शेरसिंह के आत्म समर्पण के साथ लड़ाई समाप्त हुई। लार्ड डलहौजी ने अपने प्रतिनिधि मि० इलियट को लाहौर 'कौंसल आफ रीजैन्सी' के प्रेजिडेण्ड सर हैनरी लारेंस के पास पंजाब के भावी शासन के सम्बन्ध में अपनी आज्ञाओं के साथ भेजा। इसमें लिखा गया कि यदि 'कौन्सल आफ राजैन्सी' के सदस्य 'राजसिंहासन' छोड़ने के लिए साथ के पत्र में अंकित शर्तों पर हस्ताक्षर कर दें तो दरबारियों तथा कुंवर दिलीप सिंह को भविष्य के लिये जायदाद जागीर आदि दी जाय, यदि न करें तो सरकार अपना कार्यक्रम निश्चित करेगी। कौन्सल के आठ सदस्यों में से शेरसिंह और छतरसिंह को छोड़ कर शेष ६ सदस्य पिछले युद्ध में संधि के अनुसार अंगरेज़ों के साथ रहे थे। इन ६ सदस्यों ने गवर्नर जनरल के प्रतिनिधि के सामने महाराज कुंवर दिलीप सिंह को सिंहासनच्युत करने का प्रतिवाद किया और महाराजा के पंजाब निर्वासन का विरोध किया। साथ ही दीवान दीनानाथ ने पुरानी संधियों के कागजात पेशकर उनके आधार पर महाराजा के अधिकार को सुरक्षित करने पर जोर दिया और कहा कि यदि उन्हें इस प्रकार निकाला जायगा तो वह स्वेच्छाचारी और उच्छृङ्खलता का जीवन व्यतीत कर महाराजा रणजीतसिंह के नाम को बदनाम करेंगे। इस पर रेज़ीडेण्ट ने कहा हम उसे दक्खन

भेज देंगे। राजा तेजसिंह ने कहा वहां नहीं भेजना चाहिए क्योंकि पता नहीं वहां मुसलमानों का ज़ोर है या हिन्दुओं का—इन्हें भेजना ही है तो बनारस भेजें। रैजिडैन्ट ने वचन दिया कि महाराज को गंगा से दूर नहीं भेजेंगे। इस पर दीवान दीनानाथ और राजा तेजसिंह तथा अन्य सदस्यों ने समझ लिया कि अब किसी प्रकार का प्रतिवाद-या प्रार्थना निरर्थक है, संरक्षक की हैसियत में सिंहासन त्यागपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये !!!

अन्तिम दरबार

१८४९ ई० २९ मार्च को लाहौर के राजमहल में अन्तिम दरबार किया गया। महाराजा रणजीतसिंह के विक्रमार्जित राजसिंहासन पर उसके अबोध कुंवर दिलीपसिंह के बैठने का यह अन्तिम अवसर था। सर हैनरी लारेंस—जो कि कौंसल का प्रधान रैजिडैन्ट था, मि० ईलियट के साथ शस्त्र-युक्त घुड़-सवारों के पहरे में किले की ओर आया। कुंवर दिलीपसिंह अपने संरक्षक अभिभावकों के साथ किले के दरवाज़े पर उनको मिले और इनको दीवानेखास के दरबार में ले गये। अबोध बालक नपुंसक अभिभावकों की संरक्षा में अपनी मौत को निमंत्रण दे रहा था !! नियत समय पर राजसिंहासन पर कुंवर दिलीपसिंह को बैठाया गया। इधर दीवान दीनानाथ तथा अन्य सदस्य खड़े हुए। एक तरफ सर हैनरी लारेंस और मि० ईलियट विश्वासघात की जीती जागती मूर्ति के रूप में अगरेज़ जाति की राक्षसी राज-तृष्णा और रक्तरंजित कालिमा का नग्न प्रदर्शन कर रहे थे। दीवान दीनानाथ ने फ्रांस के नैपोलियन के पतन के बाद अंग्रेजों द्वारा नैपोलियन के उत्तराधिकारी के साथ किये गये, उदारता

पूर्ण व्यवहार का ज़िक्र करते हुए, फिर एक वार महाराजा रणजीतसिंह के उत्तराधिकारी के साथ नर्मी का व्यवहार करने की अपील की। दोनों अंग्रेज़ों ने कठोरता पूर्वक उसे ठुकरा कर कुंवर दिलीप सिंह से स्वयं सिंहासन छोड़ने के कागज पर हस्ताक्षर करा लिये, और कुंवर दिलीप सिंह को राज सिंहासन से उतार दिया। १४ साल के निःशस्त्र असहाय राज कुमार को शस्त्र-युक्त घुड़ संवारों, पैनी तलवारों और नेजों की छाया में, सिंहासन-च्युत करने वाले सर हैनरी लारैन्स और मि० इलियट और उनके स्वामी डलहौजी की इस कमीनी हरकत को मनुष्यता तो क्या, पशुता से भी गया बीता कहना चाहिए! असहाय निःशस्त्र विधवा रानी ज़िन्दा और कुंवर दिलीपसिंह को जीत कर अपने आपको विजयी कहने वाली अंग्रेज़ जाति को शत शत धिक्कार है!!! उसी समय किले पर से खालसा का झण्डा उतार कर युनियन जैक लहराया गया। महाराजा रणजीत सिंह के मुकुट के बीच में जड़े कोहनूर को भी विक्टोरिया महाराणी के मुकुट के लिये लंदन भेज दिया गया।

५ अप्रैल को राजकीय घोषणा द्वारा गद्दीच्युत कुंवर दिलीप सिंह और उसके दरबारियों के लिए ५ लाख रुपये का वार्षिक वेतन नियत किया। पहले सात वर्षों में कुंवर दिलीप सिंह को केवल १ लाख २० हज़ार रुपये दिये गये। फिर यह रकम १½ लाख की फिर ७० हज़ार कर दी गई।

उनके पैतृक हीरे जवाहरात अढ़ाई लाख में नीलाम हुए परन्तु कुंवर दिलीप सिंह को केवल ३१ हज़ार रुपये दिये। अंग्रेज़ राज-नीतिज्ञ-कुंवर दिलीप सिंह को राजनैतिक दृष्टि से समाप्त करके ही नहीं रुके, उन्होंने सर जानलाजिन को उसका अध्यापक नियत

कर उसकी शिक्षा दीक्षा इस प्रकार से की कि वह अपने राजवंश और जन्म-भूमि पंजाब की साधरण जनता की धर्म-सभ्यता से पृथक और वंचित होकर ईसाई हो गया।

यही नहीं अंगरेज़ों ने उसे जबर्दस्ती माता से पृथक् कर विलायत भेज कर उसका राजनैतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से सर्वथा बीज नाश कर दिया। कुछ समय बाद बड़े होने पर कुंवर दिलीपसिंह के हृदय में आत्मग्लानि के भाव पैदा होने लगे, उसने पुनः मातृ भूमि में आकर प्रायश्चित्त करना चाहा—अपनी असहाय माता को भी विलायत बुला लिया—परन्तु पराधीन परतन्त्र व्यक्ति रोने और पश्चात्ताप करने में भी परवस होते हैं !! अन्तिम दिनों महाराजा दिलीपसिंह की मन की अवस्था निम्नलिखित पत्र से स्पष्ट होती है। महाराजा दिलीप सिंह भारतवर्ष आने लगे थे परन्तु एडिनबरा से उन्हें वापिस कर दिया। उस समय उन्होंने यह पत्र लिखा था—

प्रिय पंजाबी भाइओ !

मैं पंजाब में फिर किस मुँह से आऊं ? मैं अपना काला मुँह आप के सामने न लाऊं ऐसी मेरी इच्छा थी। परन्तु वाह गुरु सब का स्वामी है। गुरुदेव परमात्मा की प्रेरणा से मेरे हृदय में यह इच्छा प्रबल रूप में पैदा हुई है कि मैं फिर अपनी जन्म भूमि में आकर वृद्धावस्था में साधारण दरिद्र व्यक्ति की भांति अपना जीवन बिताऊं। इसी लिये मैं हिन्दुस्तान आ रहा हूं वाह गुरु की जैसी इच्छा होगी, होगा वही।

पंजाबी भाइओ ! मैं आप लोगों की दृष्टि में नालायक हूं। मैं अपने पूर्वजों का धर्म छोड़ कर ईसाई बन गया हूं इसके लिये मुझे क्षमा करो। क्यों कि जिस समय मुझे ईसाई बनाया गया था उस समय मैं अज्ञानी बालक था, मैं उस समय बेवस था कुछ नहीं कर सकता था। मैंने पश्चात्ताप से तप्त होकर पुनः अपना सिक्ख धर्म

स्वीकार किया है। मैं आगे से भविष्य में बाबा नानक के नियमानुसार और गुरु गोबिन्दसिंह की आज्ञानुसार आचरण करूंगा। प्यारे पंजाबी भाइयों और खालसा को देखने के लिये मेरा दिल तड़प रहा है। परन्तु मुझ पापी को मातृ भूमि के दर्शन नहीं होंगे। मुझे हिन्दुस्तान नहीं आने दिया जायगा। मैंने अंगरेज़ राजनीति पर विश्वास किया—मुझे उसका पूरा फल मिल गया है। वाह गुरु का खालसा वाह गुरु की फतह।

आपके रक्तमांस का साथी 'दिलीपसिंह'

१८४६ मार्च—१९४७ मार्च

फिरंगियों के १०० साल

पंजाब हरण नाटक के दुःखान्त पटक्षेप के साथ रणजीतसिंह का स्वतंत्र पंजाब फिर से फिरंगियों के हाथ में चला गया। इन १०० सालों में इन फिरंगियों ने पंजाब की सांस्कृतिक राजनैतिक और आर्थिक दासता को दृढ़मूल करने के लिये भेदनीति का प्रयोग कर पंजाब की जनता को टुकड़ों २ में विशीर्ण कर एक २ अणु को एक दूसरे का घातक बना दिया है। परन्तु इन्हें भी–अब अपने विधवा-द्रोह–बाल राजहत्या और छलपूर्ण-विश्वासघात के पापों के कारण पंजाब छोड़ना पड़ रहा है। इस समय हम पंजाबियों को संभल कर आगे आने वाली मुसीबतों तथा समस्याओं का हल करने के लिये, पंजाब के इतिहास के अनुशीलन के आधार पर निम्नलिखित योजनाओं को पूर्ण करने में कटिबद्ध होना चाहिए।

सांस्कृतिक समस्याएँः—गुरु नानकदेव ने ग्रन्थ साहब में लिखा है कि पंजाबियों ने म्लेच्छ भाषा–विदेशी भाषा या फारसी लिपि को अपना कर–अपना धर्म–अपनी सभ्यता छोड़ दी है। इसके लिये उन्होंने–तथा उनके उत्तराधिकारियों ने आदि ग्रन्थ साहब का निर्माण कर पंजाब के साहित्य को समृद्ध करने की नींव डाली–।

इसमें उपलभ्यमान पंजाबी साहित्य का उत्तम संग्रह शास्त्री संस्कृत शारदा हिन्दी की रूपान्तर गुरुमुखी पैंती में, अंकित कराया। हिन्दू-मुसलमान कवि लेखकों की कृतियां भी संगृहीत कीं।

परन्तु राजनैतिक धंधों में अति व्यग्र होने से रणजीतसिंह इस दिशा में विशेष कार्य न कर सके—अंगरेज़ों ने मौका देखकर-कुंवर दिलीपसिंह को ईसाई बनाकर-पंजाब की संस्कृतिक स्वाधीनता पर गहरा वार किया। विदेशी फारसी लिपि के साथ २ पंजाबियों के गले में रोमन लिपि का रक्त शोपक चक्र डाल दिया। यही नहीं सांस्कृतिक क्षेत्र में पंजाबियों को आपस में लड़ाने के लिये भाषा के प्रश्न को साम्प्रदायिक रूप दे दिया। इस विषय में हमें पंजाब की ऐतिहासिक परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए पंजाब में उत्पन्न और विकसित हुई वैदिक संस्कृत-भाषा वर्णमाला पर आश्रित पंजाब की प्रान्तीय भाषा पंजाबी हिन्दी को अपना कर, पंजाबी साहित्य निर्माण की ओर कदम बढ़ाना चाहिए और फारसी तथा रोमन लिपि जैसी विदेशी लिपियों को गौण रूप में ही पढ़ना चाहिए। तभी हम जीवन संचारी पंजाबी साहित्य का निर्माण कर उस साहित्य द्वारा पंजाब की सांस्कृतिक स्वाधीनता को स्थापित कर फिरंगियों के माया जाल से बच सकेंगे।

राजनैतिक और आर्थिक पराधीनता:—अंगरेज़ों से पहले पंजाब में राजनैतिक दृष्टि से विदेशियों को पंजाब में आने से रोकते हुए-मुगल बादशाहों-अकबर आदि ने तथा उनके समकालीन गुरुओं ने हिन्दू मुसलमानों के भेद भावों को दूर कर, राजनैतिक और आर्थिक मामलों में उन्हें एक दूसरे के समीप लाने में काफ़ी सफलता प्राप्त की थी। रणजीतसिंह को लाहौर में निमंत्रण देने वाले मुख्यतया मुसलमान ही थे। रणजीतसिंह ने विदेशियों को पंजाब से बाहर रोककर पंजाबियों को राजनैतिक स्वाधीनता का

सुख दिया था। परन्तु सात समुद्र पार के विदेशियों ने कुंवर दिलीपसिंह को गद्दीच्युत कर, कोहनूर हीरे को पंजाब और भारत में न रखकर, विलायत भेजकर पंजाब की राजनैतिक और आर्थिक गुलामी को गहरा कर दिया। इसके लिये उन्होंने पंजाबी जनता को राजनैतिक कानून की सहायता से निम्नलिखित गहरे चतुर्मुखी-भेदभावों में छिन्न भिन्न कर दिया। हिन्दू मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, अछूत, जरायतपेशा, गैर जरायत पेशा, फौजी फिर्के, न फौजी फिर्के, शहरी देहाती, सरकारी उपाधियों वाले-साधारण जनता, जाट, राजपूत, बणिया, खत्री, कराड़, शेख, शिया, सुन्नी, सिक्खों में पतित और अकाली:—भेदभावों को अति रंजित कर-आपस में एक दूसरे का प्रतिपक्षी बना दिया। यही नहीं शिक्षितों, अंगरेज़ी पढ़े लिखों, और साधारण जनता में, अंगरेज़ी पढ़े लिखे-बेटे और पुराने ढंग के बाप को भी एक दूसरे से दूर-कर-भेद नीति को खूब गहरा रंग दिया। शिक्षणालयों में विदेशी लिपि द्वारा कोरी पुस्तकी विद्या देकर युवकों को पंगु और पराश्रित-व्यक्ति बना दिया। देहातों की आर्थिक स्वाधीनता को, पंचायतों के स्थान पर दीवानी अदालतें बनाकर नष्ट भ्रष्ट कर दिया। इन आपत्तियों से बचने के लिये हमें पंजाब में पंचायती शासन पद्धति-साम्प्रदायिक निर्वाचन पद्धति को हटाकर; सम्मिलित निर्वाचन पद्धति के साथ धार्मिक स्वतन्त्रता और सहिष्णुता स्थापित करनी चाहिए। किसी व्यक्ति व साम्प्रदायिक जन्माभिमानी गुट का शासन कायम नहीं होने देना चाहिए। पंजाब को विदेशी आक्रमणों से बचाने के लिये पंजाब के शासन तंत्र को अखिल भारतीय राष्ट्रतंत्र के साथ सम्बद्ध करना चाहिए। पंजाबी जनता के नेताओं को अपने शिक्षणालयों में पंजाब के प्राचीन तक्षशिला विश्वविद्यालय की भांति शास्त्र विद्या के साथ २ शस्त्र विद्या, अश्वविद्या और शिल्पविद्या के वीर पंडित पैदाकर पंजाब की वीरता और विद्वत्ता के सुनहरी सम्मिश्रण की विशेषता को कायम रखना चाहिए।